

Volume 6 • Number 2 • 'Vijaya Dashami', October 2015

Editors

Pradeep Kumar Rao & Om Jee Upadhyay

Associate Editors

Mahesh Kumar Sharan & Subodh Kumar Mishra

The Journal of Maharana Pratap P.G. College Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)



Editorial Advisory Board

U.P. Singh, Ex Vice-Chancellor, V.B.S. Purvanchal University, Jaunpur

R.P. Mishra, Ex Vice-Chancellor, Allahabad University, Allahabad

Pratap Singh, Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh

Adya Prasad Mishra, Ex Vice-Chancellor, Maharshi Mahesh Yogi Vedic University, Jabalpur

Ram Achal Singh, Ex Vice-Chancellor, R.M.L. Awadh University, Faizabad and Ex Chairman, Higher Education Service Commission (HESC), Uttar Pradesh

K.B. Pandey, Ex Vice-Chancellor, Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University, Kanpur and Ex Chairman, Public Service Commission, Uttar Pradesh

Shivajee Singh, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

D.N. Tripathi, Ex Chairman, Indian Council of Historical Research (ICRR). New Delhi **Narendra Kohli,** Renowned author and thinker

Makkhan Lal, Director, Delhi Institute of Heritage Research and Management, New Delhi

Mrinal Shankar Raste, Ex Vice-Chancellor, Symbiosis International University, Pune

Ram Sakal Pandey, Ex Pro Vice-Chancellor, Allahabad University, Allahabad

S.C. Bose, Professor, English, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

V.K. Srivastava, Professor, Geography, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

N.K.M. Tripathi, Professor, Department of Psychology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Sheo Bahal Singh, Professor, Sociology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Pratibha Khanna, Professor, Education, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Banarasi Tripathi, Professor, Sanskrit, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

A.K. Singh, Professor, Philosophy, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

A.K. Srivastava, Professor, History, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

R.N. Singh, Professor, Defence and Strategic Studies, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

P.S. Chaturvedi, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S.S. Verma, Professor, Geography, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Sadanand Prasad Gupta, Professor, Hindi, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Shri Prakash Mani Tripathi, Professor, Political Science, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

S. Yadav, Professor, Economics, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

P.C. Shukla, Professor, Commerce, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Rajawant Rao, Professor, Ancient History, Archaeology and Culture, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Y.K. Srivastava, Professor, Sociology, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Satyendra Kumar Singh, Professor, Music and Fine Arts, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur

Usha Singh, Professor, Music and Fine Arts, D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur **Mrityunjay Kumar**, Editor, Amar Ujala, Meerut



AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL OF HUMANITIES & SOCIAL SCIENCES

Volume 6 • Number 2 • 'Vijaya Dashami', October 2015

Editors

Pradeep Kumar Rao & Om Jee Upadhyay



The Journal of **Maharana Pratap P.G. College** Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.)

This Journal is a Referral Volume.

ISSN- 0976-0830

Vol. 6 • No. 2 • 'Vijaya Dashami', October 2015

Mānavikī, an interdisciplinary refereed or peer reviewed journal of Humanities and Social Sciences is a biannual (Varsh Pratipada and Vijaya Dashami, i.e. April and October months of a year) and bilingual journal of Maharana Pratap P.G. College Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP).

Copyright of the published articles, including abstracts, vests in the Editors. The objective is to ensure full Copyright protection and to disseminate the articles, and the journal, to the widest possible readership. Authors may use the article elsewhere after obtaining prior permission from the editors.

Research Papers related to Humanities and Social Sciences are invited for publication in the journal. Research papers, book reviews, Subscription and other enquiries should be sent to – Maharana Pratap P.G. College Jungle Dhusan, Gorakhpur (UP) - 273001, Mob.: 9794299451, 9452971570. You may also e-mail your contributions and correspondence at manvikijournal@gmail.com, mpmpg5@gmail.com.

Guidelines for Contributors given on the inner side of the back cover.

The Editors and the Publisher can not be held responsible for errors and any consequences arising from the use of information contained in this journal. The views and opinions expressed do not necessarily reflect those of the editors and the publisher.

Designed & Printed at: Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 300	US S 30	Rs. 500	US S 50
Five Years	Rs. 1250	US S 80	Rs. 2000	US \$ 125
Life (15 Years)	Rs 2500	US \$ 150	Rs. 4000	US \$ 200

Mānavikī

An Interdisciplinary Journal of Humanities & Social Sciences

Volume 6

Number 2

'Vijaya Dashami', October 2015

CONTENTS

Art	Articles	
1.	स्मृति ग्रन्थों में वर्णित वस्त्राभूषण सुबोध कुमा र मि श्र	1
2.	मानवाधिकार और भारतीय समाज सच्चिदानन्द दुबे	
3.	बुद्ध और गाँधी की अहिंसक नीति की प्रासंगिकता	
	नरेन्द्र कुमार बौद्ध	. 12
4.	समसामयिक सन्दर्भों में संयुक्त राष्ट्र की उपादेयता पंकज कुमार तिवारी	19
5.	उत्तर भारत में प्रमुख तुर्क आक्रमणकारी और प्रतिरोधी राजा संजय कुमार सिंह	. 23
6.	अद्वैत वेदान्त में साक्षी और उसकी सार्थकता सविता गुप्ता	29
7.	गुरुनानक और सिख मत श रद चन्द्र आनन्द	39
8.	कम्बोडिया के अभिलेखों में भगवान शिव-महादेव मनीषा शरण	. 42
9.	भारतीय राजनीति और नारी	
10.	अविनाश प्रताप सिंह एवं अम्बुजेश कुमार मिश्र उच्च शिक्षा की समस्याएँ	48
	अजय कुमार मिश्र एवं कुमारी रूबी नायक	. 61

11.	गाँधी और जैन दर्शन	
	बच्छराज दूगड़	70
12.	तिब्बती बौद्ध धर्म एवं कला में प्रयुक्त भारतीय प्रतीक	
	हिमांशु तिवारी	76
13.	अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की अवधारणा एवं यथार्थवादी/नव यथार्थवादी सिद्धान्त का नव विश्लेषण	
	सिलल कुमार पाण्डेय	82
14.	भारत की कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया नीति	
	ब्रजेश कुमार मिश्र	88
15.	Brahma in South-East Asia	
	Vijay Shankar Shrivastava	98
16.	Thai Society and the Rural Life Asim Kumar Pawan	103
17.	International and National Perspectives of Financial Inclusion: A Review of Select Studies	400
	Susmita Chaturvedi	109
18.	A Study of Gender Differences In Mathematics Achievement at Senior Secondary Level	
	Gunjan Dubey & Ms. Ayesha Farheen	128
19.	Human Resources Development Through Jan Shikshan Sansthans: A Study of Seva Mandir Jan Shikshan Sansthan, Anantapur District, Andhra Prade	
	G. Venkata Naidu	141
20.	Judicial Contributions in Evolving the Liability for Medical Negligence Subhash Chandra Gupta & Shikha Dimri	156
21.	Environmental Conservation and Role of the Judiciary in India Ashish Verma	170
22.	Art and Architecture of Siva Temples in Thiruvarur Region – Special Reference to Tamil Nadu	
	K. Kumaran	188

स्मृति ग्रन्थों में वर्णित वस्त्राभूषण

सुबोध कुमार मिश्र*

किसी भी देश के लोगों की सांस्कृतिक-स्थित का पता उस देश में रहने वाले लोगों की वेशभूषा से आँका जा सकता है। मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यता में तो बहुधा लोग प्राय: नग्न ही रहते थे और यदि कुछ कपड़े पहनते थे तो लंगोटी या छोटी धोती के रूप में। कभी-कभी लोग चादर भी ओढ़ लेते थे और अपने बाल फीते से बाँध लेते थे। वैदिक काल से लेकर सातवीं शती तक सिले हुए कपड़ों एवं आभूषणों का उल्लेख तद्युगीन साहित्य में बराबर मिलता है और उनका चित्रों में अंकन भी हुआ है।

वस्त्र-कम्बल, भेड़-बकरी के बाल से तैयार किया जाने वाला वस्त्र था और ओढ़ने तथा बिछाने के लिए प्रयुक्त होता था। याज्ञवल्क्य स्मृति में ऊन के मोटे सृत से कम्बल बनाये जाने का उल्लेख मिलता है। कम्बल का प्राचीनतम उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। ऊन को पहले रँगकर उसके बनने की प्रक्रिया आरम्भ होती थी। कम्बल नामक वस्त्र विशेष रूप से चित्रित होते थे। वायुपुराण में ऊनी-वस्त्र तथा कम्बल के दानार्थ आदेश विहित है। आदिपुराण में भी इस वस्त्र का नाम आया है। शिष्ट वर्ग में शुक्लवर्णी-कम्बलों का प्रचार अधिक था। पतंजिल ने अपने महाभाष्य में सर्वत्र शुक्ल-कम्बल का ही उल्लेख किया है। भाष्यकार ने कम्बल को ''अजरिता' या न फटनेवाला कहा है। ह्वेनसांग के अनुसार यह भेड़-बकरों के ऊन से बनाया जाता था और मुलायम तथा सुन्दर होता था। अष्टाध्यायी से ऋणार्थ कम्बल के प्रचलन की सूचना मिलती है। याज्ञवल्क्य ने वस्त्रों की शुद्धता एवं स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया है। उनके अनुसार ऊनी वस्त्र ऊसर की मिट्टी (रेह) तथा जल तथा गोमूत्र से धोने पर शुद्ध होता था। विशेष उनके अनुसार ऊनी वस्त्र ऊसर की

याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मचारियों के लिए कृष्ण मृगचर्म धारण करने का उल्लेख किया है। मनु का कथन है कि ब्रह्मचारी कृष्ण-मृग तथा बकरे के चमड़े को धारण करता था।¹¹ ऋग्वेद से सृचन मिलती है कि ऋषि प्राय: पशुओं का चर्म धाारण कर लेते थे जिसे 'मक्त' कहा जाता था।¹² विष्णुपुराण के अनुसार यज्ञानुष्ठान के अवसर पर केशिध्वज ने मृगचर्म धारण किया था। वायुपुराण में समुद्रशायी विष्णु का वस्त्र कृष्ण-मृगचर्म का बताया गया है।¹³ इसमें संदेह नहीं कि चर्म-वस्त्र

^{*}प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

में पिवत्रता का सिन्निवेश माना जाता था। ¹⁴ गौतम ने इसे वानप्रस्थियों का परिधान माना है। ¹⁴ चर्म के वस्त्रों को न तो धोने की आवश्यकता होती थी और न रंगने या चित्रित करने की। प्रकृति स्वयं प्राय: सभी चर्मों के रोंये और उन पर मनोरम चित्रकारी और सजावट कर देती थी।

याज्ञवल्क्य ने वृक्षों की छाल से वस्त्र बनाने का उल्लेख किया है। 16 छाल के वस्त्र को वल्कल कहा जाता था जो बौद्ध भिक्षुओं को अविहित थे। 17 विष्णुपुराण में भी वल्कल वस्त्र का उल्लेख मिलता है। 18 इसका प्रयोग अधिकतर जंगल में रहने वाली जातियों अथवा साधु-सन्यासी की करते थे। 19 कालिदास ने कुमारसम्भव में वल्कल-वस्त्र का उल्लेख किया है। 20 बाणभट्ट ने उत्तरीय और चादर के रूप में वल्कल के प्रयोग का उल्लेख किया है। 21 हर्षचरित से ज्ञात होता है कि सावित्री ने कल्पद्रम की छाल से निर्मित वल्कल-वस्त्र धारण किया था। 22 याज्ञवल्क्य का विचार है कि ऊसर भूमि की मिट्टी, जल अथवा गोमूत्र आदि में भी श्री फल मिलाकर धोने से यह स्वच्छ एवं शुद्ध होता था। 23

याज्ञवल्क्य ने 'कोशेयवस्त्र' का उल्लेख किया है।²⁴ 'कोशेय' का प्रथम उल्लेख शतपथ-ब्राह्मण में मिलता है। कोशेय-वस्त्र वाजपेय-यज्ञ के अवसर पर यजमान की पत्नी धारण करती थी। टीकाकार हिरस्वामी ने कोशेय का अर्थ (रेशमी) कीट-कोश से परिकल्पित वस्त्र माना है।²⁵ अमरकोश में क्षोम के समान कोशेय भी रेशमी वस्त्र का ही विशेष प्रकार माना गया है।²⁶ कोश से बने वस्त्रों को कोशेय कहते थे। कोश वस्तुत: कृमिकोश होते थे। ये कृमि हरी पत्ती खाते थे और कोश प्रजनन करते थे। भाष्यकार ने इस बात पर विचार किया है कि कोशेय को कोश का विकास माना जाय या कोश से संभृत। अन्त में उन्होंने कोश के विकार को ही कोशेय माना है।²⁹ इस शब्द का उल्लेख प्राचीन जैन-ग्रन्थ आचारंग-सूत्र में भी मिलता है।²⁸ मोतीचन्द के अनुसार ''कोशेय'' का तात्पर्य रेशमी-वस्त्र से ही प्रतीत होता है।'' शिशिर ऋतु में कोशेय विशेष अभिरूचि में पहना जाता था।²⁹

याज्ञवल्क्य ने क्षौम-वस्त्र को शुद्ध माना है।³⁰ वेदिक साहित्य में भी इसका उल्लेख है जिसे अलसी की छाल से निर्मित माना जाता है।³¹ तैत्तरीय संहिता में भी इसका उल्लेख है।³² आश्रलायन-श्रौतसूत्र में क्षौम का उल्लेख दान देने के सन्दर्भ में हुआ है।³⁴ क्षौम का समीकरण सन³⁵ तथा अलसी³⁶ से किया गया है। क्षौम अत्यधिक कीमती, मुलायम और सृक्ष्म होता था।³⁷ शाकुन्तलम् के अनुसार जिस समय शकुन्तला पित-गृह जा रही थी, वनस्पितयों ने उसे मांगलिक क्षौम-वस्त्र प्रदान किया था।³⁸ आसाम के राजा भास्करवर्मन ने हर्ष को बहुत से क्षौम के लम्बे टुकड़े भेंटस्वरूप प्रदान किये थे।³⁹ वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार यह आसाम और बंगाल में उत्पन्न एक प्रकार की धास से निर्मित किया जाता था।⁴⁰ काशी और पुण्डू देश क्षौम के लिए प्रसिद्ध थे।⁴¹

याज्ञवल्क्य ने कुतुप-वस्त्र का भी उल्लेख किया है। 42 यह सम्भवत: पहाड़ी पेड़ों के बाल

से निर्मित होता था। पतंजिल ने महाभाष्य में क्तुप-वस्त्र की चर्चा की है। 43 कृतुप सम्भवत: हल्का, गरम, ऊनी-कम्बल या शाल होता था। यह पर्वतीय विशेषत: नेपाली-ऊनी का बना होता था।44

याज्ञवल्क्य ने काषाय-वस्त्र की भी चर्चा की है। काषाय वस्त्रधारी बौद्ध भिक्षुओं का दर्शन अशुभ माना जाता था। अन्यत्र उन्होंने मोक्षर्थी के लिए काषाय वस्त्र धारण का उल्लेख है।45 अन्त:पुर में काम करने वाले सभी लोगों के वस्त्र काषाय वर्ण के होते थे।46 रानी काषायरक्त-वस्त्र धारण करती थी।⁴⁷ रामायण के अनुसार बाल्मीकि के आश्रम में रहते समय सीता भी काषाय-वसनी थी। राम बन गमन पर दशरथ शोक करते हैं कि राम काषाय-परिधान कैसे धारण करेंगे।⁴8 आभूषण-स्मृति कालीन समाज के लोग विभिन्न प्रकार के आभूषणों का भी प्रयोग करते थे। वस्त्रों को धारण करने के साथ-साथ आभूषणों का भी प्रयोग भारतीय सभ्यता के विकास के साथ-साथ भी प्रारम्भ हुआ होगा।49 आभूषण शरीर को अलंकृत करने के लिए ही मुख्यत: प्रयुक्त होता था। वैसे सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुरूप ही लोग आभूषणों का प्रयोग करते रहे होंगे।

याज्ञवल्क्यस्मृति में कृण्डल का उल्लेख किया गया है।50 यह कान में पहना जाने वाला एक अलंकार था जिसे स्त्री-पुरुष दोनों धारण करते थे। अमरकोष में इसे कान को लपेट कर पहना जाने वाला आभूषण बताया गया है। 51 मनु ने भी गृहस्थ के लिये सोने का सुन्दर कुण्डल धारण करने का उल्लेख किया है। कुण्डल वर्तुलाकार कर्णाभुषण थे।52 वैसे यह अन्य आकारों में भी प्रयुक्त होता रहा होगा।53 वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार राक्षस भी कुण्डल पहनते थे।54 अजन्ता की चित्रकला में भी कुण्डल चित्रित हैं। यह सोने, चाँदी एवं रत्न आदि से निर्मित होता था।⁵⁵

याज्ञवल्क्य ने निष्क का भी उल्लेख किया है।56 सम्भवत: यह गले में पहना जाता था। वैदिक साहित्य के अनुसार यह मुद्रा थी, किन्तु इसका प्रयोग अलंकार के रूप में किया जाता था क्योंकि यह मुद्रा सुघठित और देखने में सुन्दर लगती थी।57

पुष्पमाला भी आभूषणों के अन्तर्गत मानी जाती थी। माला पहनने की प्रथा सर्वाधिक थी। श्वेत पुष्पों की माला धारण करने का उल्लेख याज्ञवल्क्य ने किया है।⁵⁸ याज्ञवल्क्य ने सोने चाँदी और रत्न आदि का भी उल्लेख किया है।59 महाकाव्यों में भी स्त्री-पुरुष दोनों के विविध आभूषणों का उल्लेख हुआ है।60 ये आभूषण सोने एवं चाँदी के तो होते ही थे, साथ ही हीरे-जवाहरात से मण्डित भी होते थे। धनी वर्ग के लोग सोने, चाँदी, जवाहरात तथा सामान्य एवं निर्धन व्यक्ति पीतल, मुंगा, कौडी आदि से निर्मित अलंकारों का प्रयोग करते थे।61

प्राचीन काल से ही स्त्रियाँ अधिक, आभूषण-प्रिय रही हैं। विवाह तथा अन्य मांगलिक अवसर पर स्त्रियां आभूषण का प्रयोग अधिक करती थीं।62 अल्वेरूनी का कथन है कि स्त्रियाँ कानों में कुण्डल, हाथ की अंगुलियों में स्वर्ण की अंगूटियाँ और पैरों की अंगुलियों में छल्ले पहनती थीं। वर्तमान समय में भी कुछ परिवर्तनों के साथ स्त्री-पुरुष विभिन्न धातुओं के अनेक प्रकार के आभूषण पहने हैं।

सन्दर्भ :

- 1. मोतीचन्द, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, भूमिका, पृ. 2-31
- याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/171
- 3. अथर्ववेद. 14/2/66-67
- 4. शतपथ ब्राह्मण, 5/3/5/21
- 5. रामायण, अयोधया काण्ड, 70/19
- वायुपुराण, 80/34, आदिपुराण, 47/46
- 7. पतंजलि, महाभाष्य, 1/1/64, पृ. 596
- 8. वाटर्स, ऑन युवानच्वांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, 1, पृ. 148
- 9. अग्रवाल, वासुदेवशरण पाणिनीकालीन भारत, पृ. 272
- 10. याज्ञवल्क्य, 1/186, मनुस्मृति, 5/120
- स्मृति, 1/129, मनु. 2/41
- 12. ऋग्वेद, 10/136/2
- 13. विष्णु पुराण, 6/6/13-20, वायु पुराण, 25/32
- 14. शतपथ ब्राह्मण, 1/1/1
- गौतम धर्मसूत्र, 3/34
- याज्ञवल्क्य, 2/180/246, मनुस्मृति 6/6
- 17. मोतीचन्द, पूर्वोक्त, पृ. 31
- 18. विष्णु पुराण, 4/24/96
- 19. समराइच्चकहा, 8, पू. 789
- 20. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/180/246, मनुस्मृति 6/6, कुमारसम्भव, 6/92
- 21. हर्षचरित, 1, पृ. 34, 145, कादम्बरी, पृ. 21/232
- 22. हर्षचरित, 1, प्र. 10
- 23. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/186
- 24. वही, 2/180
- 25. शतपथ ब्राह्मण, 5/2/1/8
- **26.** अमरकोश, 2/6/111
- 27. पतंजलि महाभाष्य, 4/3/42
- 28. आचारांगसूत्र, 2/5/1/4
- 29. मोतीचन्द, पूर्वीक्त, पृ. 27
- 30. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/187
- 31. प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ. 4

- तैत्तरीय संहिता, 6/3/4/17 32.
- आश्वलायन श्रौतस्त्र, 2/3/4/17 33.
- 34. वायुप्राण, 8/34-37
- मोनियर विलियम्स, संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 33 35.
- 36. गौतम धार्मसूत्र, 7/17
- 37. आदिपुराण 12/172
- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 4/5 38.
- 39, हर्षचरित, पृ. 217
- अग्रवाल, वासुदेवशरण हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन, प्र. 76 40.
- मोतीचन्द, पूर्वोक्त, पृ. 9 41.
- याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/186 42.
- पतंजिल महाभाष्य, 2/1/69, पृ. 330 43.
- अग्निहोत्री, प्रभुदयाल पतंजिल कालीन भारत, पृ. 200 44.
- याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/273, 3/157 45.
- 46. नाट्यशास्त्र, 21/117-124
- 47. कादम्बरी, पृ. 293
- रामायण, 7/97/13, 2/12/98 48.
- सिकदर, जे.सी. स्टडीज इन द भगवती सूत्र, पृ. 241 49.
- 50. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/133
- अमरकोश, 2/6/730 51.
- मनु स्मृति 4/36 52.
- अग्निहोत्री, प्रभुदयाल पूर्वोक्त, पृ. 204 53.
- वायु पुराण, 70/62, ब्रह्माण्ड पुराण, 3/8/68 54.
- अग्रवाल, वासुदेवशरण पूर्वीक्त, फलक 20, चित्र 78 55.
- 56. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/365
- ऋग्वेद, 5/19/3 57.
- 58. वही, 1/182
- वही, 1/182 59.
- 60. रामायण, युद्धकाण्ड, 116/31
- महाभारत, 13/48/32-33 61.
- ग्यारहवीं शती का भारत, पू. 244-45 62.

मानवाधिकार और भारतीय समाज

सच्चिदानन्द दूबे*

प्रत्येक समाज में व्यक्ति के कुछ ऐसे अधिकार होते हैं जो उनसे छीने नहीं जा सकते जैसे-मानव की गरिमा, स्त्री-पुरुष के समानता का अधिकार आदि। ऐसे अधिकारों को मूलाधिकार, मौलिक अधिकार या मानवीय अधिकार कहते हैं। मानवाधिकार व्यक्ति को मानव होने के नाते तथा जन्म लेते ही प्राप्त हो जाता है। यह वह अधिकार है जो हमारी प्रकृति में अन्तर्निहित है तथा जिसके बिना हम मनुष्य के रूप में जीवित नहीं रह सकते हैं। मानव अधिकार तथा मूल स्वतंत्रताएँ हमें अपने मानवीय गुणों का विकास तथा आध्यात्मिक एवं अन्य आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में सहायक होती हैं।

मानव सभ्यता के सम्पूर्ण इतिहास में विभिन्न व्यक्तियों के अधिकारों और शक्तियों के बीच कुछ न कुछ भेद सदैव बना रहा है। शक्ति और अधिकारों के असमान सामाजिक विभाजन को सामाजिक स्तरीकरण कहा जाता है। स्तरीकरण प्रत्येक समाज की अनिवार्य विशेषता होती है। सामाजिक विकास के इतिहास में विभिन्न कालों तथा समाजों में सामाजिक स्तरीकरण का रूप एक-दूसरे से भिन्न देखने को मिलता रहा है। जिन समाजों में आयु, लिंग, प्रजाति अथवा लिंग के आधार पर समाज को विभिन्न स्तरों में विभाजित किया जाता है, वहीं बन्द स्तरीकरण की प्रधानता होती है। ऐसे स्तरीकरण में व्यक्ति को अपनी सामाजिक प्रस्थित में परिवर्तन करने की छूट नहीं होती। इसके विपरीत जिन समाजों में सम्पत्ति, व्यवमाय या व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर सामाजिक स्तरीकरण विकसित होता है, उसे हम खुला हुआ स्तरीकरण करते हैं। ऐसे स्तरीकरण में व्यक्तियों की योग्यता या आर्थिक शक्ति में परिवर्तन होने से उनकी सामाजिक-आर्थिक प्रस्थित में परिवर्तन हो सकता है।

बॉटोमोर ने मानव इतिहास में प्रचलित सामाजिक स्तरीकरण के चार प्रमुख प्रकारों- दास प्रथा, जागीर प्रथा, जाति प्रथा तथा वर्ग-व्यवस्था का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समाजों में स्तरीकरण का एक अन्य रूप भी विद्यमान है जिसे शक्ति-व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है।

दास प्रथा सामाजिक स्तरीकरण का सबसे प्रारम्भिक रूप था, जो प्राचीन रोम, यूनान तथा

^{*}असि. प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव किसान पी.जी. कॉलेज, बभनान - गोण्डा

दक्षिण अमेरिका के अनेक भागों में शुरू से विद्यमान रही है। जिस मालिक के पास जितने अधिक दास होते थे, उनकी प्रस्थिति उतनी ही उच्च होती थी। दासों के साथ मालिकों द्वारा पशुता का व्यवहार किया जाता था। यह असमानता के चरम रूप का प्रतिनिधित्व करती है। मध्यकालीन यूरोप में सामाजिक स्तरीकरण का रूप जागीरदारी व्यवस्था के रूप में था। ये जागीरें प्रथा और कानून द्वारा मान्य थीं। इसमें तीन वर्ग- पादरी/पुरोहित (उच्च), सामन्त/कुलीन (मध्यम), तथा जनसाधारण (निम्न) होते थे, जिनके कार्य क्रमश: पूजा, लोगों के हितों को देखना और भोजन की व्यवस्था था। जागीरों के मालिक सामन्त (कृषि भूमि के स्वामी) थे। जाति व्यवस्था सामाजिक स्तरीकरण का एक बन्द स्वरूप है, जबिक वर्ग व्यवस्था खुला एवं सार्वभौमिक स्वरूप। शक्ति व्यवस्था वर्तमान युग की विशेषता है, जिसमें राजनीतिक अधिकारों का महत्त्व बढ़ा है। शक्ति का अभिप्राय राजनीतिक शक्ति से है और राजनीतिक शक्ति का सम्बन्ध व्यक्ति के नेतृत्व, भुस्वामित्व, समर्थकों की संख्या तथा राजनीतिक प्रभाव से है।

उपर्युक्त सभी व्यवस्थाओं में मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन हुआ है। हमारे पूर्वज (भारतीय ऋषि और मनीषी) बहुत ही दूरदर्शी थे, इसलिए उन्होंने उपर्युक्त सभी से हटकर एक अलग व्यवस्था अर्थातु वर्ण व्यवस्था का निर्माण किया, जिसमें व्यक्ति के मानवाधिकारों के उल्लंघन की गुंजाइश तिनक भी न थी। वर्ण व्यवस्था में व्यक्ति की प्रस्थिति/वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का निर्धारण उसकी योग्यता (गुण) के आधार पर होता था।

भारतीय ऋषियों और मनीषियों द्वारा निर्मित वर्ण व्यवस्था भी समय के प्रभाव से न बच सकी और दुषित होकर जाति व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो गयी। जाति व्यवस्था में व्यक्ति के प्रस्थिति का आधार है- जन्म या वंशानुक्रम। वर्ण व्यवस्था में जिन वर्णों को उच्च स्थान प्राप्त था, उनके द्वारा अपनी सन्तानों के भी उच्चता को बनाये रखने / निश्चित रखने के लिए एक साजिश के तहत जाति व्यवस्था का निर्माण किया गया।

भारत में मध्य काल/ मुगल शासन काल में उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों के ऊपर बहुत ज्यादा अन्याय/ शोषण/ अमानवीय व्यवहार किया गया। यह अमानवीय व्यवहार ब्रिटिश शासन काल तक विद्यमान रहा, क्योंकि अंग्रेजों ने भारतीयों के सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप करना मुनासिब नहीं समझा। ब्रिटिश शासन इस मायने में महत्त्वपूर्ण रहा क्योंकि इस काल में अनेक समाज-सुधारकों ने अपने आन्दोलनों द्वारा समाज-सुधार का कार्य आरम्भ किया। इनमें राजा राम मोहन राय, इश्वर चन्द्र विद्यासागर, रानाडे, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द तथा श्रीमती एनी बेसेन्ट आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आजादी से पूर्व एक लम्बे समय तक हमारे देश एवं समाज में मानवाधिकारों का हनन हुआ। 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ। देश एवं समाज में पुन:

मानवाधिकारों का हनन न हो, इसके लिए भारतीय नीति एवं संविधान निर्माताओं ने संविधान के भाग-तीन में नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों (अनु, 12 से 35 तक) की व्यवस्था की है। ये मौलिक अधिकार हमें राज्य के विरुद्ध प्राप्त हैं। ये इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि कोई भी भारतीय नागरिक इनके हनन की दशा में संविधान के अनु, 226 के तहत सीधे उच्च न्यायालय तथा अन. 32 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय में जा सकता है। इतना ही नहीं भारतीय संविधान के भाग-चार (अनु, 36 से 51 तक) में राज्य के लिए नीति-निर्देशक तत्त्वों की व्यवस्था की गयी है। उच्चतम न्यायालय ने केशवानन्द भारती बनाम भारत संघ (1973), मेनका गाँधी बनाम भारत संघ (1978) तथा शाहबानो प्रकरण (1985) के वाद में मानवाधिकारों के संरक्षण पर महत्त्वपूर्ण निर्णय दिया है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह व्यवस्था की है कि कोई भी व्यक्ति (भारतीय नागरिक) 50 पैसे के पोस्ट कार्ड पर उसको पत्र लिखकर अपने मूलाधिकारों की रक्षा करवा सकता है। सन् 2006 में सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय पुलिस के अपर्याप्त मानवाधिकारों के प्रतिक्रिया स्वरूप पुलिस सुधार के आदेश जारी किये।

स्वतंत्रता के बाद भी भारत में मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ। इस सन्दर्भ में 1975-77 में आपात-काल की स्थिति, 1984 में ऑपरेशन ब्लू स्टार और सिख विरोधी दंगे, 1989 में कश्मीरी बगावत (जिसने कश्मीरी पण्डितों का नस्ली आधार पर सफाया किया, हिन्दू मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया, हिन्दुओं और सिखों की हत्या की, विदेशी पर्यटकों एवं सरकारी कार्यकर्ताओं का अपहरण किया।), 1992 में हिन्द्-जनसमृह द्वारा विवादित ढाँचा ध्वस्त करना और परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक दंगे, 2002 में गुजरात में हिंसा तथा सितम्बर-अक्टूबर,2013 में मुजफ्फरनगर(उ.प्र.) में हुई साम्प्रदायिक हिंसा आदि घटनाएँ प्रमुख हैं। भारत ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध और विभिन्न कालों में मानवाधिकारों का घोर हनन हुआ है। अत: इसके संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्राविधान किया गया है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अन्तर्गत मानव-अधिकार को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। चार्टर की प्रस्तावना में मानव के मौलिक अधिकारों के प्रति विश्वास प्रकट किया गया है। चार्टर के अन्. 1 (13) के अनुसार, संयुक्त राष्ट्र संघ का यह महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है कि वह मानव-अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रता को बिना जाति, भाषा, लिंग, धर्म आदि के भेदभाव के प्रोत्साहन प्रदान करे। अनु. 13(ख) के अनुसार, महासभा को यह अधिकार प्राप्त है कि वह मानव अधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रता के लिए अध्ययन कराये तथा अपने सुझाव प्रस्तुत करे। अनु. 55 में प्रावधान है कि स्थायित्व तथा भलाई की दशाएँ उत्पन्न करने हेतु संयुक्त राष्ट्र का कर्तव्य है कि वह जाति. भाषा, लिंग अथवा धर्म के भेदभाव के बिना मानवीय अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं के सार्वभौमिक आदर तथा उनके पालन को प्रोत्साहित करे। अनु. 56 में संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों ने संकल्प लिया है कि वे अन्. 55 में वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संस्था के सहयोग से पृथक तथा संयुक्त कार्यवाही करेंगे। अनु. 68 के अनुसार, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद्

मानवीय अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं को प्रोत्साहित करने के विषय में कमीशन नियुक्त कर सकती है। अनु, 76 (ग) के अनुसार, प्रन्यासी प्रणाली का उत्तरदायित्व है कि वह मानवीय अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं को प्रन्यासी क्षेत्रों में लागू करवाने का प्रयास करे। लुइस हेकिन्स ("द यू.एन. ऐण्ड ह्यमन राइट्स" इण्टरनेशनल आर्गनाइजेशन, 1965, पु. 504) के अनुसार, "संयुक्त राष्ट्र की किसी भी कथा में मानवीय अधिकारों का महत्त्वपूर्ण स्थान होगा।" न्यायाधीश लाटर पैट के अनुसार, "संयुक्त राष्ट्र चार्टर मानवीय अधिकार के मामले में राज्यों पर कुछ उत्तरदायित्व अधिरोपित करता है।" प्रो. जॉन हम्फी के अनुसार, "संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवीय अधिकारों के विषय में कुछ नियम तथा मानदण्ड स्थापित किये हैं और राज्यों का यह उत्तरदायित्व है कि वे इस विषय में सहयोग करें।" परन्तु जहाँ तक मानवीय अधिकारों को लागू कराने का प्रश्न है, अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत ऐसी प्रभावशाली संस्था का अभाव है। प्रो. ओपेनहाइम के अनुसार, "मौलिक मानव-अधिकारों को लागू करने के मामले में अन्तर्राष्ट्रीय विधि में अभी बहुत प्रारम्भिक व्यवस्था है।" इस विषय में सबसे प्रमुख रुकावट यह है कि संयुक्त राष्ट्र राज्यों के घरेलु मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य महासभा ने 10 दिसम्बर, 1948 को मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को पारित किया। इसमें कुल 30 अनुच्छेद हैं, जिसमें मानव-अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं के विषय में विस्तार से उल्लेख है। इस घोषणा से राष्ट्रों को प्रेरणा तथा मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है और वे अपने संविधान व अधिनियमों द्वारा उक्त घोषणा को क्रियान्वित करने के लिए अग्रसर हुए हैं। इस घोषणा के बाद महासभा ने सभी सदस्य देशों से पुनरावेदन किया कि वे इस घोषणा का प्रचार करें और देशों एवं प्रदेशों की राजनीतिक स्थिति पर आधारित भेदभाव का विचार किये बिना विशेषत: विद्यालयों और अन्य शिक्षण संस्थाओं में इसके प्रचार, प्रदर्शन, पठन और व्याख्या का प्रबन्ध करें।

भारत सरकार ने मानवाधिकार के संरक्षण के लिए आजादी के पूर्व एवं पश्चात् में निम्नलिखित अधिनियमों को पारित किया है-

- सती-प्रथा निरोधक अधि.. 1829 1.
- हिन्द् विधवा पुनर्विवाह अधि., 1856 2.
- बाल-विवाह निरोधक अधि.. 1929 3.
- हिन्दु स्त्रियों का सम्पत्ति अधिकार अधि., 1937 4.
- आपराधिक जनजाति अधि., 1952 5.
- विशेष विवाह अधि..1954 6.

- 7. हिन्दू विवाह अधि., 1955
- 8. अस्पृश्यता अपराध अधि., 1955
- 9. सशस्त्र बल (विशेष अधिकार) अधि., 1958
- 10. दहेज निरोधक अधि., 1961
- 11. जम्मू और कश्मीर जन सुरक्षा अधि., 1978
- 12. अनु. जाति और अनु. जनजाति (अत्याचार निवारण) अधि., 1989
- 13. पंचायती राज अधि., 1992
- 14. मानवाधिकार संरक्षण अधि., 1993 (राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना)
- 15. सूचना का अधिकार (मूल अधिकार) अधि., 2005
- 16. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधि., 2005
- 17. घरेलू हिंसा अधि., 2005

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हैं कि भारत तथा अन्य देशों में मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन हुआ है तथा इसके संरक्षण के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास भी हुए हैं/ हो रहे हैं, किन्तु यह समस्या आज भी विद्यमान है। केवल कानून बना देने से इस समस्या का समाधान सम्भव नहीं है। इस समस्या से निजात पाने के लिए यह आवश्यक है कि हम सभी गीता के उपदेश पर अमल करें अर्थात् ऐसा कोई भी कृत्य दृसरे के लिए न करें जो यदि दृसरा व्यक्ति वही कृत्य हमारे साथ करता है तो उससे हमें कष्ट का अनुभव हो या हमारे प्रतिकृल हो।

सन्दर्भ

- 1. अग्रवाल, डॉ. जी.के. ग्रामीण समाजशास्त्र, एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस आगरा, 2010
- 2. बॉटोमोर, टी.बी. इलिएट्स ऐण्ड सोसाइटी, 1964
- 3. बॉटोमोर, टी.बी. दि सोशलिस्ट इकोनॉमी, 1990
- 4. पाण्डेय, डॉ. जे.एन. भारत का संविधान, सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद, 1994
- 5. हेकिन्स, लुइस "द यू.एन. ऐण्ड ह्यूमन राइट्स" इण्टरनेशनल ऑर्गनाइजेशन, 1965
- 6. लाटरपैट, एच. इण्टरनेशनल लॉ ऐण्ड ह्यूमन राइट्स
- 7. हम्फी, प्रो. जॉन इण्टरनेशनल ऑर्गनाइजेशन, वाल्यूम 24, संख्या 1 (1970)
- 8. ओपेनहाइम्स, इण्टरनेशनल लॉ
- 9. कपूर, डॉ. एस.के. अन्तर्राष्ट्रीय विधि, सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहावाद, 1994
- 10. स्टार्क, जे.जी. इन्ट्रोडक्शन टु इन्टरनेशनल लॉ, 1989

- 11. www.hi.wikipedia.org/wiki/
- 12. मिश्र, डॉ. महेन्द्र कुमार मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय, एजुकेशनल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 2011
- 13. डॉ. विप्लव, मानवाधिकार के आइने में महिलाएँ, विस्टा इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2011।

बुद्ध और गाँधी की अहिंसक नीति की प्रासंगिकता

नरेन्द्र कुमार बौद्ध*

आज हम ऐसे समाज में जी रहे हैं जिसमें विषाद सर्वव्यापी है, परम्पराएं, संयम, कातून एवं व्यवस्था सब शिथिल हो गए हैं। जो विचार कल तक सामाजिक भद्रता और न्याय से अविच्छेद समझे जाते थे, जो शताब्दियों से लोगों के आचरण का निर्देशन और अनुशासन करने में समर्थ थे, आज खत्म हो गए हैं। समाज गलतफहिमयों, कटुताओं और संघर्षों से विदीर्ण हो गया है। सारा वातावरण संदेह, अनिश्चितता और भविष्य के अत्यधिक भय से भरा है। हमारे सामाजिक जीवन की गंभीर व्याधि का कारण ही समाज और विश्व के उद्देश्यों के बीच का व्यवधान है।

आजादी के पश्चात् देश में आये बदलाव ने मनुष्य को संवेदनहीनता की ओर धकेल दिया है। आज चारों ओर हिंसा, भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी का जीवन के हर क्षेत्र में बोलबाला इतना बढता जा रहा है कि मनुष्य के भीतर पनप रहे लालच को कैसे समाप्त किया जाए? वह मार्ग क्या है जिसका अनुकरण जनमानस कर सके, जो धार्मिक, व्यावहारिक और सांस्कृतिक हो? विश्व में फैली इन समस्याओं का निदान केवल सत्य, ऑहसा है जो हमें बुद्ध और गांधी के चिन्तन में आत्मसात् करते हुए खोजना होगा।

आज आधुनिकता पूंजीवादी, व्यवस्था, औद्योगीकरण, भूमण्डलीकरण, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का ग्लैमर, उदारीकरण, सरकारी उद्यमों का निजीकरण, उत्तर पूंजीवाद, मॉडल इंटरनेट एवं हाईटेक, पश्चिमी आधुनिक फैशन, बदलते परिवेश तथा ऐशो-आराम की चकाचौंध, मिसाईल एवं परमाणु बम के युग में बुद्ध और महात्मा गांधी के विचारों का अद्भुत प्रयोग क्या संभव और उपयोगी है?

इन समस्याओं का मूल कारण है कि हम अपनी सुख-सुविधा की प्रवृत्ति को निरन्तर पुष्ट करने का प्रयास करते हैं जिसके लिए सृष्टि के अन्य प्राणियों का संहार करने में हमें कोई हिचक नहीं होती। नित नये अनुसंधानों के नाम पर या अपनी सौन्दर्य-पिपासा को शान्त करने के नाम पर या अपने जीवन रक्षा के नाम पर प्राणियों के जीवन की बिल देना हमारे लिए कोई चिंता की बात नहीं होती है। इतना ही नहीं विकसित देश जो अर्थ और तकनीक से सम्पन्न हैं अपनी सुविधाओं

^{*}रिसर्च एसोसिएट, यू.जी.सी., नयी दिल्ली; दर्शन विभाग, डॉ. एच.एस. गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

के लिए विकासशील देशों या असमर्थ राष्ट्रों पर आर्थिक, वैचारिक और सामाजिक आदि कई आयामों से हमले करके साधन बनाने में हिचकते नहीं है। अंहिसा के लिए अति आवश्यक है अपरिग्रह जिसका सम्चित अर्थ जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का ग्रहण एवं सुविधाभोगी वृत्ति का त्याग है। सुविधाभोगी वृत्ति का त्याग करने पर ही हम अहिंसक हो सकते हैं। इसका सहज ही पालन न करने के कारण विश्व में विषमता बढ़ रही है।

बुद्ध एक महान आध्यात्मिक गुरु, उपदेशक तथा महान समाज सुधारक थे। उन्होंने सभी लोगों के समान कल्याण के लिए सामाजिक असमानताएं तथा कर्मकाण्डों, विशेषाधिकारों, जातिप्रथा, धार्मिक पाखण्ड, अंधविश्वासों तथा अज्ञानता के गढों पर प्रहार किया और विश्वबंधुत्व एवं समानता के लोकोत्तर दर्शन का प्रतिपादन किया।

बुद्ध एवं गांधी एक ऐसी नवीन समाज व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे जो कि सत्य और अंहिसा पर आधारित हो, जिसमें किसी भी रूप में मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न हो, जिसमें विषमता के स्थान में समानता, प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग और संघर्ष के स्थान पर सद्भावना और प्रेम का साम्राज्य हो। यही प्राचीन आदर्श प्रतिमान है जो सदैव से ही भारतीय संस्कृति की आत्मा में बसे रहे हैं। गांधी ने पशुबल समक्ष आत्मबल का शस्त्र प्रस्तुत किया। तोपों और मशीनगनों का सामना करने के लिए अहिंसा का आश्रय लिया। यहाँ प्रश्न उठता है कि अहिंसा का आश्रय उन्होंने क्यों लिया? क्या इमलिए कि अंग्रेजों के विरुद्ध हिंसा का आश्रय लेकर वे भारत को स्वाधीन नहीं करा सकते थे? या इसलिए कि वे मानव समाज को यह शिक्षा देना चाहते थे कि मनुष्य जब तक पाशविक साधनों का प्रयोग करता रहेगा तब तक वह पूरा मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता? गांधीजी का ध्येय मानव स्वभाव में परिवर्तन लाना था, मनुष्य को यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि जिन ध्येयों की प्राप्ति के लिए वह पाशविक साधनों का सहारा लेता है वे ध्येय मानवोचित साधनों से भी प्राप्त किये जा सकते हैं।

अहिंसा का विकास किसी एक कालक्रम में न होकर मानव जाति के विभिन्न वर्गों में सामाजिक चेतना एवं जीवन के विविध रूपों के प्रति, संवेदनशीलता के विकास के परिणामस्वरूप हुआ है। जो वर्ग या समाज जीवन के विविध रूपों के प्रति जितना अधिक संवेदनशील बना उसने अहिंसा को उतना ही व्यापक अर्थ दिया ।

विश्व के समस्त धर्मों में अहिंसा की अवधारणा बीज रूप में पाई जाती है, वैदिक परम्परा में विशेष रूप से उपनिषदों, महाकाव्यों, स्मृतियों एवं पुराणों में भी अहिंसा से जुड़े वाक्य दृष्टिगत होते हैं। वस्तृत: अहिंसा का सिद्धान्त भारतीय दार्शनिक चिंतनधारा का मूलाधार रूप में सुप्रतिष्ठित रहा है। किन्तु बौद्ध धर्म दर्शन, जैन धर्म दर्शन एवं समकालीन दार्शनिक चिंतक महात्मा गांधी के दार्शनिक चिंतन में सत्य, अहिंसा की अवधारणा का प्रयोग व्यावहारिक जीवन दर्शन के रूप में होता है। जहाँ एक ओर भगवान् बुद्ध के पंचशील सिद्धान्त का आधार सत्य एवं अहिंसा है तो महात्मा गांधी भी मानव के अनिवार्य आध्यात्मिक स्वरूप में अन्तर्निहित अहिंसा के भाव को जाग्रत करने का प्रयास करते हैं, इसी आधार पर उन्हें महानायक कहा जाता है। विभिन्न धर्म दर्शनों में अहिंसा को निषेधात्मक रूप में स्वीकार किया गया है अर्थात् मन, वचन एवं कर्म से हिंसा न करने की राय दी गई है। लेकिन बुद्ध एवं गांधी दोनों ही अहिंसा के सकारात्मक पक्ष को दया, करुणा, प्रेम, दान, सेवा, सहानुभूति और सहयोग आदि के रूप में स्वीकार करते हैं और जीवन के आदर्श मानव मूल्य एवं मानव धर्म के रूप में सत्य अहिंसा को प्रतिष्ठित करते हैं। अहिंसा के इस सम्प्रत्यय का भावात्मक क्रियात्मक एवं व्यावहारिक रूप की सर्वाधिक प्रासंगिकता एवं उपादेयता वर्तमान काल में प्रतीत होती है। बुद्ध का जहाँ ब्रह्मविहार जिसमें मुदिता, करुणा, मैत्री और उपेक्षा सत्य अहिंसा का आधार है वहीं गांधी की मान्यता है कि प्रेम एवं मैत्री भरे व्यवहार से मनुष्य तो क्या पशु भी शांत और अहिंसक बन जाते हैं। अहिंसा न केवल व्यक्तिगत जीवन को उच्च बना सकती है अपितु उसके प्रयोग से किसी भी प्रकार की समस्या एवं अन्याय का निराकरण किया जा सकता है। यह मारने का नहीं अपितु सुधारने का सिद्धान्त है। विनाश का नहीं निर्माण का सिद्धान्त है। अहिंसा सत्य व शांति के आचरण से ही विश्व में स्थायी शांति एवं विश्व के समक्ष वर्तमान एवं भावी चुनौतियों और समस्याओं का सामना किया जा सकता है।

गांधी की स्पष्ट नीति थी कि वे कभी दूसरे को पराजित करके स्वयं विजयी नहीं बनना चाहते थे बल्कि उसे प्रभावित करके अपना बना लेने की बात करते हैं। अहिंसा का धर्म केवल प्राणियों और संतों के लिए नहीं है, यह साधारण लोगों के लिए भी है। अहिंसा मानव जाति का नियम है वैसे ही जैसे कि हिंसा पशु का। पशु में आत्मा सुप्त रूप से निवास करती है इसलिए वह केवल शारीरिक शक्ति के नियम को ही जानता है। मनुष्य की गरिमा एक उच्चतर नियम के पालन की अपेक्षा रखती है– वह नियम है आत्मा की शान्ति। अहिंसा मेरा भगवान् है और सत्य मेरा भगवान् है, जब मैं अहिंसा को खोजता हूँ तो सत्य कहता है इसे मेरे माध्यम से ढूँढ़ो और जब सत्य को खोजता हूँ तो अहिंसा कहती है इसे मेरे माध्यम से ढूँढ़ो।²

गांधी कहते हैं, "मैंने कोई नए सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किए हैं बल्कि पुराने सिद्धान्तों को ही पुन: प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया है। दुनिया को सिखाने के लिए मेरे पास कोई नई बात नहीं है। सत्य और अंहिसा उतने ही पुराने हैं, जितने पुगने पर्वत।" मैंने केवल इन दोनों को लेकर बड़े पैमाने पर प्रयोग करने का प्रयास किया है। वे स्वयं गांधीवाद का विरोध करते हुए कि गांधीवाद कोई नाम नहीं है उसकी गांधी तो अच्छाई और बुराई, कमजोरी और मजबूरी हिंसा और अहिंसा का मिश्रण है जबिक सत्य व अंहिसा में कोई मिलावट नहीं है। आचरण पर जोर देते हुए कहते हैं कि सत्य और अंहिसा का प्रचार पुस्तकों के माध्यम से उतनी अच्छी तरह से नहीं किया जा सकता

जितना उन पर आचरण के द्वारा किया जा सकता है। सच्चाई से जी गई जिन्दगी पुस्तकों से ज्यादा प्रभावकारी होता है।⁵ अत: गांधीजी के सत्य, अहिंसा की नीति वैश्वीकरण के क्षेत्र में प्रासंगिक है।

गांधी के संबंध में मार्टिन लूथर ने कहा यदि मानवता को विकसित होना है तो गांधी आवश्यक है। गांधी के लिए धर्म वह है जो सब धर्मों में सामंजस्य स्थापित करता हो, जो मनुष्य स्वभाव का कायापलट कर देता है, जो मनुष्य का आंतरिक सत्य से संबंध स्थापित करता है और सदा उसको शुद्ध करता है। धर्म, मनुष्य स्वभाव का स्थाई तत्त्व है जो पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए बडे से बड़ा त्याग करने को तैयार है। गांधी के शब्दों में धर्म का वहीं अर्थ है जो नैतिकता का है -सत्य नैतिकता का सार है।

महात्मा गांधी अहिंसा के संबंध में कहते हैं, "यह मनुष्य पर बाहर से लादा गया कोई गुण नहीं है यह तो वह अपनी प्रकृति का अपने आप विरोध करना है। मनुष्य के लिए अहिंसक न होना उसके स्वरूप के विरोधाभास का द्योतक है।" चूँकि सारे मनुष्य आंतरिक रूप से मनुष्य का स्वरूप है, इसलिए हिंसा उसका स्वरूप हो ही नहीं सकता। इसी सन्दर्भ में गांधी कहते हैं- "Non-Violence is the law of our species."8

गांधी का अट्ट विश्वास था कि अशुभ को अशुभ से, हिंसा को हिंसा से नहीं जीता जा सकता, जीतने के लिए हिंसक और अशुभकर्ता के प्रति अट्ट प्रेम की भावना होनी चाहिए। चूँकि दोनों आंतरिक रूप से ईश्वर के अंश हैं, इसलिए हम प्रेम के द्वारा ही उनमें वास्तविक मनुष्यता जगा सकते है।

गांधी का मानना था कि "सत्य की भी अभिव्यक्ति हमें इस रूप में करनी चाहिए कि वह कटु तथा अप्रिय न हो।" जिस प्रकार आत्मनियंत्रण, संयम आदि का पालन ब्रह्मचर्य है वह वस्तुत: सत्य और अहिंसा के पालन में साररूप में निहित है। गांधी द्वारा बताया गया सत्य और अहिंसा के पालन के द्वारा अन्य सभी सदगणों का पालन अपने आप हो जाता है। प्रमख शांति वैज्ञानिक जॉन केलटंग ने विश्व में व्याप्त सभी प्रकार की समस्याओं को शांति की समस्या के रूप में चित्रित किया है जिसके पाँच स्तर हो सकते हैं:-

- व्यक्तिगत स्तर पर, 1.
- 2. समाज स्तर पर,
- विश्व स्तर. 3.
- प्राकृतिक स्तर और 4.
- सांस्कृतिक स्तर पर, 5.

इन सभी स्तरों में बुद्ध एवं गांधी की सत्य और अहिंसा आज भी प्रासंगिक है। व्यक्ति, अज्ञानता और मानसिक तनाव के कारण अशांत है। आज समाज में व्याप्त अशांति का कारण सामाजिक-विषमता है, शोषण, अन्याय है जिनके कारण समाज का समुचित और संतुलित विकास नहीं हो पाता। जिसके परिणाम स्वरूप भौतिकवाद, उपभोक्तावाद केवल शस्त्रों का निर्माण और युद्ध आतंकवाद जैमी समस्याएँ जन्म लेती हैं। इन समस्याओं से मुक्ति का एकमात्र उपाय बुद्ध की करुणा, अहिंसा का प्रचार एवं प्रसार है और इनको ईमानदारी पूर्वक सहज ही स्वीकार कर लिया जाए तो विश्वशांति की समस्या अपने आप समाप्त हो जाएगी।

आज सारा विश्व-समाज संस्कृति की श्रेष्ठता और निम्नता के स्तर से पीड़ित है जिसके पिरणामत: सम्प्रदायवाद, रंगभेद, जातिवाद, वंशवाद आदि समाचारों में पिरणत होती है। जबिक कोई संस्कृति एक दूसरे से अच्छी बुरी एवं दोषूपर्ण नहीं होती वरन् उनका विकास एक दूसरे के आलोक में होता है। इन समस्याओं का निराकरण भी बौद्धों की मैत्री, करुणा, मुदिता एवं गांधी की सत्य अहिंसा एवं संयम की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

आज विश्व में एक गंभीर समस्या पर्यावरणीय प्रदूषण एवं पारिस्थितिक असंतुलन की समस्या है जिसका मूल कारण हमारी गलत जीवन दृष्टि है। हम तृष्णा की तृष्ति और भोगवाद को जीवन को जीवन का आदर्श मानकर प्रकृति के विभिन्न अंगों का शोषण करते है। यदि हम इस सत्य से अवगत हो जाएं कि मानव प्रकृति से अभिन्न सम्बन्ध है। बुद्ध एवं गांधी की अहिंसा की अवधारणा विश्व के इस संकट से बचने के लिए बहुत ही उपयुक्त है।

बौद्ध दर्शन की मौलिक शिक्षा देश काल का अतिक्रमण करने में समर्थ है इसका प्रमाण है कि बौद्धों ने न तो किसी राष्ट्र पर आक्रमण किया, और न ही किसी संस्कृति पर कुठाराघात। बुद्ध-नीति वैज्ञानिक एवं उपभोगतावादी समाज के लिए प्रासंगिक है क्योंकि प्रेम एवं करुणा इन समस्याओं के निदान में सहायक हो सकती है। वर्तमान युग अभूतपूर्व वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा अपार भौतिक सम्पदा का युग है। इन्हीं उपलब्धियों के कारण मनुष्य का जीवन एक विचित्र बेचेनी, भय और कभी न तृप्त होने वाली कहानी हो गया है उसका जीवन एक अंतहीन, दिशाहीन उपक्रम बन गया है। यदि हम इस स्थिति का निष्पक्ष अवलोकन करें तो पायेंगे कि इसका कारण है 'असंतुलित विकास'। अपने वाहर की दुनिया में तो हमें अपार सफलता मिली है किन्तु स्वयं अपने आप से अपरिचित रह गये अर्थात् मनुष्य का आंतरिक जगत् बिल्कुल अनछुआ रह गया जो प्रेम, करुणा एवं सौन्दर्य का स्रोत है। यही वह मूल कारण है जिसकी वजह से हमारा जीवन दु:ख, विषाद, भय एवं असंतोष का पर्याय बन गया है। प्रेम, करूणा एवं एकत्व के अभाव के कारण ही हम दिशाहीन जीवन जी रहे है जिसका कोई विवेक सम्मत कारण नहीं है। आज प्रेम एवं करुणा की आवश्यकता अधिक है, इसलिए बुद्ध का दर्शन जीवन दर्शन है, व्यवहार का दर्शन है जो हमें सिखाता

है कि जीवन दुःख नहीं महोत्सव है।

अत: चिकित्सक की प्रासंगिकता और अधिक तब होती है जब रोगी गंभीर रूप से बीमारी का शिकार हो जाता है। आज विश्व को प्रतिकार-मारक-विषहर औषि की आवश्यकता है जिसे उत्साहपूर्वक प्रचार-प्रसार करने एवं आचरण करने की आवश्यकता है। मैत्री भावना द्वेष का, करुणा हिंसा का, मुदिता अरित और उपेक्षा दुष्कार्य राग का शमन करता है यह अज्ञान और सुगित देने वाले हैं। बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय और परोपकाराय हैं जिससे व्यक्तिवादी एवं भौतिकवादी जैसी समस्याएं हल हो सकती हैं। समसामियक मान्यताएँ मूल्यों, विचारों एवं कार्यशैलियों को नया मोड़ देने के साथ ही चारित्रिक क्रांति की भी आवश्यकता है।

आज निराशा के वातावरण में युवा पीढ़ी को आगे बढ़ने तथा सफलता हेतु दृढ़निर्णय एवं मजबूत इच्छा की अत्यंत आवश्यकता है। गांधी के अनुसार ज्ञान साधन और चिरत्र साध्य के रूप में सत्य अहिंसा से ही प्राप्त होता है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वर्तमान ही नहीं आनेवाली पीढ़ियों के लिए गांधीजी के सत्य और अहिंसा के आदर्श, विचार एवं चिरत्र अद्वितीय मॉडल के रूप में कार्य करते रहेंगे, तथा उसकी प्रासंगिकता बनी रहेगी। मजबूरी का नाम गांधीजी आनेवाली सध्य समाज में मजबूती का नाम गांधीजी के रूप में होगा। वर्तमान परिस्थितियों में गांधी के विचारों की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है।

सत्य एवं अहिंसा वह अनुशासन है, जो अंतरात्मा को स्पर्श करता है और बुराई से संघर्ष करने में सहायता प्रदान करता है, काम क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता है। नैतिक बल प्रदान करता है इसमें हमारे विचार और आचरण को वश में करने की शक्ति निहित है। बुद्ध उपदेश देते हैं कि सत्य को स्वयं अपने अंदर प्रतिबिम्बत होने दें और उसे जीवन को उचित दिशा में मोड़ने का अवसर दें। उनके व्यावहारिक दर्शन का केन्द्र बिन्दु अष्टांगिक मार्ग है, जो सत्य और अहिंसा का आधार है। मनुष्यों में आध्यात्मिक एवं अहिंसात्मक प्रवृत्ति एक ही दिन में पैदा नहीं की जा सकती इसके लिए विश्व के मानवों में करुणा, दया, प्रेम, नैतिकता एवं आध्यात्मिकता की भावना को क्रिमक रूप में लाना होगा। मानव में अहिंसा के लिए विश्व अभियान छेड़ने की दिशा में पहला चरण अज्ञानता को हटाना है, क्योंकि सच्चे ज्ञान में आत्मबोध और आत्म नियंत्रण निहित है। अहिंसा इस ज्ञान की परम अवस्था है क्योंकि वह दूसरों से अपने संबंधों का तादात्म्य करना सिखाती है।

संदर्भ ग्रंथ

- 1. यंग इण्डिया, 11.08, 1920 पृ. 3
- 2. यंग इण्डिया, 04.06, 1925 पृ. 191
- 3. यंग इण्डिया, 2.12, 1936 पृ. 419
- 4. हरिजन, 13.05, 1939 पृ. 121

18 I Mānavikī

- 5. वहीं, पृ. 122
- 6. गांधी, मोहनदास करमचंद: रचनात्मक कार्यक्रम, 1959, पृ. 9
- 7. स्पीच ऑफ मार्टिन लूथर किंग
- 8. Ethical Religion, p 23-24
- 9. बोधिसत्व डाक्ट्रिन इन संस्कृत लिट्रेचर, पृ. 227

समसामियक सन्दर्भों में संयुक्त राष्ट्र की उपादेयता

पंकज कुमार तिवारी*

''परम शक्ति परमात्मा ने प्रत्येक प्राणी को उसके स्वभाव के अनुसार एक न एक कला में प्रवीण जरूर किया है जो उसकी जीवन की शिक्त बन जाती है, उसको जीना सिखाती है तथा जो दूसरे के लिए प्रेरणादायक बन जाता है। एक जीवन्त अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में संयुक्त राष्ट्र इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। नि:सन्देह इस सार्वभौमिक संस्था में मानवता की सेवा करने की अदम्य साहस, अमीम क्षमता एवम् अगाध मामर्थ्य है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सहयोग, मुरक्षा की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र की प्रासंगिकता एवम् उपादेयता स्पष्ट है परन्तु विश्व के कल्याणार्थ मानवता के सम्यक विकास के पैमाने पर यह संस्था अपना पीठ थपथपाने का भी हकदार नहीं है। इमे और अधिक परिष्कृत, योग्य, लक्ष्योन्मुख बनाने के लिए विश्व के महाशिक्तयों को प्रतिशोध की राजनीति को खत्म कर कमजोर, विकासशील एवं गरीब राष्ट्रों को भी विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने होंगे। महाशिक्तयों को पूरी निष्ठा से सदेव यह मानकर चलना होगा कि हमें विशेषाधिकार मिला है अपने कर्तव्य पालन के लिए न कि अपनी सनक, मौज, मिथ्याभिमान, वर्चस्व और लालच की पूर्ति के लिए। हम भावनात्मक बंधन के साथ सम्पूर्ण विश्व में म्नेहपूर्ण, सामन्जस्यपूर्ण, शान्तिपूर्ण सुखद सह-अस्तित्व के लिए मिलकर काम करेंगे जिससे कि हम एक दूसरे राष्ट्र की पीड़ा में भी हिस्सेदार बन सकें।''

विश्व में शान्ति, सुरक्षा और सहयोग का वातावरण बनाये रखने में अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका निर्णायक महत्त्व की रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से अन्तर्गष्ट्रीय संगठन के विकास क्रम में संयुक्त राष्ट्र एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन राष्ट्र संघ अथवा संयुक्त राष्ट्र आदि के रूप में उदित हो सकते हैं, और राष्ट्र संघ की तरह विघटित भी हो सकते हैं परन्तु दुनिया में विश्व जनमत, विश्व सरकार के निर्माण एवम् मानवता के उत्थान हेतु अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को अस्तित्व में बने रहना अत्यन्त आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के विकास क्रम की प्रक्रिया अनवरत चलती रहेगी।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व में पुन: इस प्रकार के युद्ध की पुनरावृत्ति न होने के

^{*}प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, नवल्स डिग्री कालेज कुसुम्ही, गोरखपुर

उद्देश्य से राष्ट्र संघ (10 जनवरी 1920) की स्थापना की गयी। परन्तु सदस्य राष्ट्रों की आपसी हठधर्मिता एवम् स्वार्थपूर्ण नीति के कारण राष्ट्र संघ सफल नहीं हो सका तथा विश्व समुदाय को पुन: द्वितीय विश्वयुद्ध के भयंकर नरसंहार का सामना करना पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध की भयावहता ने सम्पूर्ण विश्व समुदाय को झकझोर कर रख दिया तथा एक ऐसी संस्था की स्थापना का विचार उदित होने लगा जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवम् सुरक्षा को स्थायी आधार प्रदान कर सके। 24 अक्टूबर 1945 को सार्वभौमिक रूप से स्थापित संयुक्त राष्ट्र संघ अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के इसी सोच का परिणाम है। ''जिस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध की विभीषिका की मिट्टी में राष्ट्र संघ के बीज अंकुरित हुए थे, उसी प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध ने संयुक्त राष्ट्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।'' इस विश्वमंच द्वारा प्रदत्त अनेक कार्यकारी एजेन्सियों के माध्यम से विविध विचारधाराओं में विषम राष्ट्रीय हित के अनेक देश एक साथ मिल-बैठकर पारस्परिक हित के विषयों का निर्धारण करते हैं। साथ ही आपसी द्वन्द्व, कटुता एवम् वैमनस्य की भावना के उन्मूलन का सफल उपाय ढूँढते हैं। इतना ही नहीं इस अन्तर्राष्ट्रीय निकाय के माध्यम से मानवाधिकार संरक्षण एवम् संवर्धन की दिशा में सराहनीय प्रयास किये गये है। विश्व के वर्तमान ज्वलन्त मुद्दों में आतंकवाद, शस्त्रीकरण एवम् पर्यावरण असंतुलन जैसी समस्या के समाधान के उद्देश्य से इस वैश्वक संगठन की सार्थकता बनी हुई है।

संयुक्त राष्ट्र ने वर्तमान विश्व को बेहतर बनाने एवम् समस्त प्राणियों को उच्चतम स्वस्थ जीवन स्तर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से भविष्य के कार्यक्रम भी निर्धारित कर रखे हैं। संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 2015 तक विश्व के देशों से शताब्दी विकास का लक्ष्य प्राप्त करने का आह्वान किया है। संयुक्त राष्ट्र के शताब्दी विकास के लक्ष्य इस प्रकार हैं-

- 1. गरीबी और भूख का उन्मूलन
- 2. सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति
- 3. लैंगिक भेदभाव का समापन
- 4. बाल मृत्यु दर को कम करना।
- 5. मातृत्व स्वास्थ्य सुरक्षा में सुधार।
- 6. एच.आई.बी./एड्स, मलेरिया तथा अन्य बीमारियों से निपटना।
- 7. पर्यावरण सन्तुलन
- 8. विकास हेतु वैश्विक साझेदारी सुनिश्चित करना।

संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न गतिविधियों से सहज ही उसकी उपादेयता की पुष्टि होती है। भले ही तनाव, टकराव, युद्ध तथा भय और भूख से मुक्त एक वास्तविक विश्व व्यवस्था स्थापित करने

में संयुक्त राष्ट्र को अपेक्षित सफलता नहीं मिली हो लेकिन इसने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सहयोग के अनुकूल वातावरण बनाने में निरन्तर योगदान किया है। इसके सदस्य संख्या की व्यापकता (स्थापना के समय 50 तथा वर्तमान में 193) ने इसे एक सार्वभौमिक संगठन बना दिया है। ''परमाणु अस्त्रों की होड एवम् प्रतिस्पर्धा ने परमाणु युद्ध की सम्भावना को उत्पन्न कर दिया है।'' बेहद चिन्ताजनक बात यह है कि गैर जिम्मेदार राष्ट्र भी चोरी-चुपके परमाणु अस्त्रों को प्राप्त करने की होड़ में लगे हैं। विश्व के उन राष्ट्रों के पास भी परमाणविक हथियार हैं जो वर्तमान में हिंसा एवम् तनाव के केन्द्र बने हुए हैं। परमाण् अस्त्रों की दिशा में अत्यन्त चिन्ताजनक पहलू, पाकिस्तान, युक्रेन, बेलारूस जैसे देशों में परमाणु भण्डार केन्द्रों का असुरक्षित होना है। आशंका है कि परमाणविक तकनीक आतंकवादी संगठनों के हाथ में न चला जाय। नवीन प्रौद्योगिकी ने शस्त्रास्त्रों की घातक प्रवृत्ति में भी इजाफा किया है। शस्त्रों का उत्पादन, परीक्षण, प्रसार और प्रतिस्पर्धा आज भी व्यापक पैमाने पर संचालित है। कुछ अपवादों को छोड़कर नि:शस्त्रीकरण पुराने अथवा अप्रचलित हथियारों पर ही लागू हुआ है। राज्यों के भीतर अनावश्यक हस्तक्षेप करके, बाध्यकारी उपायों द्वारा नि:शस्त्रीकरण को लागू करना संयुक्त राष्ट्र के लिये सम्भव नहीं है। यदि नि:शस्त्रीकरण हेत् हस्तक्षेप अनिवार्य हो जाय तो उसके दुरुपयोग अथवा राजनीतिकरण से इन्कार नहीं किया जा सकता। वर्ष 2003 में इराक में की गई सैन्य कार्यवाही इसका ताजा उदाहरण है। "सैन्य वर्चस्व कायम करने का प्रयास चाहे नाटो का हो अथवा उसके किसी संघटक राज्य का, विश्व शान्ति के लिए चिन्ताजनक खतरा है और संयुक्त राष्ट्र के समक्ष एक गम्भीर चुनौती।"3

आर्थिक दृष्टि से दुनिया के अमीर एवम् गरीब देशों के बीच बढ़ता मतभेद भी संयुक्त राष्ट्र के कार्यकरण में बाधा उत्पन्न कर रहा है। आर्थिक असमानता के कारण तीसरी दुनिया के देशों की आर्थिक स्थिति गम्भीर होती चली जा रही है। गरीबी, भुखमरी तथा बेरोजगारी भी हिंसा एवम् सामाजिक तनाव के स्रोत के प्रमुख कारण हैं। यदि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के द्वारा गरीबों के आर्थिक उद्धार हेतु कोई ठोस अथवा न्यायसंगत कदम नहीं उठाया जाता है तो वो बन्दूक संस्कृति (Gun Culture) को अपनाने में संकोच नहीं करते। आज आतंकवाद, उग्रवादी गतिविधियों का जो स्वरूप प्रचलन में है उसके पीछे आर्थिक कारण भी प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं। अतएव "संयुक्त राष्ट्र का पुनर्गठन इसलिए भी आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, मादक पदार्थों की तस्करी, धार्मिक कट्टरता, जातीय संघर्ष, मानवाधिकार का उल्लंघन, सांस्कृतिक टकराव, ऊर्जा संकट, पर्यावरण संरक्षण, आर्थिक असमानता आदि चुनौतियों का प्रभावी और म्थायी निराकरण किया जा सके।" यद्यिप कि ऐसा माना जाता रहा है कि आर्थिक समृद्धि हिंसा को जन्म देती है परन्तु आर्थिक समृद्धि के फलस्वरूप उत्पन्न हिंसा आर्थिक दम्भ का परिणाम होती है लेकिन जो हिंसा गरीबी, भुखमरी द्वारा जिनत होती है वह सबसे अधिक खतरनाक होती है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के असंतुलित स्वरूप के कारण केवल संघ की कार्यवाहियों में ही बाधा नहीं पहुँचा है अपितु संघ के

वैचारिक-व्यावहारिक पटल पर भी इस आर्थिक असंतुलन ने उथल-पुथल मचाया है। संयुक्त राष्ट्र के बहुधा निर्णय महाशिक्तयों के राष्ट्रीय हित से प्रभावित रहे हैं। अफगानिस्तान से लेकर ईराक तक सत्ता परिवर्तन को तर्कसंगत ठहराने का अमेरिकी राजनय इसी सोच पर आधारित है कि अनेक विशिष्ट मामलों में संयुक्त राष्ट्र के निर्णय महाशिक्तयों के सोच के परिणाम रहे हैं।

वास्तव में संयुक्त राष्ट्र की उपादेयता और प्रभावशीलता उसके सदस्य राजनयों की निष्ठा एवम् सहयोग पर निर्भर है। पारस्परिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवम् मैत्रीपूर्ण राजनीतिक सम्बन्धों का विकास कर संयुक्त राष्ट्र को निश्चित रूप से प्रभावी एवम् प्रासंगिक बनाया जा सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि ''परिवर्तन के इस दौर में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में आवश्यक संशोधन किया जाय जिससे यह विश्व संस्था अधिक शिक्तशाली बन पाये।'' जब भागत, ब्राजील, जर्मनी, जापान जैसे देश संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्य की हैसियत से भाग लेंगे तो सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक सन्तुलन को बल मिलेगा। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों के बीच हाथी के दाँत की तरह काम करने (खाने के अलग, दिखाने के अलग) का जो प्रचलन है उसे त्यागना होगा। ''संयुक्त राष्ट्र के द्वारा मनुष्य के भौतिक कल्याण, मानवीय अधिकारों तथा आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग पर राष्ट्र संघ से कहीं अधिक बल दिया गया है।'' नि:सन्देह यदि संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य आपसी वैमनस्य को त्यागकर, पारस्परिक सह-अस्तित्व की भावना पर ''मानव कल्याण'' को नैतिक रूप से अपना सर्वश्रेष्ठ धर्म समझें तो निश्चित रूप से दुनिया भर के शब्द संयुक्त राष्ट्र की उपादेयता को अभिव्यक्ति प्रदान नहीं कर सकते।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- 1. वजु, डॉ. रुमकी संयुक्त राष्ट्र संघ सिद्धान्त एवं व्यवहार, जवाहर पव्लिशर्स नई दिल्ली-2008, पृ. 17
- Sinhal, Dr. S.C. International Organisation, Lakshmi Narayan Agrawal Publication, Agra, 2013, pp. 328
- 3. शुक्ला, डॉ. शशि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, भारत प्रकाशन, लखनऊ, 2009, पृ. 321
- 4. Tripathi, Prof. S.P.M. International Organisation, Pratyush Publication, Delhi, 2013, pp. 527
- 5. सिंह, डॉ. बैक्एठनाथ, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, प्र. 266
- 6. वर्मा, डॉ. दीनानाथ, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003

उत्तर भारत में प्रमुख तुर्क आक्रमणकारी और प्रतिरोधी राजा

संजय कुमार सिंह*

अरब शब्द हिब्रू भाषा से बना है। अरब शब्द का शाब्दिक अर्थ मरुभूमि होता है। बौद्व साहित्य में अरब को बनायु देश कहा गया है। रामायण काल में इस क्षेत्र को मरुकान्तर कहा गया है जहाँ शुक्राचार्य ने शेव मत का प्रचार किया था। महाभारत में ईरान को आर्याण कहा गया है और यहाँ के शासक राजा शाल्व थे जो महाभारत युद्ध में भाग लिये थे। महाभारत काल में भारत के पश्चिमी भूभाग को अपगण कहा गया है जो विकृत होकर अफगानिस्तान हो गया इसी क्षेत्र में गन्धारी कुरु राजवंश की कुलवधु थीं। महर्षि पाणिनि तक्षशिला के निकट सलता (शलातर) के निवासी थे। इस्लाम के उदय से पूर्व भारत और अरब के बीच सांस्कृतिक संबंधों के साथ-साथ व्यापारिक संबंध थे। मुहम्मद पैगम्बर (570-632 ई.) ने इस्लाम धर्म की स्थापना की। पैगम्बर ने अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त करने के लिए युद्धों और राजनीतिक गठवन्धनों का सहारा लिया। वास्तव में पैगम्बर के प्रारम्भिक धर्म प्रचार के समय मक्का में काफी विरोध हुआ था। अंतत: 8 हिजरी अर्थात् 630 में मक्का पर विजय हुई। पैगम्बर की मृत्यु के पश्चात् खलीफा इस्लामी जगत् का धार्मिक और राजनीतिक प्रधान हुआ। खलीफाओं के काल में भारत विजय के अनेक असफल प्रयास हुए।

प्राचीन और मध्ययुगीन इतिहास में पश्चिमोत्तर भारत का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में बौद्ध धर्म के अनुयायी भारत से इन्हीं मार्गों द्वारा मध्य एशिया रवोतान काशगर आदि देशों में धर्म प्रचारार्थ गये। प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग फाहियान तथा ह्वेनसांग इन्हीं उत्तर पश्चिम के मार्गों द्वारा भारत आये। उत्तर पश्चिम के पर्वतों की विभिन्न शृंखलाओं के कारण उत्तर पश्चिम के दरों से भारत में प्रवेश किया जा सकता था। इन्हीं दरों से अरब-तुर्क आक्रमणकारी भारत में प्रवेश किये। भारत पर प्रथम विदेशी आक्रमण ईरान के हखामंनी वंश के राजाओं ने किया। ईरानी आक्रमण के बाद भारत को युनानी आक्रमणकारी सिकन्दर का सामना करना पड़ा। सिकन्दर के आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था जिसमे कुछ गणतंत्रात्मक एवं कुछ राजतन्त्रात्मक थे। मौर्योत्तर काल में भारत पर पर्थियन (पहलव)ए सीथियन (शक) यू-जी (कुषाण)

^{*}प्रवक्ता, इतिहास विभाग, राजा देवी महिला महाविद्यालय, सल्लहपुर, भटनी, देवरिया (उ.प्र.)

आदि विदेशी आक्रमणकारियों का आक्रमण हुआ। गुप्तकाल में हूणों का आक्रमण हुआ। शृंखलाबद्ध विदेशी आक्रमणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं- प्रथम- विदेशी आक्रमणकारियों का प्रवेश द्वार पश्चिमोत्तर भारत का क्षेत्र रहा, दूसरा- जब भारत की राजनीतिक एकता खंडित हुई तब आक्रमणकारी सफल हुए। लेकिन हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भारत में शक्तिशाली केन्द्रीय राजनीतिक शिक्त की कमी परिलक्षित होती है। ऐसे में भारत पर अरब तुर्क आक्रमण का प्रभाव दूरगामी और सर्वाधिक विनाशकारी साबित हुआ।

खलीफाओं के काल में भारत विजय के अनेक असफल प्रयास हुए। प्राप्त विवरणों से विदित है कि शाही सेना भारतीय सीमान्त पर अनेक बार आक्रमण कर चुकी थी। परन्तु ईराक के शासक हज्जाज का भतीजा और दामाद मुहम्मद बिन कासिम का सिन्ध आक्रमण सफल रहा। कासिम ने 712 ई. में सीरिया व ईराक के 6000 चुने हुए योद्धा उतनी ही संख्या में ऊँटों पर सवार सशस्त्र सैनिक तथा 3000 बैक्ट्रियन ऊँटों के साथ भारत आक्रमण के लिये चला। जब वह मकरान पहुँचा तो वहाँ का गवर्नर मुहम्मद बिन हारून अपनी सेना सहित उससे आ मिला और उसकी सहायता के लिए युद्ध सामग्री व 5 मंजनीक (पत्थर बरसानेवाली मशीन) समुद्री मार्ग से देवल भेजा। सेना सहित 712 ई. की बसन्त ऋतु में देवल पहुँच गया। रास्ते में दाहिर के शासन से असंतुष्ट जाट व मेड भी मुहम्मद बिन कासिम के साथ मिल गये। मुहम्मद बिन कासिम बेत के दुर्ग पर अधिकार करता हुआ रावर की तरफ बढा। दाहिर ब्राहाणवाद से रावर के दुर्ग आया। 20 जून 712 ई. के दिन दोनों सेनाओं में धमासान युद्ध हुआ जिसमें दाहिर मारा गया। कासिम आगे बढकर ब्राहाणावाद पर अधिकार लिया। यहाँ बहुमुल्य सामग्री के अतिरिक्त दाहिर की दूसरी विधवा रानी लाडी व उसकी दो राजकुमारियों सूर्यदेवी और परिमल देवी भी प्राप्त हुईं जिन्हें उसने खलीफा की सेवा में भेज दिया। सारा सिन्ध अरबों के अधीन आ गया। अरबों ने देवल पर अधिकार कर वहाँ के 17 वर्षों से अधिक आयू वाले उन सभी पुरुषों का वध कर डाला जिन्होंने उसकी अधीनता नहीं मानी। चचनामा के अनुसार मुल्तान पर अधिकार कर वहाँ के नगरवासियों का वध किया गया। मुल्तान के एक मन्दिर से कासिम को 230 मन सोना एवं स्वर्ण चूर्ण से भरे 40 घडे जिसका वजन 13200 मन था प्राप्त हुआ।⁵ यहाँ से अरबों को इतना धन मिला कि उन्होंने इस नगर का नाम स्वर्ण नगर रख दिया। चचनामा के अनुसार बिन कासिम को खलीफा सुलेमान ने 715 ई. में मृत्यु दण्ड दे दिया। मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के समय खलीफा वालिद प्रथम (705-15 ई.) और जब उसको मृत्यु दण्ड दिया गया तो खलीफा सुलेमान (715-43) था।⁶

खलीफा हिशाम (724-43) के समय सिंध का गवर्नर जुनैद बना। अरब आक्रमणकारी जुनैद ने आठवीं सदी के प्रारम्भ से ही सिंध गुजरात काठियावाड़ राजपूताना और मालवा पर कई आक्रमण किये। परन्तु उज्जैन का प्रतिहार शासक नागभट्ट प्रथम जुनैद को बुरी तरह पराजित किये।

ग्वालियर अभिलेख के श्लोक 4 में कहा गया है कि उसने म्लेच्छाधिप की बलवती सेनाओं को पराजित किया। म्लेच्छ शासक की विशाल सेनाओं को चूर करने वाला वह मानो नारायणस्वरूप लोगों की रक्षा के लिए उपस्थित हुआ था। अल बिलादुरी भी कहता है कि अरब सेनाओं का आक्रमण उज्जैन के विरुद्ध असफल रहा। जुनैद पर प्रतिहार वंशी शासक उज्जैन के नागभट्ट प्रथम की विजय का प्रमाण पुलकशिराज के नौसारि अभिलेख से होता है।

खलीफा मरवान द्वितीय (744-50) के समय जुनैद का उत्तराधिकारी तमीम हुआ। नागभट्ट प्रथम का महासामन्ताधिपति चाहामान भर्तृवड्ढ ने अरबों को उखाड फेंका। इसकी पुष्टि अल बिलादुरी के कथन से भी होता है कि जुनैद का उत्तराधिकारी तमीम कमजोर सिद्ध हुआ और उसे भारतवर्ष के ऐसे अनेक स्थानों से हटना पड़ा जो पहले उसके अधिकार में था।

खलीफा जाफर अल मंसूर (754-75) के समय अरबों ने भारत में साम्राज्य विस्तार करने का पुन: प्रयास किया। 759 ई. में उमर विनजमाल के नेतृत्व में गुजरात पर आक्रमण हुआ। यह प्रयास असफल रहा परन्तु उसने गंधार को अधिकृत कर अपनी विजय नीति को स्थायी करने के लिए वहाँ एक मस्जिद का निर्माण कराया। चाहमान सामंत भर्तुवड्र द्वितीय के वि. स. 803-745 ई. हांसोठ अभिलेख से स्पष्ट होता है कि अरबों को बहुत पीछे धकेल दिया। नागभट्ट के जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

यद्यपि खलीफाओं द्वारा भारत विजय के अनेक प्रयास किये गये लेकिन प्रतिहार शासकों द्वारा अरब आक्रमणकारी पराजित हुए। फिर कुछ क्षण शान्ति की दिशा में भी आगे बढ़े। खलीफा हारून रसीद (786-809) के बीमार पड़ने पर भारत से मनका नामक चिकित्मक भेजा गया।8 ब्रहासिद्यन्त की पुस्तक का अरबी में अनुवाद अलफसारी ने किया जिसका नाम श्महान सिद्धान्त हिन्दश् रखा था।

खलीफा मामुन (808-833) के समय सुल्तान वेग वारिस अथवा बशर का आक्रमण प्रतिहार राज पर हुआ। परन्तु प्रतिहार शासक नागाभृट्ट द्वितीय (800-833) ने अपने सामन्त गोविन्दराज की सहायता से पराजित कर खदेड दिया। प्रतिहारवंशी मिहिरभोज (836-885) की राजनीतिक और सैनिक सफलताओं का उल्लेख अरब सौदागर सुलेमान और कल्हण के राजतरांगिनी में मिलता है। मिहिरभोज के साम्राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय पश्चिमोत्तर भारत में सिंध एवं मुल्तान के अरब राज्य की सीमा तक विस्तृत था। अल बिलादुरी का कथन है कि अरब लोग भारतीयों के निरन्तर होने वाले प्रहारों से बचने के लिये अल-हिन्द की सीमा पर अल महफूज नामक नगर बसाने को विवश हुए। अरब सौदागर सुलेमान 815 ई. में भारत आया था। उसने भारतीय सम्राट मिहिर भोज के सम्बन्ध में लिखा कि भारतीय राजाओं में उसके समान इस्लाम विरोधी अन्य कोई राजा नहीं था लेकिन अरब आक्रमणकारी की चर्चा नहीं करता।

प्रतिहार शासक महिपाल ने भी अरब आक्रमणों को विफल कर दिया। अरब यात्री अल मसूदी ने महिपाल के शौर्य एवं शिक्त का वर्णन किया है। वह लिखता है कि मुल्तान और सिंध के तरफ से तुर्क आक्रमण होते रहे परन्तु महिपाल प्रथम की शिक्त के आगे शून्य ही रहा। भारतीय विवरणों में आक्रमणकारियों का अभाव है। इस प्रकार प्रतिहार शासकों की शिक्त के आगे अरबों का विस्तार मिंध और मुल्तान तक सीमित रहा। परन्तु महिपाल के बाद प्रतिहार वंश की शिक्त क्षीण हुई। प्रतिहार शासक राजपाल और त्रिलोचनपाल महमूद के आक्रमण से समाप्त हो गये।

उमय्यद वंश के खलीफाओं की समाप्ति के पश्चात् अब्बासी वंश ने खलीफा पद का भार ग्रहण किया। अब्बासी खलीफाओं के समय तुर्कों का इतना प्रभाव बढ़ा कि खलीफाओं ने तुर्कों को अपना अंगरक्षक बनाया। अल्प काल में तुर्कों का इतना प्रभाव बड़ा कि खलीफा तुर्कों के हाथ का खिलीना मात्र हो गया। गजनी में अलप्तगीन स्वतंत्र राज की नींव डाली। उसके उत्तराधिकारियों का भारत के सीमान्त नगरों पर अनेक अभियान हुआ। जिसमें सर्वाधिक सफल अभियान सुबुक्तगीन का पुत्र महमूद गजनवी का आक्रमण था।

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय बगदाद का खलीफा अल कादिर बिल्ला था। महमूद ने खैबर दर्रा होकर भारत पर अनेक बार आक्रमण किया। महमूद ने भारतवर्ष में बुतपरस्ती मूर्तिपूजा को समाप्त करने के लिए काफिरों (हिन्दुओं) के प्रति जेहाद (आक्रमण) करने के लिए प्रतिज्ञा की। पंजाब के हिन्दुशाही शासक जयपाल के साथ पेशावर के निकट 27 नवम्बर 1001 को महमूद गजनवी के साथ युद्ध हुआ। जयपाल पराजित हुआ। जयपाल 250000 दीनार और 50 हाथी भेंट देकर मुक्त हुआ। अपनी वृद्धावस्था में इस अपमान को सह न सका। अपनी गद्दी आनन्दपाल को देकर स्वयं प्रज्वलित चिताग्नि में वह जीवित दग्ध हो गया। महमूद ने 1008 में पंजाब पर आक्रमण किया। पेशावर के निकट आनन्दपाल और महमूद की सेनाएँ आमने-सामने हुई। आनन्दपाल पराजित हुआ। इस विजय मे महमूद का उत्साह काफी बढ़ गया और उसने नगरकोट पर आक्रमण करके लूट-पाट की। महमूद को यहाँ से 70000 स्वर्ण दीनारें, 700 मन सोने-चाँदी के बर्तन, 200 मन शुद्ध स्वर्ण, 2000 मन अपरिष्कृत चाँदी तथा 20 मन विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य मणियाँ प्राप्त हुई।10 यह पहला अवसर था जब उसे इतना धन प्राप्त हुआ। महमूद ने थानेश्वर पर 1014 में आक्रमण किया। इस नगर को खुब लूटा। महमूद पहली बार भारत भूमि पर कश्मीर के शासक लोहार वंशी संग्रामराज से लोहकोट के दुर्भेद्य दुर्ग के सामने पराजित होकर लौट जाना पड़ा।¹¹ खवारिज्म विजय के पश्चात् 1018 में उसने पूर्वी भारत की प्रमुख राजधानी कन्नौज पर आक्रमण किया। प्रतिहार शासक राजपाल भाग गया। उसने बरन (बुलन्दशहर) और महावन (मथुरा) को लूट-पाट कर तहस-नहस कर दिया। 1019-20 ई. में महमूद ने प्रतिहार शासक त्रिलोचनपाल को पराजित किया। महमूद ने 1025-26 ई. में सोमनाथ पर आक्रमण किया।

चाहमान वंशीय शासक ने गोविन्दराज को वैरिधरट् अर्थात् शत्रुओं को चूर करने वाला कहा गया है। राजशेखर अपने प्रबन्धकोश में कदाचित् उसे ही गडं नाम देते हुए महमूद सुल्तान के ऊपर विजय का श्रेय देता है। फरिश्ता कहता है कि महमूद 1024-25 में आक्रमण के समय मारवाड़ का मार्ग छोड़ कर सिंध के मार्ग से इस कारण जाना पड़ा कि अजमेर के राजा ने गुजरात के राजा भीम के साथ एक बड़ी मेना लेकर उसका मार्ग रोक दिया था।

सुल्तान मसूद 1030–40 के समय अहमद नियाल्तगीन ने आक्रमण किया। वह बनारस तक पहुँच गया जिसको चंदेल शासक विद्याधर के सामंत गांगेयदेव (1019–1041) ने पराजित किया। गंगेयदेव के अधीन बनारस था। उस समय खलीफा कायम (1031–75) था।

सुल्तान मसूद तृतीय (1099-1115) के समय हाजी तुगातिगिन ने आक्रमण किया। उसने कन्नौज पर आक्रमण किया। उस समय कन्नौज का शासक गहडवाल वंशीय शासक मदनपाल था। भारतीय अभिलेखों के अनुसार मदनचन्द्र का पुत्र गोविदचन्द्र ने तुर्क आक्रमणकारी को हराया। गोविन्दचन्द्र के समय दूसरा आक्रमण सलार मसूद ने 1118 ई. में किया । गोविन्दचन्द्र ने इस तुर्क अभियान का डटकर मुकाबला किया। सालार मसूद मारा गया। उसमय खलीफा मुस्तजहिर (1094-1118) था।

गजनी के बहरामशह (1117-1157) ने कई बार आक्रमण किया। चाहमान शासक अजयराज को गजन मातंगो (गजनी के म्लेच्छों) पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया जाता है। अजयराज ने अजयमेरु (अजमेर) नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया।

तुर्क आक्रमणकारी याशीनी सुल्तान खुसरू शाह (1153–1160 ई.) में भारत पर आक्रमण किया। चाहमान शासक विग्रहराज चतुर्थ ने तुर्क आक्रमणकारी को पराजित किया। विग्रहराज चतुर्थ के दिल्ली अभिलेख से यह प्रकट होता है कि उसने म्लेच्छों का समूलोच्छेद कर आर्यावर्त देश नाम का उसका वास्तविक अर्थ प्रदान किया। सोमदेव कृत लिलत विग्रहराज नाटक में भी तुर्कों के साथ होने वाले संघषों का उल्लेख मिलता है। गाहडवाल राजा विजयचन्द्र के शासन के समय खुसरू शाह का कोई अधिकारी अथवा सेनापित जिसने दिल्ली अथवा गाहडवाल क्षेत्रों पर आक्रमण किया था। परन्तु तुर्क आक्रमणकारी पराजित हुआ।

गिज्ज तुर्कों द्वारा सुल्तान संजर (1117-57) को पराजित किया गया। गजनी पर गयासुद्दीन गोरी ने आधिपत्य जमा लिया और अपने छोटे भाई मुईजुद्दीन मुहम्मद इब्रसाम को वहाँ का शासक नियुक्त किया। उसने गजनी साम्राज्य का अपने को वास्तविक उत्तराधिकारी समझते हुए उसने भारत की ओर दृष्टि फेरी। 1178 में गोरी ने चालुक्य राज्य पर भी चढ़ाई की किन्तु वहाँ के वीर भीमदेव द्वितीय से काशहद के मैदान में पराजित हुआ। लेकिन काशहद की लड़ाई में हारकर भी गोरी अपने उद्देश्यों से विस्त नहीं हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि तराइन युद्ध से पूर्व भी पृथ्वीराज और गोरी के

सेनाओं में कई मुठभेड़ें हो चुकी थीं। हम्मीर महाकाव्य और पुरातनप्रबंधसंग्रह के अनुसार पृथ्वीराज ने सात बार गोरी के विरुद्ध विजय प्राप्त की। तराइन के द्वितीय युद्ध में शहाबुद्दीन गोरी की विजय हुई। चंदवर (1194) युद्ध में जयचन्द की पराजय से भारत में साम्राज्य स्थापित करने का गोरी का संकल्प पूरा हुआ।

वैसे तो अरब तुर्क आक्रान्ताओं की लम्बीशृंखला रही। परन्तु भारतीय शासकों के प्रबल प्रतिरोध के कारण लम्बे संघर्ष के बाद भारत में तुर्क आक्रमणकारियों की सत्ता स्थापित हो सकी। वास्तव में मुस्लिम आक्रमणों के समय भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों के शासक साम्राज्य लिप्सा में वशीभूत होकर प्राय: अपने पड़ोसी शासकों से युद्ध करते थे। वे एक-दूसरे के पतन में अपना गौरव समझते थे। हर्ष की मृत्यु के बाद देश में कोई ऐसी केन्द्रीय शक्ति नहीं रह गयी जो विपत्ति काल में भी भारतीय शासकों को संगठित कर सके। ऐसी दशा में उत्तर पश्चिम सीमा की सुरक्षा का कार्य उपेक्षित हो गया। प्रत्येक शासक केवल अपने ही राज्य की सुरक्षा का ध्यान रखते थे। भारतीय शासकों ने व्यक्तिगत वीरता और प्राचीन युद्ध के नियमों में जकड़े रहे जबिक तुर्क आक्रमणकारी किसी भी तरह विजय प्राप्त करने के लिए तत्पर रहे। तुर्क आक्रमणकारी किसी भी तरह विजय प्राप्त करने के लिए तत्पर रहे। तुर्क आक्रमणकारी किसी भी तरह विजय प्राप्त करने के लिए तत्पर रहे। तुर्क आक्रमणकारी किसी भी तरह युद्ध जीतने का जज्बा था। फिर भी हम अपने देश की एशिया और यूरोप के उन देशों से तुलना करते हैं, जिन्होंने अरब तुर्क आक्रमणकारियों के सम्मुख आत्म समप्रण कर दिया था जबिक हमें अपने पूर्वजों की सराहना करनी पड़ेगी जिन्होंने दीर्घ काल तक उन शत्रुओं का मुकाबला किया जिसके सामने एशिया अफ्रिका और यूरोप के देशों ने हाथ खड़े कर दिये थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- 1. हेग- केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग 3, पृ. 2
- 2. प्रसाद, ईश्वरी भारतीय मध्ययुग का इतिहास, पृ. 52
- 3. इलियट एवं डाउसन हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टॉरियन भाग 1 पृ. 121-122
- 4. हेग कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग 3 प्र. 5
- 5. इलियट एवं डाउसन (चचनामा) भाग । पृ. 206
- हबीव और निजामी दिल्ली सल्तनत भाग 1 पृ. 111
- 7. ग्वालियर अभिलेख श्लोक 4
- 8. सुलेमान नदवी अरब भारत संबंध, पृ. 187-194
- इलियट एवं डाउसन भाग 2 पृ. 25
- 10. मुहम्मद हवीब सुल्तान महमूद ऑफ गजनी, अलीगढ़ 1927, पू. 30
- 11. मुहम्मद नाजिम दि लाइफ ऐण्ड टाइम्स ऑफ सुल्तान ऑफ गजनी, पृ. 104
- 12. रैवर्टी तबकाते -नासिरी भाग 1 पृ. 451-452

अद्वैत वेदान्त में साक्षी और उसकी सार्थकता

सविता गुप्ता*

संक्षेपिका : अद्वेत वेदान्त में परम चैतन्य तत्त्व ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार की गयी है जो सिच्चिदानन्द स्वरूप है। चैतन्य से व्यतिरिक्त सम्पूर्ण जड़ जगत् मिथ्या है, आभास है, माया का विकार है जिसकी सत्ता व्यावहारिक स्तर पर ही है परमार्थत: एकमात्र ब्रह्म चैतन्य ही है। यही ब्रह्म चैतन्य जागतिक प्रपंचार्थ तीन रूपों में अभिव्यक्त होता है। ईश्वर, साक्षी और जीव चैतन्य। इन तीनों रूपों की सत्ता भी व्यावहारिक स्तर पर ही है, परमार्थत: इसका समाहार ब्रह्म चैतन्य में ही हो जाता है। विशुद्ध ब्रह्म चैतन्य माया से अविच्छिन्न होकर एवं माया को अपने वशीभूत कर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वर रूप में अभिव्यक्त होता है जो सृष्टिकर्ता, पालक एवं संहारक होने के साथ जीवों का कर्मफल प्रदाता है। साक्षी ब्रह्म का निर्विकार चैतन्य रूप है जो विशुद्ध ज्ञाता, उदासीन एवं तटस्थ द्रष्टा एवं समस्त स्थूल-सूक्ष्म पदार्थों की प्रतीति का अधिष्ठान होने के साथ जीव की तीनों अवस्थाओं का प्रकाशक भी है। साक्षी माया से प्रभावित नहीं होता इसी के साक्षित्व के आधार पर ईश्वर जीवों को कर्मफल प्रदान करता है। विशुद्ध परम चैतन्य ब्रह्म अपने स्वरूप से पूर्णत: इतर रूप जीव में अभिव्यक्त होता है जो अन्त:करण से अविच्छन्न चैतन्य, अज्ञानी, विविध कर्मकर्ता सुख-दु:ख फल भोक्ता है। जीव माया के वशीभूत होकर जन्म-मरण के चक्राधीन होता है।

अद्वैत वेदान्त में ईश्वर जागितक प्रपंचों का निर्माता है, सर्वज्ञ है, अत: उसे सत्य-असत्य, ज्ञात-अज्ञात, बाह्य तथा आभ्यान्तर सभी ज्ञात है। इसके विपरीत जीव जागितक प्रपंचों का भोकता है वह विश्व-भ्रम में पड़ता है। उसकी विशेष दृष्टि होती है जिससे अज्ञान के कारण सत् को नहीं जानता एवं सत्येतर वस्तुओं को ही सत्य मानता है एवं अपने वास्तविक स्वरूप से विमुक्त रहता है। ब्रह्म चैतन्य की ईश्वर और जीव रूप प्रतीति से सम्पूर्ण सृष्टि-प्रपंच व्याख्यायित हो सकता था अत: यहाँ जिज्ञासा होती है कि ब्रह्म की साक्षी रूप में प्रतीति का क्या औचित्य? क्या साक्षी की सत्ता से ईश्वर का सर्वज्ञत्व खण्डित नहीं होता? प्रस्तुत शोध-पत्र में इसका स्पष्टीकरण करने के साथ यह भी दर्शाया गया है कि ईश्वर और साक्षी रोनों से ही विश्व-भ्रम और सत् आवृत्त नहीं होता, रोनों ही अज्ञान को मूलरूप में जानते हैं, किन्तु फिर भी जगदाधिपित होने से ईश्वर कर्तृत्व से ओत-प्रोत है तथा साक्षी अकर्ता, विशुद्ध निर्विकार द्रष्टा मात्र है। अत: समान स्तरीय चैतन्य होने के बाद भी स्वरूप से साक्षी ब्रह्मत्व के अधिक निकट है।

^{*}वरिष्ठ व्याख्याता, दर्शन विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

अद्वेत वेदान्त का मुख्य प्रतिपाद्य अद्वयतत्त्व ब्रह्म चैतन्य है, जिसके चारों ओर अद्वेत दर्शन घूमता है यह चैतन्य सिच्चिदानन्द स्वरूप है, जो परमार्थतः एकमात्र सत्य है किन्तु व्यवहारतः इस जागतिक प्रपंच में सुष्टि निर्माण से सुष्टि भोग हेत् यही ब्रह्म त्रैरूप्य चैतन्य ईश्वर, साक्षी और जीव के रूप में प्रतीत होता है। शुद्ध स्वरूप निर्गृण और निर्विशेष ब्रह्म जगदाधिपति के रूप में सगुण और सविशेष ईश्वर बनता है वही जगत् नानात्व के उपभोग हेतु अविद्यावश विविध कर्मकर्ता एवं सख-दु:ख रूपी फल भोक्ता जीव रूप में भी अभिव्यक्त होता है। इन द्विरूप के साथ अद्वैत वेदान्त में साक्षी चैतन्य का सम्प्रत्यय भी मिलता है, जो ब्रह्म चैतन्य का प्रज्ञान रूप होने के साथ ईश्वर और जीव के मध्य चैतन्य की एक अवस्था है जो एक ओर ब्रह्म के समान निर्विकार, असंग और ज्ञान स्वरूप है तो दूसरी ओर प्रति मुहुर्त जीव के साथ रहते हुए उसके प्रत्येक कर्म का अनवरत उदासीन द्रष्टा मात्र है जिसके साक्षित्व को प्रमाण मानकर ईश्वर जीवों के कर्मफल का विधान करता है। सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सविशेष ईश्वर इस सुष्टि का निर्माता, पालक एवं संहारक होने के साथ जीवों का कर्मफल प्रदाता भी है, और जीव अल्पज्ञ, अविद्या से वशीभृत इस सुष्टि का उपभोग करते हुए विविध कर्मकर्ता और फल भोक्ता है। ब्रह्म चैतन्य की इन दो प्रतीतियों से ही सम्पूर्ण जागतिक प्रपंच घटित और व्याख्यायित हो सकता था तब स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म चैतन्य की साक्षी रूप में प्रतीति स्वीकार करने का क्या प्रयोजन है? पुन: ईश्वर के सर्वज्ञत्व के पश्चात् साक्षित्व का क्या औचित्व हो सकता है? इस शोध पत्र में इस तथ्य को उजागर करने के साथ अद्वैत वेदान्त में साक्षी-स्वरूप पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालने के साथ यह भी दर्शाने का प्रयास किया गया है कि ईश्वर और साक्षी समान स्तरीय चैतन्य होने के पश्चात भी साक्षी स्वरूपत: ब्रह्म चैतन्य से अधिक साम्य रखता है।

I

साक्षी चैतन्य अद्वैत वेदान्त का कोई नवीन तत्त्व नहीं है अद्वैत वेदान्त से पूर्व वैदिक एवं औपनिषदीय वाङ्मय में प्रयुक्त कुछ अवतरणों से साक्षी के लिये प्रमाण प्राप्त होता है किन्तु 'साक्षी' शब्द इनमें यौगिक पदों में प्रयुक्त हुआ है साक्षी शब्द रूप से नहीं परन्तु इनका अर्थ स्पष्ट रूप से साक्षी पद से ही है यह माना जा सकता है तदनुसार साक्षी सब प्राणियों में रहने वाला आत्म स्वरूप, सर्वदा सब कुछ का साक्षात् द्रष्टा है। "साक्षात् दृष्टिर संज्ञायाम्" इस सूत्र से द्रष्टा अर्थ में साक्षात् शब्द में इति प्रत्यय करके साक्षी शब्द बना है। साक्षी का लक्षण भी बोद्धा होकर जो उदासीन हो अर्थात् ''दृष्ट्टित्वे सित उदासीनत्वं साक्षित्वम्'' यही होता है। संसार में उदासीनता का बोधक होने के कारण ही इसका साक्षित्व सिद्ध होता है। जो द्रष्टा हो, ज्ञाता हो और स्वयं उदासीन हो वह साक्षी है। साक्षी का स्वरूप सर्वप्रथम श्वेताश्वेतर उपनिषद् तथा भाष्य में स्पष्ट वर्णित है तदनुसार समस्त प्राणियों में छिपा हुआ एक, सर्वसाधारण एवं अद्वितीय, प्रकाश स्वरूप, सर्वव्यापी, सभी जीवों का

अन्तरात्मा, समस्त प्राणियों द्वारा किये जाने वाले विभिन्न कार्यों का अध्यक्ष, अधिष्ठाता (कोई कार्य होते समय उसमें व्यावृत हुए बिना पृथक रहकर ही उसको देखने वाला), सभी भूतों (प्राणियों एवं जीवों) के सिहत उनमें या उनके समानाधिकरण होकर रहने वाला आत्म स्वरूप साक्षी है। पंचदशी में पुराणों में किए कृटस्थ (साक्षी) के विवेचन को स्पष्ट किया है - शिव ही वृत्ति का और उदय से पूर्व उस वृत्ति के प्रागमाव का साक्षी होकर तथा म्वरूप को जानने की जिज्ञासा होने पर उसका साक्षी और उस जिज्ञासा से पूर्व 'में अज्ञानी हूँ' इस रूप में अनुभूयमान अज्ञान का साक्षी होकर स्थित है। यही शिव जगत् के अधिष्ठान रूप में सत्य, पदार्थों का अवभासक होने से 'चिद्रृप' तथा सदा प्रेम का विषय होने से आनन्द स्वरूप और सब का संबंधी होने से संपूर्ण कहलाता है। इस प्रकार सूत संहितादि शैव पुराणों में जीव, ईश्वर आदि की कल्पना से रहित केवल, अद्वितीय स्वयं प्रकाश चैतन्य रूप शिव नामक कृटस्थ (साक्षी) तत्त्व का विवेचन किया है।

न्याय रत्नावली⁴ में कहा है जो कूट निर्विकार हो वह कूटस्थ ही साक्षी है। साक्षी के कूटस्थ होने से तात्पर्य उसके अपिरणामी होने से है। ब्रह्मनन्द सरस्वती⁵ भी कहते हैं साक्षी प्रमाता आदि से समान सुखादि रूप स्वसम सत्ता के पिरणाम को प्राप्त नहीं होता इसिलिए साक्षी को कूटस्थ कहा जाता है। कृटस्थ होने से, सदा एकरस बने रहने के कारण तथा सबका अधिष्ठान होने से साक्षी सर्वदृश्य भासक भी है। विद्यारण्य ने कूटस्थ दीप प्रकरण में देह द्वयाधिष्ठान भूत स्वावच्छेक स्थूल, सृक्ष्म दोनों शरीरों के साक्षात् द्रष्टा तथा कर्तृत्व आदि विकार से शृन्य कृटस्थ चैतन्य को साक्षी कहा है।

पंचदशी में कहा है अहंकार रूप कर्ता को, 'अहं-इदं' इन दो वृत्ति रूपी क्रिया को (आँतरिक, बाह्य सभी क्रिया) तथा दृक् (अनुभाविता वर्ग) से भिन्न एवं परस्पर विलक्षण समस्त विषयों या दृश्य वर्ग को नित्य चैतन्य का जो रूप एक साथ प्रकाशित करता है वही साक्षी है। साक्षी कैसे एक साथ सबको प्रकाशित कर सकता है? इस शँका का समाधान पंचदशी में किया है कि जैसे नृत्यशाला में रखा दीपक नृत्यशाला के स्वामी, सभ्यों तथा नर्तकी को बिना भेदभाव के प्रकाशित करता है और उसके उपस्थित न रहने पर स्वयं भी प्रकाशित होता रहता है, उसी प्रकार साक्षी अहंकार, बुद्धि आदि सभी विषयों को प्रकाशित करता है साथ ही सुषुप्ति आदि के समय तथा अहंकार आदि के न रहने पर वह प्रकाशित होता रहता है।

अद्वैत वेदान्त में साक्षी सम्प्रत्यय का स्पष्ट विवेचन प्राप्त होता है। अद्वैत वेदान्त में पारमार्थिक दृष्टि से एक ही तत्त्व की सत्ता स्वीकार की गई है जो सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेदों में रहित है; सत्य, चैतन्य, आनन्द रूप होने के साथ ही निष्क्रिय, असंग और अपनी ही महिमा में स्वयं स्थित है। साक्षी इसी परम तत्त्व का एक रूप है जो ज्ञान स्वरूप एवं निर्विकार द्रष्टा है। वह ज्ञान का विषय नहीं वरन् निर्विशेष चैतन्य स्वरूप ज्ञान है। साक्षी के स्वरूप को वार्तिककार स्पष्ट करते हैं जो स्वयं

अदृष्ट होता हुआ भी सबका द्रष्टा, अश्रुत होता हुआ भी सब कुछ सुनने वाला, स्वयं अमत होता हुआ भी सबका मंता है। वह घट की भाँति विज्ञात न होता हुआ भी सबका ज्ञाता है। सर्वज्ञात्मा? मुनि कहते हैं कि स्वाश्रिता माया से उपिहत होकर अपने में ही किल्पत निखिल प्रपंच को प्रपंचाकार अविद्यावृत्ति में स्थित अपने आभास द्वारा प्रकाशित हुआ पर पुरुष या शुद्ध चैतन्य ही साक्षी कहलाता है। यह माक्षी अविद्या-विशिष्ट नहीं है जिससे अविद्या इसे कर्म कर्ता एवं भोक्ता की कोटि में ले आये वरन् चिद्रूप आत्मा ही साक्ष्य पदार्थों के संबंध से साक्षी कहलाता है जो स्वप्रकाश है। साक्षी में स्वप्रकाशता से तात्पर्य ज्ञान स्वरूप होना है। प्रकाशात्मा ने स्वयं प्रकाशता को हेतु बनाकर ही साक्षी को जड़ से पृथक करके उसे सभी कुछ का प्रकाशक सिद्ध किया है। वे कहते हैं कि किसी इन्द्रिय द्वारा न जाना जाते हुए भी सदा अपरोक्ष स्वानुभूतिगम्य होने से ही साक्षी स्वयं प्रकाश है और वही सूर्य लोक के समान सभी प्रकार के विषय प्रकाशों (ज्ञानों) का सर्वसाधारण आश्रय है।

वाचस्पित मिश्र भामती¹¹ में स्पष्ट करते हैं- अहं प्रत्यय के विषय से अतिरिक्त सभी भूतों में कूटस्थ नित्य पुरुष का ज्ञान होता है, वही साक्षी है वस्तुत: परमात्मा का शुद्ध रूप ही साक्षी है जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर का अधिष्ठान भूत कूटस्थ चैतन्य है। अप्यय दीक्षित ने सिद्धाँतलेश संग्रह'² में साक्षी विषयक मतों का संग्रह करके उल्लिखित किया है किन्हीं के मत में अविद्या से उपहित चैतन्य रूप जीव (समिष्ट जीव या एक जीव) ही साक्षात् द्रष्टा होने से साक्षी है, इससे अतिरिक्त कोई साक्षी पदार्थ नहीं है। साक्षी कृटस्थ होने से दर्शन क्रिया का कर्ता नहीं है फिर भी अकर्ता साक्षी में कर्तृत्व आरोपित कर उसे कर्ता कहा जाता है जो उचित नहीं है जैसे अग्नि में दाह शिक्त यावदिग्नभावी है वैसे ही साक्षी में दृक् शिक्त यावदिग्नभावी है अत: जब तक साक्षी रहेगा, तब तक उमकी दृष्ट शिक्त रहेगी उसमें दृष्टि का लोप नहीं होताँ साक्षी अविनाशी अर्थात् अनुच्छित्ति धर्म वाला है। साक्षी स्वरूप दृष्टि जन्म और नाश की साक्षिणी है अत: वह स्वयं जन्म और नाश से शून्य है। जब साक्षी जन्म से पूर्व रहेगा, तभी वह जन्म का साक्षी हो सकता है और जन्म पूर्व रहने पर साक्षी का जन्म कहना व्याहत है और यदि उत्तर काल में साक्षी माना जाए तो भी वह जन्म का साक्षी नहीं हो सकताँ वह स्वनाश का साक्षी कैसे हो सकता है? असाक्षिक जन्म और नाश में प्रमाण नहीं है। अत: जन्म और नाश से रिहत साक्षी स्वत: सिद्ध है एवं साक्षी रूपा दुष्टि नित्य है।

साक्षी स्वयं सिद्ध, क्ट्स्थ ज्ञाता और द्रष्टा है, उसे देखने वाला अन्य कोई नहीं। यदि दृसरा द्रष्टा माना जाए तो अनवस्था होगी, क्योंकि वह भी अपने को पूर्व न्यास से देखेगा िर दूसरे की अपेक्षा होगी, फिर तीसरे की, और यह क्रम समाप्त न होंगे, अंतत: यही मानना पड़ेगा कि साक्षी स्वयं सिद्ध एवं स्वयं प्रकाश है, वह स्वयं ज्ञान का विषय नहीं हो सकता इसिलए अप्रमेय है किन्तु प्रमाणों का साधक है अत: उसकी सिद्धि प्रमाणों द्वारा नहीं हो सकती वह अविषय स्वभाव है अत: उसका

विषयत्व रूप से निर्देश करना सर्वधा अशक्य है।

अद्वैत वेदान्तानुसार साक्षी ब्रह्म का ही एक रूप है जो विशुद्ध द्रष्टा, समस्त पदार्थों (ज्ञात-अज्ञात) का अधिष्ठान, जीव की तीनों अवस्थाओं का प्रकाशक, अविनाशी, असंग, अविक्रिय, नित्य, निर्विकार, निर्विशेष, सर्वान्तर, प्रकाश स्वरूप, सर्व-प्रकाशक ज्ञान स्वरूप चैतन्य मात्र है जिसका परमार्थत: ब्रह्म से एकाकार हो जाता है।

H

साक्षी ब्रह्म की व्यावहारिक प्रतीति है जो मुख्यत: ईश्वर और जीव के मध्य है किन्तु साक्षी स्वरूपाधार पर स्पष्ट दृष्टिगत होता कि साक्षी ब्रह्म के अधिक निकट है। आचार्य शंकर¹⁵ ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट करते है ब्रह्म सत् अद्वितीय, शुद्ध, विज्ञान, घन, निर्मल, शाँत, अविक्रिय, आनन्द म्वरूप है। वह नित्य, काल रहित प्रमाणादि का अविषय, स्वयं प्रकाशमान, ज्ञाता, ज्ञान और जेय की त्रिपुटी से परे मन, वाणी का अविषय, अप्रमेय, अनन्त निर्विकल्प और अखण्ड चैतन्य मात्र है। वह निष्क्रिय, नित्य कूटस्थ, एकमेव, सर्वदा एक रूप भेद रहित, अपरिवर्तनशील, अपने स्वरूप में स्थित रहने वाला अज्ञेय, अग्राह्म, गुणातीत, निराकार है जो असंग होने के साथ सब प्रकार की उपाधि भेदों से रहित, शुद्ध ज्ञान स्वरूप एवं सर्वप्रकारक ज्ञान का आधार और सर्वज्ञ है।

अद्वैत वेदान्त में वर्णित साक्षी स्वरूप में ब्रह्मत्व ही विदित होता है। ब्रह्म के कुछ विशेषण स्पष्ट रूप से साक्षी को ही इंगित करते हैं। **माण्ड्रक्य कारिका**¹⁶ में उल्लिखित है जो सर्वाधिष्ठान, सर्वोपादान, तत्त्वत: निर्विकार, अद्वितीय किन्तु विवर्तमात्र रूप से सर्व है उसे कहते हैं ब्रह्म और इस ब्रह्म का स्वरूप है प्रज्ञान। प्रज्ञान का अर्थ है प्रकृष्ट ज्ञान। ज्ञान में प्रकृष्टता है ज्ञान का श्रेष्ठ रूप जहाँ ज्ञाता और ज्ञेय के भेद से रहित केवल ज्ञान ही ज्ञान है, जहाँ अलग से कोई जड ज्ञेय नहीं है, न ही उस ज्ञेय को जानने वाला (ज्ञाता) अहम् अलग है, जहाँ केवल शुद्ध ज्ञान है, चेतन ही चेतन है। ब्रह्म के इस रूप में माक्षी को ही बताया गया है क्योंकि साक्षी केवल ज्ञान स्वरूप है, विशुद्ध ज्ञाता है। साक्षी अक्षर है वह स्वयं अविज्ञात रहकर दूसरों का विज्ञाता है 'अत्रयं पुरुष: स्वयं ज्योति:' श्रुति ब्रह्म के जिस स्वयं ज्योतिर्मय स्वरूप का प्रतिपादन करती है वह उसके साक्षी स्वरूप को ही बताता है। ब्रह्म को सभी का प्रकाशक बताते हुए कहा है घटादि स्वयं अप्रकाशित होने से अपनी उपलब्धि में दूसरे प्रकाश (सूर्यादि) की अपेक्षा रखते हैं किन्तु तेजोमय सूर्यादि पदार्थों की अभिव्यक्ति भी ब्रह्म से ही होती है क्योंकि सूर्यादि भी (पदार्थ है) जड है। स्वप्नावस्था में सूर्यादि के प्रकाशक न होने पर भी उस आत्म ज्योति से सबकी प्रतीति होती है अत: ब्रह्म को स्वयं ज्योति स्वरूप माना गया है। साक्षी भी स्वप्न, जाग्रत एवं सुषुप्ति अवस्था में प्रकाशमान रहता है। ब्रह्म के इस स्वयं ज्योति स्वरूप से स्पष्टत: साक्षी की ही ओर संकेत किया गया है। असुप्त: सुप्तान भी चक्रशीति, (स्वयं न सोता हुआ सोए हुए समस्त पदार्थों को प्रकाशित करता है) अत्रय: (स्वप्नावस्था में यह स्वयं ज्योति स्वरूप होता है) नाहि विज्ञातु (विज्ञाता की विज्ञान शक्ति का सर्वथा लोप नहीं होता) इस प्रकार की श्रुतियाँ ब्रह्म के जिस स्वरूप का प्रतिपादन करती है उसका अन्तर्भाव साक्षी में हो जाताँ

चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के निखिल प्रपंच का आधार साक्षी ही है अत: इसमें ब्रह्मत्व मानना उचित ही है जैसा श्रुति कहती है पाँच पंचजन (गंधर्व, पितर, देव, रक्षोगुण तथा असुर) तथा आकाश ये छ: पदार्थ जिसमें प्रतिष्टित है वह चैतन्य साक्षी ब्रह्म है। साक्षी का तात्पर्य है अव्यावृत। जैसे घट घटादि परस्पर व्यावृत होते हैं वैसे साक्षी किसी से व्यावृत नहीं होताँ इदं सर्व यद्ययात्मा: इत्यादि श्रुति से कारण-कार्य भेद न्यास से तथा एक विज्ञान से सर्वविज्ञान की श्रौत प्रतिज्ञा से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है साक्षी किसी से व्यावृत नहीं होताँ अनुगति से भी साक्षी में महत्त्व सिद्ध होता है। अमहान घटादि स्वकारण में अनुगत रहते हैं। साक्षी महान् होने से किसी में अनुगत नहीं हो सकता वरन् आत्म व्यतिरिक्त निखिल पदार्थ साक्षी में ही अनुगत है साथ ही नाश विकारादि राहित्य होने से साक्षी कूटस्थ है अतएव ध्रुव है; ब्रह्म भी ध्रुव है। ध्रुवत्व में निर्विकारत्व विविक्षत है जो साक्षी में है, अत: साक्षी ब्रह्म के समान ही है – दोनों में अभेद है।

विद्यारण्य ने **पंचदशी**¹⁷ में साक्षी की स्वयं प्रकाशता को सिद्ध करने के पश्चात् बाध रहितता से साक्षी में ब्रह्मत्व सिद्धि की है। वे कहते हैं कि साक्षी बाध रहित है और बाध रहितता ही सत्यता है। साक्षी इस जगत् के बाध को निर्वाध रूप से जानता है। सुषुप्ति, मूच्छां और समाधि अवस्था में जब स्थृल, सूक्ष्म देहादि रूप यह जगत् नहीं रहता तब उसके अभाव को साक्षी देखता है और उमके न रहने का कोई भी साक्षी नहीं। अत: साक्षी अबाध है क्योंकि साक्षी रहित बाध मान्य नहीं। जैसे घर आदि में रखे हुए आकारवान पदार्थों को घर से निकाल देने पर अमूर्त आकाश ही शेष रह जाता है उसी प्रकार साक्षी से भिन्न सब बाध योग्य मूर्तामूर्त देह इन्द्रिय आदि का 'यह भी नहीं है' इत्यादि श्रुति वाक्यों द्वारा निराकरण कर दिए जाने पर अंत में सब अनात्म पदार्थों के बाध का साक्षी जो बोध मात्र शेष रह जाता है वही बाध रहित साक्षी है। अबाध होने से जो सत्यत्व ब्रह्म में मान्य है वही साक्षी में भी सिद्ध होता है। अत: वह अखण्ड अद्वितीय सिच्चदानन्द ब्रह्म स्वरूप ही है।

साक्षी उपाधि सिन्निधान दशा में तत् तत् उपाधि से विशिष्ट उपाधि को देखता है और निरुपाधि होने पर स्वयं भासित होता है इस अवस्था में साक्षी में साक्षित्व नहीं कहा जा सकता क्योंकि साक्षित्व साक्ष्य सापेक्ष होता है। व्यवहार दशा में किल्पत साक्ष्य विषयों के मम्बन्ध से साक्षी में साक्षित्व किल्पत ही है परमार्थत: विषय नहीं तो साक्षित्व की आवश्यकता भी नहीं और इस किल्पत साक्षित्व से वास्तविक साक्षी की कोई हानि नहीं हो सकती। प्रमातादि उपाधि की जब निवृत्ति हो जाती है तब साक्षी स्वमहिमा से ही सिद्ध होता है एवं स्वयं प्रकाशमान होता है जो ब्रह्म स्वरूप ही है। सर्वज्ञात्म मुनि ने भी कहा है अज्ञान विनिर्मित इस प्रपंच को क्ट्रस्थ, अद्वितीय, दृश्येतर, अविकारी, परमपुरुष इन्द्रियादि कारणों के बिना ही सबका साक्षी होने के रूप से देखता है। साक्षी

में ब्रह्मत्व है किन्तु अज्ञान से तिरोहित है, अतः प्रत्यक्षादि से प्रतीत नहीं होता संक्षेप शारीरिक में कहा है चेतन तत्त्व ब्रह्म ही अज्ञान का आश्रय होता है, अद्वैत्व आनन्दत्वादि रूप से नहीं अपितु प्रत्यक् साक्षी रूप से।

स्पष्ट है साक्षी में ब्रह्मत्व है उसका ब्रह्म से अभेद है किन्तु इस आधार पर ब्रह्म और साक्षी दोनों को दो अलग-अलग सत्ता न मानकर एक ही मानना तर्कत: उचित नहीं है और न ही दोनों एक ही हैं। दोनों में बहुत ही सृक्ष्म अंतर है यद्यपि दोनों ही स्वयं-प्रकाश, ज्ञानरूप, अविक्रिय, निष्क्रिय, तटस्थ हैं तथापि ब्रह्म एक निरपेक्ष सत्ता है जो एकमात्र परमार्थ सत्य है एवं जिससे व्यितिरेक्त किसी की सत्ता नहीं है। उसका अस्तित्व स्वतः सिद्ध है उसे किसी की आवश्यकता नहीं किन्तु साक्षी के लिए साक्षीतर सत्ता का होना आवश्यक है। यदि साक्षीतर सत्ता (दृश्य) नहीं तो द्रष्टा और देखना दोनों ही अर्थहीन है। ब्रह्म द्रष्टा नहीं क्योंकि ब्रह्मेतर कोई दृश्य ही नहीं वह विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है। अविद्या से ज्ञाता-ज्ञेय का भेद होने से साक्षी भी अविद्याकृत ही है क्योंकि ज्ञेय बिना साक्षी निरर्थक है परन्तु ब्रह्म से व्यितिरिक्त कुछ भी नहीं न दृश्य, न द्रष्टा और न ही कोई अन्य सत्ताँ अतः साक्षी व्यावहारिक स्तर पर ही सत्य है, वह व्यावहारिक जगत् का ही द्रष्टा है, दृश्य भी व्यवहार में ही संभव है परमार्थ तो ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञातृभेद रहित है वहाँ एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है जहाँ साक्षी का विलय भी ब्रह्म में हो जाता है।

Ш

अद्वैत वेदान्त में जीव अल्पज्ञ एवं कर्म-फल शृंखला से बद्ध विविध कर्म-कर्ता और फल-भोक्ता है। कर्म जड़ होने के कारण स्वयं फल प्रदान करने में असमर्थ है अत: कर्म फल प्रदाता के रूप में ईश्वर की सत्ता मान्य है परन्तु ईश्वर जीवों को उनके कर्मों का फल तभी प्रदान कर सकता है जब वह समस्त जीवों के कर्मों को निर्विकार भाव से जानता हो, उनका साक्षी हो। यहाँ समस्या थी कि ईश्वर कैसे जीवों के कर्मों को जानता है एवं किस रूप में जीवों के कर्मों का साक्षी बनता है। इसके समाधान हेतु ही अद्वैत वेदान्त में साक्षी को स्वीकार किया जो ब्रह्म का ही एक रूप है तथा अन्त:करण की उपाधि से युक्त है परन्तु अन्त:करण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। साक्षी ही जीवों के समस्त सुकृत्यों, दुष्कृत्यों को निरपेक्ष अनासक्त भाव से देखता रहता है और इसी के साक्षित्व को प्रमाण मानकर ईश्वर जीवों के कर्मफल का विधान करता है। अद्वैत वेदान्त में साक्षी की सत्ता मानने के अन्य कारण भी हैं किन्तु यह प्रमुख कारण माना जा सकता है।

यहाँ जिज्ञासा होती है कि जब ईश्वर में सर्वज्ञत्व होने से उससे कुछ भी आवृत्त नहीं उसे जीवों के समस्त कर्मों का भान है तब उसे साक्षित्व की आवश्यकता क्यों पड़ी? अद्वैत वेदान्त में साक्षी का क्या औचित्य है? अद्वैत मत में ईश्वर सृष्टि का निर्माता, पालक एवं संहारक होने से कर्तृत्व से ओत-प्रोत है अत: वह उदासीन एवं असंग द्रष्टा मात्र नहीं हो सकता साथ ही जीवों के

कर्म-फल का प्रदाता होने के कारण वह निर्णायक की भूमिका का भी निर्वहन करता है। अतः कर्ता एवं निर्णायक होने से ईश्वर के निष्पक्षत्व में कदाचित शँका हो सकती थी। इस शँका की निवृत्ति हेतु ही मुख्यतः साक्षी एवं साक्षित्व की आवश्यकता स्वीकार की गयी। साक्षी भी सर्वज्ञ है; सर्वज्ञत्व के साथ उसमें निर्विकारत्व, असंगत्व, उदासीनत्व दृष्टत्व है। अतः वह न कर्ता है न ही निर्णायक या प्रमाता है केवल निरपेक्ष दृष्टा है अतः उसमें निष्पक्षत्व है। ईश्वर में कर्तृत्व होने के बाद भी साक्षित्वापेक्षा से निष्पक्षत्व है।

अद्वेत वेदान्त में साक्षी की सार्थकता अन्य कारणों से भी मान्य की गयी है। आचार्य शंकर²⁰ के अनुसार सूक्ष्म और स्थूल, जीव तथा शरीर दोनों के अवभासन के लिए साक्षी आवश्यक है। क्योंिक अज्ञानजन्य होने के कारण जीव और शरीर दोनों अप्रकाश स्वरूप हैं। यहाँ शँका है कि अन्त:करण की वृत्तियों के प्रकाश स्वरूप होने से ही जीव और देह का अवभासित होना सिद्ध होता है अत: साक्षी निरर्थक है। शँका का निवारण करते हुए शँकर स्पष्ट करते हैं कि अन्त:करण के जड़ होने से अन्त:करण की वृत्तियाँ एवं परिणाम भी जड़ ही हैं और जड़ होने से अंधकार स्वरूप अन्त:करण की वृत्तियाँ स्वयं प्रकाशित होने में असमर्थ हैं। उन्हें स्वयं अपने को एवं अन्त:करण के धर्म सुख-दु:खादि को भी प्रकाशित करने के लिए चैतन्यापेक्षा है अत: साक्षी को स्वीकार किया जाता है। अन्त:करण की वृत्तियाँ साक्षी चैतन्य के आलोक से आलोकित होकर सत्य की तरह प्रकाशित होती हैं एवं अपने विषयों को भी प्रकाशित करती हैं। पंचदशी²¹ में भी कहा है साक्षी के भीतर ही उत्पन्न हुई वृत्ति द्वारा सुख-दु:ख, स्वप्न और कामादि मनोमय पदार्थ जिन्हें साक्षी प्रकाशित करता है साक्षी द्वारा ही अवभासित होते हैं।

जीवों के अहंत्वाभिमान के नित्य प्रकाश के आधार रूप में भी अद्वेत वेदान्त में साक्षी की सत्ता स्वीकार की गई है। 'मैं हूँ अथवा नहीं', 'मैं प्राणवान हूँ या नहीं' – ऐसा संशय किसी जीव को नहीं होता क्योंकि 'य एव हि निराकर्ता तदैव तस्य स्वरूपम्' इस प्रकार अहन्ता का नित्य बोध सिद्ध है। इस²² अहं प्रत्यय का आधार कोई स्वयं नित्य पदार्थ है जो जीव की स्वप्न, जागृत और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का साक्षी होकर भी पंचकोशातीत है, यही साक्षी है। पंचदशी²³ में भी कहा है जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में आने–जाने की प्रतीति नित्य चैतन्य रूप साक्षी से ही होती है वह स्वप्रकाश चिद्रूप आत्मा है। बृहदारण्यक उपनिषद्²⁴ में इसे अधिक स्पष्ट रूप से बताया गया है। सुषुप्ति में अन्य इन्द्रिय आदि का विलय होने से प्रमातृत्व की निवृत्ति होने के कारण यदि वहाँ साक्षी भी नहीं रहेगा तो जाग्रत अवस्था में व्यक्ति को जो 'मैं सुखपूर्वक सोया', 'किसी भी विषय का भान उस समय मुझे नहीं हुआ' यह स्मरण होता है, वह नहीं हो सकेगा क्योंकि स्मरण अनुभव जितत वासना के बिना संभव नहीं और अज्ञान के अनुभव बिना वासना नहीं हो सकती। अतः उक्त स्मरण के लिए उक्त काल में साक्षी को मानना अत्यंत आवश्यक है। स्वप्न, जाग्रत और सुषुप्त

तीनों ही अवस्थाओं के प्रकाशक के रूप में साक्षी अत्यंत आवश्यक है। वृहदारण्यकोपनिषद्²⁵ में भी कहा है कि प्रकृति और उसके विकारों से भिन्न शुद्ध ज्ञान स्वरूप, निर्विशेष परमात्मा सत्-असत् सबको प्रकाशित करता हुआ जाग्रत आदि अवस्थाओं में अहं भाव से स्फुरित होता हुआ बुद्धि के साक्षी रूप में साक्षात् विराजमान है। तत्त्व शुद्धि में भी कहा है साक्षी को माने बिना व्यवहार संभव नहीं है।

साक्षी निर्विशेष शुद्ध बोध स्वभाव होता हुआ सबको प्रकाशित करता है इसके लिए प्रमाण क्या है? यह प्रश्न उठता है। इसका समाधान विवेक चूड़ामिणि²⁶ में मिलता है कि साक्षी प्रमाणों का मूल है। यह स्वयं अपने आपसे ही अनुभव किया जाता है। इससे परे अन्य कोई इसका साक्षी नहीं है। बृहदारण्यक उपनिषद्²⁷ में भी कहा है कि सभी कुछ भाव या अभाव कोई भी वस्तु, प्रमेय, प्रमाण या प्रमाता, नाम रूप आदि से अभिव्यक्त होने वाला समस्त जगत् साक्षी का साक्ष्य होते हुए ही सिद्ध है क्योंकि समस्त साक्ष्य स्वतः स्फूर्तिहीन है, सदा समान रूप से स्फुरित रहने वाला सत्य अध्यक्ष ही इन सबके पृथक्-पृथक् स्फुरण का आधार है वही चिदातमा है, साक्षी है। उसे अपनी सिद्धि के लिए किसी अन्य साक्षी की अपेक्षा नहीं है, उसका साक्षित्व स्वतः सिद्ध है। मानवीय व्यक्तित्व का विश्लेषण करने एवं मानवीय अनुभवों को देखते हुए यह स्पष्ट बोध होता है कि बाल्यावस्था से वृद्धावस्था पर्यन्त, स्वप्न से जाग्रत अवस्था तक एक 'मैं', की सर्वदा अविच्छिन अनुभृति हममें रहती है। इस अनुभव का अवभासक कोई एक विशुद्ध चैतन्य है, यही साक्षी है जो सर्वप्रकाशक एवं बोधस्वरूप ज्ञाता है।

अद्वैत वेदान्त में प्रतिपाद्य साक्षी चैतन्य सर्वथा मौलिक एवं नवीन प्रत्यय नहीं है। इसका उल्लेख उपनिषदों में यत्र-तत्र मिलता है जो साक्षी की ओर संकेत मात्र है। साक्षी चैतन्य की पूर्णत: स्पष्ट, व्यापक व्याख्या नि:संदेह अद्वैत वेदान्त में ही उपलब्ध होती है।

संदर्भ सूची:

- 1. पाणिनि सूत्र 5/2/9। सर्वप्राणिषु वसित। सर्वेषां भूतानां साक्षी सर्वदृष्टा। साक्षात् दृष्टरि संज्ञायम्।
- श्वेताश्वेतर उपनिषद 6/11 एकोदेव: सर्वभूतेषु गूढ:सर्व व्यापी सर्वभृतान्तरात्मा।
 कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास: साक्षी चेता:केवलों निगुणिश्च।
- 3. पंचदशी 8/56-58
- 4. न्यायरत्नावली कूटे:-कपटे साक्षित्वे यस्तिष्ठति स: कूटस्थ। पृ. 144
- 5. न्यायरत्नावली स्व समसत्ताक रूपान्त भापधेते यः तदन्ययेत्यर्थः। पू. 142
- 6. सिद्धांतलेश संग्रह देहद्वयाधिष्टान भूतं कूटस्थ चैतन्य स्वावच्छेदकस्य। देहद्वयस्य साक्षादीक्षणान्निर्विकात्वाच्च साक्षीत्युच्यते। प्रथम परिच्छेद, पृ.180
- 7. पंचदर्शी 10/9 कर्तारं च क्रिया तद्वव्यावृत्तविषयानिप। सोऽसौसाजयत्र चिद्वपुः।।

- 8. बृहदारण्यक उपनिषद् एष ते आत्मा सर्वान्तरः सर्वान्तर्यामी अमृतो अदृष्टो द्रष्टा, अश्रुतः श्रोता, अमतो मंता, अविज्ञातो विज्ञाता, नान्यो अतोऽस्ति दृष्टा, श्रोता, मंता विज्ञाता।
- 9. संक्षेप शारीरिक:,2/30, 29 निजमायया परिगतः पुरुषः परतंत्रया तु निजया प्रभया। परिकल्पितं सकलमाकलयन् स हि साक्षितोम्पगतो भवति।।
- 10. पंचपादिका विवरण पृ. 197
- 11. भामती 1/1/1, 4 अहं प्रत्यय विषयोय: कर्ता कार्य कारणं। संधातोपहितो जीवात्मा तत्साक्षित्वेन परमात्मा।। तस्योपहित रूपं जीव: शुद्धं तु रूपं तस्य साक्षी।।
- 12. सिद्धांतलेश: संग्रह प्रथम परिच्छेद पृ. 187, 89
- 13. बृहदारण्यक उपनिषद् 4/3/332 दाहशक्तिर्यथाः वहेः कर्तृशक्ति स्तथा चिति।
- 14. बृहदारण्यक उपनिषद् 3/4/75 जन्मनाशादि साक्षित्वाज्जन्मनाशादिवर्जिता, साक्षि दृष्टिरियं नित्या मोह जन्या तथेतरा।
- 15. विवेक चूडामणि, श्लोक 239-342
- 16. माण्डूक्य प्रवचन, स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती पृ. 3-4
- 17. पंचदशी 3/28-34
- 18. वृहदारण्यक उपनिषद् 2/3/101, 102
 अतो मात्रादि सम्बन्धों यत्र तत्र निवर्तते। तत्र तत्रैकलः प्रत्यक् स्वमहिम्नैव सिद्धयित।
 एतद्वस्तु स्वतः सिद्धं प्रमात्राद्यनपेक्षतः। सर्वस्यैव ततः सिद्धैः कथं सिद्धेत्तदन्यतः॥
- 19. संक्षेप शारीरिक 2/29 तमसा विनिर्मित मिदं सकलं चतुरः स पश्यित परः पुरुषः। अविकारिबोधवपुरद्वयकः करणेबिना सकल साक्षितया।
- 20. सिद्धांतलेश संग्रह प्रथम परिच्छेद, पृ. 180
- 21. पंचदशी 4/31
- 22. विवेक चूड़ामणि- 127 अस्ति कश्यित् स्वयं नित्यमहं प्रत्यय लम्बनः अवस्थात्रय साक्षी सन्पंचकोश विलक्षणः।
- 23. पंचदशी 12/58
- 24. बृहदारण्यक उपनिषद् 3/4/70
- 25. विवेक चूड़ामणि 137
- 26. विवेक चूडामणि 218 असौ स्वासाक्षिको भावो यत: स्वेनानुभूयते। अत: परं स्वयं साक्षात्प्रत्यगात्मा न चेतरः।
- 27. बृहदारण्यक उपनिषद भाष्य वार्तिक 1/4/520 नामरूपाद्यभिव्यक्ते प्राग्व्यक्तापहयेऽप्यभूत। अव्यक्ताध्यक्ष एकाको व्यक्तं मत्साक्षिकं जगत्व॥

गुरुनानक और सिख मत

शरद चन्द्र आनन्द*

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में 13वीं शताब्दी के बाद भिक्त आंदोलन का जो रूप निर्धारित हुआ उसका तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों से काफी प्रगाढ़ सम्बन्ध था। इसके साथ-साथ इन सभी परिस्थितियों के बीच एक महत्वपूर्ण तथ्य इस्लाम की राजसत्ता तथा उसके प्रति भारतीय प्रतिक्रिया भी थी। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग आम जनता की आस्था एवं भिक्त के भीतर से एक व्यापक आंदोलन का उदय एवं विस्तार हुआ, जो सिंध, गुजरात तथा महाराष्ट्र से लेकर बंगाल, असम और उड़ीसा तक फैल गया।

भारतीय इतिहास एवं सांस्कृतिक जीवन में यही आंदोलन भिक्त आंदोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस आंदोलन ने संतों की एक नई पौधे को जन्म दिया, जिसके अगुआ कबीर कहे जा सकते हैं और इसी परम्परा के अन्य सशक्त हस्ताक्षर थे गुरुनानक जिन्होंने सिख धर्म की स्थापना की और आगे चलकर ना सिर्फ भारतीय उपमहाद्वीप में, बिल्क सम्पूर्ण विश्व में इस मत के अनुयायियों की धर्म परायणता. शौर्य और बिलदान के कारण इस मत की विशिष्ट पहचान बनी।

सिख धर्म के प्रवर्तक गुरुनानक जी का जन्म लाहौर के समीप 15 अप्रैल, 1469 ई. को तलवण्डी (आज का ननकाना) स्थान पर हुआ था। इनके पिता कल्याण चन्द क्षत्रिय वंशी बेदी थे, जो गांव के पटवारी का कार्य करते थे। इनकी माता तृप्ता एक धर्मपरायणा महिला थी। नानक जी बचपन से ही धार्मिक एवं जिज्ञासा प्रवृत्ति के थे। सात वर्ष की ही आयु में इनकी प्रारम्भिक शिक्षा—दीक्षा पं. गोपालदास एवं पं. बृजलाल के सान्निध्य में हुआ। बचपन से ही वे अपनी उम्र के अन्य बच्चों से अलग थे, उनमें वह बाल चंचलता एवं चपलता नहीं थी। सांसारिक कार्यों में इन्हें विरक्ति थी। इसलिए किसी भी जीवकोपार्जन के कार्य में रम नहीं सके। अंततः इनके पिता ने 18 वर्ष की आयु में बटाले नगर की मूलचन्द की पुत्री बीबी सुलक्खणी से इनका विवाह कर दिया। इनके दो पुत्र श्रीचन्द्र एवं लख्नीचन्द हुए। अपने बहनोई जैराम (नानकी के पित) की सिफारिश पर इन्हें तत्कालीन सुल्तान दौलत खां लोदी के मोदी खाने में नौकरी मिली। परन्तु वे दो वर्ष दस महीने

^{*}शोधार्थी, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

तक ही सेवारत रहे। इसके पश्चात् इन्होंने सांसारिक कार्यों से विरक्त होकर विभिन्न दिशाओं में लम्बी-लम्बी यात्रायें की, जिन्हें सिख इतिहास में उदासियों के नाम से जाना जाता है।

इन्होंने पहली यात्रा पूर्व की ओर 1507 ई. में की, दूसरी यात्रा दक्षिण की ओर 1508 में की। तीसरी यात्रा उत्तर की ओर की एवं चौथी यात्रा पश्चिम की ओर की। इसमें गुरुनानक ने मक्का, मदीना, काबा, बगदाद और हसन अब्दाल (पंजा साहब) का भ्रमण किया। इनकी पांचवी एवं अंतिम यात्रा पंजाब में की गई। इसमें पाकपट्टन, बटाला और ऐमनाबाद का इन्होंने भ्रमण किया। इसी यात्रा में ऐमनाबाद के स्थान पर बाबर और गुरु नानक की मुलाकात हुई थी।

गुरुनानक ने इन लंबी यात्राओं के माध्यम से भारत की सुप्त जनता को जगाकर उनमें नवस्फूर्ति का संचार किया। यद्यपि नानक का एक नया धर्म चलाने का कोई इरादा नहीं था। उनके सिहण्णु दृष्टिकोण का उद्देश्य हिन्दुओं और मुसलमानों के अंतर को कम करना और शांति, सद्भावना और आदान-प्रदान का वातावरण बनाना था। परन्तु उनके ओजस्वी विचारों से जनता स्वयं उनकी ओर आकर्षित होने लगी और उन्हें आध्यात्मिक नेता एवं गुरु के रूप में देखने लगी। इस प्रक्रिया में बहुत से उनके अनुयायी या शिष्य हो गये। गुरुनानक के यही शिष्य धीरे-धीरे सिख' कहलाने लगे। उन्होंने अपनी शिक्षाओं के द्वारा तत्कालीन समाज की धार्मिक एवं सामाजिक रीतियों तथा व्यवस्था पर प्रचंड कुठाराघात किया। वे अकाल पुरुष में विश्वास रखते थे। गुरुनानक ने कहा कि परमात्मा एक है और वह मर्वव्यापी है। वह जन्म-मरण विहीन है, उसका कोई रंग-रूप, कद नहीं है। वह काल से ऊपर उनसे परे अर्थात् अकाल पुरुष है।

अकाल पुरुष केवल एक है, सित (अर्थात जो अस्तित्व, अब भी है और आगे भी रहेगा) उसका नाम है, सर्वव्यापक, रचियता, अभय, वैर रहित, वह समय सीमा, काल चक्र से परे है, वह जन्म नहीं लेता, स्वयंभू है और गुरु की कृपा से उससे मिलन हो सकता है। गुरुनानक की सामाजिक शिक्षायें मध्यकालीन एकेश्वरवादी धार्मिक सिद्धान्तों में अन्तर्निहित मानवीय समानता के जैविक विचारों के अनुरूप है। इन्होंने समाज में स्थापित जाति प्रथा की कड़ी आलोचना की। गुरुनानक ने गुरु का लंगर नाम से सामुदायिक रसोई की शुरूआत करके समाज में व्याप्त वर्ग व्यवस्था तथा जाति प्रथा की बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। इन्होंने निराकार ईश्वर की कल्पना की एवं अवतारवाद का खण्डन किया। इन्होंने प्रेरणादायी गीतों और कविताओं की रचना की जिन्हों 'आदि ग्रन्थ' के नाम से जाना जाता है। बाद में गुरुओं की वाणी को संकलित करके गुरु अर्जुन देव जी ने गुरु ग्रन्थ की रचना की।

उदासियां समाप्त होने पर गुरुनानक देव जी ने साधुओं वाले वस्त्रों को उतार दिया तथा अपनी आयु के अंतिम अठारह वर्ष रावी नदी के तट पर करतारपुर में गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। उन्होंने यह नगर सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में बसाया था। इसी नगर में 22 सितम्बर, 1539 ई. को

प्रात:काल गुरुनानक जी सदा-सदा के लिए दिव्यज्योति में समा गये। विस वर्षों से अधिक समय तक उन्होंने जो उपदेश दिये थे, उनके उपदेश एवं उनका दर्शन सिख धर्म तथा उसके व्यवहार का मुख्य केन्द्र बना या यूँ किहये कि एक नींव बनी जिस पर बाद के गुरुओं ने इस परंपरा का निर्वाह करते हुए एक विशाल धार्मिक एवं राजनीतिक साम्राज्य का निर्माण किया जो समय की झंझावातों से विषम परिस्थितियों में जूझते हुए भी निरन्तर पुष्पित और पल्लवित होता रहा है।

संदर्भ

- 1. वर्मा, हरिश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत-1 (750-1540 ई.), तृतीय संस्करण-1997, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 437
- 2. वहीं, पू. 437
- 3. किनंघम, जे.डी., हिस्ट्री ऑफ सिक्खस- बारहवां संस्करण, 2014, रूपा पब्लिकशान प्रा. लि. 2002, नई दिल्ली, ISBN- 978-81-716-7764-1, पृ. 36
- 4. सिंह, खुशवन्त, अ हिस्ट्री ऑफ द सिख्स, द्वितीय संस्करण, भाग-1, 1469-1839, पृ. 28
- 5. सिंह साहब, जीवन-वृतान्त गुरु नानक देवजी, पृ. 23
- 6. वही, पृ. 52
- 7. किनंघम, जे.डी., पूर्वोक्त, पृ. 38
- 8. चन्द्र सतीश, मध्यकालीन भारत, राजनीति, समाज और संस्कृति, (प्रथम औरयिंट ब्लैकस्वान संस्करण 2009), ISBN-9788125032489, पृ. 187
- 9. भाई जोध सिंह, टीचिंग ऑफ गुरुनानक इन गुरुमुख' निहाल सिंह (जन: एडिटर), गुरु नाकन: हिज लाइफ टाइम एंड टीचिंग, दिल्ली 1969 पृ. 5
- 10. सिंघ, संगत, इतिहास में सिख, विशेष पुस्तकें, नई दिल्ली, अप्रैल-2006 ISBN-81-903402-0-4, पृ. 34
- 11. सिंघ संगत, पूर्वोक्त
- 12. सिंह, खुशवन्त, पूर्वोक्त, द्वितीय संस्करण, भाग-1, 1469-1839, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली-ISBN-0-19-567308-5, पू. 34

कम्बोडिया के अभिलेखों में भगवान शिव-महादेव

मनीषा शरण*

कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेखों से विविध विषयों पर प्रकाश पड़ता है। इन अभिलेखों का कितना महत्वपूर्ण स्थान है तथा ये कैसे अमूल्य साधन हैं यह किसी से छिपा नहीं है। लेखों में ब्राह्मण धर्म की भिन्न-भिन्न विचार धाराओं के प्रचलन का भी वर्णन है। वहाँ भगवान शिव की पूजा लोग लिंग तथा पार्थिव रूप में करते हैं। शिवलिंग की स्थापना का उल्लेख कई लेखों में है जिनका वर्णन हम करने जा रहे हैं। साथ ही देश के इतिहास में शैव और वैष्णव धर्म एक दूसरे के बहुत निकट थे और ऐसे बहुत से लेख मिलते हैं जिनमें एक मत के प्रतिपादकों ने दूसरों मत के देवता की मूर्ति स्थापित की थी।

- (1) **वट बिहार इन अभिलेख** (काल 535 ई.)-यह मन्दिर कण्डल स्टुंग राज्य में स्थित है तथा इस अभिलेख में भगवान शिव और पार्वती का वर्णन मिलता है। इन दोनों की सुन्दर मूर्तियाँ भी इस मन्दिर से मिली हैं जिनमें पार्वती शिव की बाई जाँघ पर बैठी हुई हैं।²
- (2) इन्द्रवर्मन का प्रह को अभिलेख (काल 801 ई.) यह अभिलेख प्रह को मन्दिर में पाया गया जो सियमिर जिले में स्थित है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है। सर्वप्रथम इस अभिलेख में भगवान शिव की प्रार्थना की गई है तथा उसके बाद इन्द्रवर्मन का वर्णन मिलता है जो शक संवत् 799 में गद्दी पर बैठा। शक संवत् 801 में इन्द्रवर्मन ने भगवान शिव के साथ अन्य तीन देवताओं की मूर्तियों की स्थापना की। "लक्ष्मी और शोभा, सफलता, कल्याण सभी उत्कर्षों से वर्तमान हो, परम ईश्वर को नमस्कार है। कला से रहित, स्वभाव से, मूर्ति धारण कर चकने वाले परमेश्वर और परमात्मा शिव को नमस्कार है।"
- (3) यशोवर्मन का ब्यांग अभिलेख- बयांग का मन्दिर एक पहाड़ी पर स्थित है जो ट्रांग जिले में है। यह स्थान चाउडॉक से लगभग 15 मील दक्षिण-पश्चिम में है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है। प्रह को अभिलेख की भाँति इसमें सर्वप्रथम भगवान शिव की प्रार्थना की गई है।
- (4) जयवर्मन पंचम का बन्तेश्री अभिलेख (काल 890 ई.)- यह अभिलेख बन्तेश्री के मन्दिर

^{*}c/o श्री राजेश प्रसाद, 103, श्री बैद्यनाथ अपार्टमेंट, शुक्ला कॉलोनी, चर्च रोड, हिन्, राँची-834002, झारखण्ड।

पर अंकित है जो सियमिरिप जिले में स्थित है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है तथा इसमें 44 श्लोक हैं। सर्वप्रथम इसमें भगवान शिव और शिक्त की प्रार्थना इस प्रकार की गयी है-''शब्द और गुण जिसके ऐसे आकाश-रूप शिव को नमस्कार करता हूँ जो इन्द्रियों के रास्ते व्यतीत हो चुके हैं अर्थात् इन्द्रियों से जो परे हैं- अतिन्द्रिय हैं जो विश्वव्यापी है। आकाश-रूप है, शम्भु हैं। उन्मन रहने वाली जो सती शिव की कान्ता हमेशा शिव के साथ रहने वाली जो पर्वतराज की पुत्री हैं, शिक्तरूपा हैं-संसार के कल्याण के लिये वह शिक्त प्रदान करें।

- (5) यशोवर्मन का लोले अभिलेख- यह अभिलेख लोले मन्दिर के निकट एक पत्थर के दोनों ओर लिखा गया है। लोले का यह प्रसिद्ध मन्दिर अंकोरवाट से 10 मील दक्षिण-पूर्व में स्थित है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है। सर्वप्रथम भगवान शिव की प्रार्थना इसमें की गई है तथा उसके बाद यशोवर्मन की वंशावली का वर्णन है। आगे चलकर राजा द्वारा भगवान शिव और दुर्गा की चार मूर्तियों की स्थापना का वर्णन मिलता है।
- (6) जयवर्मन प्रथम का तुओलकोक प्रह अभिलेख (काल 579) प्रेवेंग राज्य में कौपौंग रूजी जिले के अन्तर्गत तुओल कोक प्रह के पूरब धान के खेत में एक पत्थर पर खुदा हुआ यह अभिलेख पाया गया था। अभिलेख संस्कृत और खमेर दोनों भाषाओं में लिखा गया है। संस्कृत भाग 7 श्लोकों का है। इसके अतिरिक्त 5 पंक्तियाँ गद्य में भी है। भगवान शिव की स्थापा का वर्णन इसमें है तथा शिव का नाम आभ्रातकेश्वर दिया गया है जो जयवर्मन प्रथम के मंत्री ज्ञानचन्द्र द्वारा शक 509 में स्थापित किया गया था।
- (7) जयवर्मन का तन क्रन अभिलेख कौन-प्रे जिले में कनक्रन नामक एक स्थान है जहाँ यह अभिलेख पाया गया। अभिलेख की भाषा संस्कृत है तथा इसमें 23 पद्य हैं। सर्वप्रथम इसमें भगवान शिव की प्रार्थना की है तथा भगवान शिव को पिंगलेश्वर कहा गया है। जय वर्मन प्रथम को भगवान शिव का ही अंश-रूप माना गया है।
- (8) प्रसत अक योग के दो अभिलेख (काल 531 और 626)- प्रसत अक योग मान से प्रसिद्ध मन्दिर जिसके अब केवल भग्नावशेष ही बचे हैं-ईटों का बना हुआ था जो वेस्टर्न बैरे नामक तालाब के पास स्थित है। ख्मेर पाठ से ऐसा पता चलता है कि यह मंदिर सातवीं शताब्दी का है तथा गम्भीरेश्वर नाम से प्रसिद्ध भगवान शिव को यह मन्दिर समर्पित किया गया था।
- (9) राजेन्द्रवर्मन का मेबन अभिलेख (काल शक 874) अंगकोर थौम के पास ही मेबन नाम का एक मन्दिर है जिसमें राजेन्द्रवर्मन द्वारा संस्कृत में 298 पद्य लिखवाये गये हैं। इसमें श्लोक 1, 2 और 4 भगवान शिव की स्तुति करते हैं, श्लोक 3 गौरी (भगवान शिव की

- पत्नी), श्लोक 5, 6 और 7 में क्रमश: नारायण ब्रह्मा और गंगा की स्तृति का वर्णन है। 10
- (10) इन्द्रवर्मन का वकोंग अभिलेख (काल 803) प्रह को मन्दिर के समीप ही बकोंग स्थित जो सियमरिप जिले में अवस्थित है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है जिसमें 49 पद्य हैं। इस लेख में शिव की 8 प्रकार की मूर्ति (अष्टमूर्ति) की स्थापना का वर्णन है जिसमें आठ शैव मन्दिरों के निर्माण का संकेत मिलता है। 11
- (11) जयवर्मन का प्रसत दामरे अभिलेख- यह अभिलेख संस्कृत और ख्मेर दोनों भाषाओं में हैं किन्तु अभिलेख बिल्कुल पढ़ने लायक नहीं है और न ही अर्थ ही निकाला जा सकता है। श्लोक 15 से 20 तक बिल्कुल ठीक है जिससे ऐसा पता चलता है कि भाई राजेन्द्रवर्मन को पुण्य की प्रापित हो सके इसके लिये उसने शिवलिंग की स्थापना कराई। कोह कर के निकट प्रसत दामरे हैं। 12
- (12) जयवर्मन चतुर्थ का प्रसत अंडन अभिलेख कोहकर के एक मन्दिर पर यह अभिलेख पाया गया है। इसमें संस्कृत के 42 पद्य हैं जिनमें 10 बिल्कुल ही नष्ट हो गये हैं। यह अभिलेख भगवान शिव की स्तुति से प्रारम्भ होता है। ''उस शिव को प्रणाम है जिसकी ज्योति बड़ी है, जल रही है, आकाश के समान व्यापी है, सभी प्राणियों में अच्छे अर्थों में सत्व के समान है।¹³
- (13) यशोवर्मन का फिमानकस अभिलेख (काल 832) यह अभिलेख अंगकोर थॉम के एक भवन जिसका नाम फिमानकस है, उस पर खुदा हुआ है। यह संस्कृत और खमेर दोनों भाषाओं में है। संस्कृत के केवल 12 पद्य हैं। इसमें सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु और महेश (त्रिमूर्ति) की वन्दना की गयी है, किन्तु अभिलेख के ध्वस्त हो जाने से साफ-साफ अर्थ नहीं निकल पा रहा है। 14
- (14) **ईशानवर्मन द्वितीय का वाट थिपदी अभिलेख** (काल 832)- यह अभिलेख वाद थिपदी के मन्दिर पर पाया गया जो सियमरिप जिले में एक छोटा सा मन्दिर है। यह संस्कृत में है और इसमें 19 पद्य हैं। पहले से लेककर पाँचवे श्लोक तक भगवान शिव, विष्णु, ब्रह्मा और उमा की वन्दना की गयी है। 15
- (15) वटचक्रेत मन्दिर का अभिलेख- यह प्राचीन मन्दिर है जो बा फनौम पहाड़ की तलहटी में बना हुआ है। इस अभिलेख के प्रथम श्लोक में 'शिव' शब्द आया है।¹⁶
- (16) **राजेन्द्रवर्मन का प्रेरूप अभिलेख** (काल 833)- अंगकोर के आस-पास ही प्रेरूप मन्दिर जिस पर संस्कृत के 218 श्लोक लिखे गये हैं। संस्कृत भाषा का इससे बड़ा कोई अभिलेख कम्बोडिया में नहीं पाया जाता है। भगवान शिव की वन्दना से अभिलेख प्रारम्भ होता है।¹⁷

- (17) भववर्मन का नोम प्रह विहार अभिलेख- यह अभिलेख नोम प्रह बिहार नामक पहाड़ी पर पाया गया है जो कौमपौंग च्नांग राज्य में स्थित है। इसमें संस्कृत के 9 पद्य हैं। सर्वप्रथम भगवान शंभु को वन्दना की गयी है।¹⁸
- (18) फूमडा अभिलेख (काल 976) कौमपौंग च्नाम राज्य में फूमडा एक छोटा सा गाँव है जहाँ पर यह अभिलेख पाया गया था। यह अभिलेख संस्कृत और ख्मेर दोनों भाषाओं में लिखा हुआ है तथा संस्कृतम के केवल 9 पद्य हैं। प्रथम तीन पद्यों के साथ-साथ अन्तिम पद्य में भी भगवान शिव की प्रार्थना की गई है जो उपनिषद् के गूढ़ रहस्यों से सम्बन्धित है। 19
- (19) **पौं प्राह थ्वार गुफा अभिलेख** प्रसिद्ध नौम कुलेन पर्वत-श्रेणी के पूर्वी भाग में यह एक गुफा है। गुफा की दीवार पर बहुत-सी चित्रकारियाँ हैं। अभिलेख में 7 श्लोक हैं तथा यह गुफा भगवान शंभु के निवास-स्थान के लिये धर्मवासा नामक साधु द्वारा बनाया गया था।²⁰
- (20) **उदयार्कवर्मन का प्रसत ख्सेत अभिलेख** (काल 989)- अंगकोर के आस-पास प्रसत प्रह ख्सेत नाम का एक छोटा सा मन्दिर है। इसमें संस्कृत के 7 पद्य हैं जिनमें एक लिंग का वर्णन किया गया है।²¹
- (21) **हर्षवर्मन तृतीय का प्रसत स्त्रलौ अभिलेख** (काल 993)- यह स्थान पुओक जिले में है। अभिलेख में 32 पंकितयाँ ख्मेर भाषा की हैं। प्रथम तीन पद्यों में त्रिमूर्ति की प्रार्थना की गई है।²²
- (22) नृपादित्य का नूह बाथे अभिलेख- कोचीन चाइना में लौंग जूएन राज्य के अन्तर्गत नूह बाथे नामे एक पहाड़ी पर यह संस्कृत अभिलेख पाया गया जिसमें 11 पद्य हैं। अभिलेख बर्द्धमान देव नामक भगवान की प्रार्थना से प्रारम्भ होता है जो भगवान विष्णु का दूसरा नाम है किन्तु पद्य 4 इस बात की पुष्टि करता है कि वर्द्धमान देव भगवान शिव ही हैं।²³
- (23) जयवर्मन प्रथम का केदेई अंग मन्दिर अभिलेख (काल 589)- बाफ्नौम राज्य में कोई अंग मन्दिर है। इसका दूसरा नाम वाट केदेई या अंग चुमनिक भी है। अभिलेख की भाषा संस्कृत है जो पद्या में है। इस अभिलेख में एक लिंग की स्थापना का वर्णन है तथा भगवान शिव के लिए जिनका नाम विजयेश्वर है, जयवर्मन के वैद्य सिंहदत्त द्वारा एक मन्दिर के निर्माण का वर्णन है।²⁴
- (24) जयवर्मन प्रथम का तुओलकोक प्रह अभिलेख (काल 595)- प्रिवंग राज्य में तुओल प्रह घट बसा हुआ है। अभिलेख संस्कृत के आर्य छंद में लिखा गया है। जयवर्मन प्रथम के एक अधिकारी द्वारा 595 शक में एक लिंग की स्थापना का वर्णन है।²⁵
- (25) यशोवर्मन का लोले- दरवाजा स्तम्भ अभिलेख (काल-885)- रौलुअस जिले में स्थित

लोले स्थान के चार मन्दिर के दरवाजे पर स्थित स्तम्भ पर यह अभिलेख लिखा गया है। अभिलेख दोनों दरवाजे पर हैं जिनमें भगवान शिव और माँ भवानी की स्थापना का वर्णन है।²⁶

- (26) **राजेन्द्रवर्मन का बसक अभिलेख** रामड्औल राज्य में बसक बसा हुआ है। यह अभिलेख था संस्कृत में है तथा इसमें 12 पद्य हैं जो श्लोक छन्द में है। उसके बाद ख्मेर भी है। संस्कृत भाग भगवान शिव की वन्दना से प्रारम्भ होती है।²⁷
- (27) बन्तेस्त्राई अभिलेख (काल 891)- बन्तेस्त्राई का मन्दिर अंगकोर थौम से 13 मील उत्तर-पूर्व में स्थित है। यह अभिलेख संस्कृत और ख्मेर दोनों भाषाओं में है। संस्कृत भाग भगवान शिव का है, जिनका इस अभिलेख में त्रिभुवन महेश्वर नाम दिया गया है। 28
- (28) चिक्रेन पत्थर का अभिलेख (काल 892) चिक्रेन स्थान कौमयौन थौन राज्य में स्थित है। अभिलेख संस्कृत में लिखा गया है तथा अर्द्धप्रासाद नामक दो आभूषण भगवान लोकेश्वर को दानरूप में हदयाचार्य के द्वारा 892 शक में दिया गया था। प्रथम श्लोक में लोकेश्वर महादेव में भिक्त हो-ऐसी कामना की गयी है। 29
- (29) केदेई अंग मन्दिर अभिलेख (काल 550)- बाफ्नौम गज्य में वाट केदेई या केदेई अंग जिसका दूसरा नाम अंग चुमनिक भी है-यह अभिलेख पाया गया। यह संस्कृत अभिलेख-ऐसा मालूम पड़ता है कि पत्थर के दो टुकड़े पर लिखा गया था जो शायद एक ही दरवाजे का अंग रहा हो। इस अभिलेख में आचार्य विद्या विनय नामक व्यक्ति द्वारा एक शिवलिंग की स्थापना का वर्णन है।³⁰
- (30) जयवर्मन प्रथम का तुओल अन टनौट अभिलेख (काल 603)-ताकेव राज्य नटी जिलान्तर्गत यह स्थान है। यह अभिलेख संस्कृत की 6 पंक्तियों में तथा ख्मेर भाषा की 36 पंक्तियों में है। श्रीखण्ड लिंग और रण्ड पर्वतेश की स्थापना जयवर्मन प्रथम द्वारा शक 603 में की गयी थी।³¹
- (31) **हर्षवर्मन तृतीय का पलहल अभिलेख** (काल 991)-मौनरूजी राज्य में पलहल एक छोटा सा गाँव है जहाँ पर यह अभिलेख पाया गया है। संस्कृत और ख्मेर दोनों भाषाओं में यह अभिलेख है तथा भगवान त्रिभुवनेश्वर की मृतिं का वर्णन इसमें हुआ है।³²
- (32) त्रपन दौन अभिलेख (काल 1051)-सियमरिप के एक तालाब का नाम त्रपन दौन है जो अंगकोर थौम के उत्तर-पूर्व में स्थित है। इस संस्कृत अभिलेख में कुल 182 पंक्तियाँ हैं जिनमें 70 संस्कृत की और 112 ख्मेर की हैं। अभिलेख भगवान शिव की प्रार्थना से प्रारम्भ होता है।³³

सन्दर्भ

- 1. शरण, महेश कुमार-कम्बुज देश का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, वाराणसी, 1995, पृष्ठ-4 और आगे
- 2. बेफेओ-35, 17ए , 36,
- 3. मजुमदार, आर.सी., इन्सिक्रिप्सन्स ऑफ कम्बुजा, कलकत्ता, 1953, संख्या-7, पृष्ठ-8
- 4. वही, संख्या-75, पृष्ठ-157
- 5. वही, संख्या-102, पृष्ठ-272
- 6. वही, संख्या-61, पृष्ठ-83
- 7. वही, संख्या- 28, पृष्ठ-36
- 8. वही, संख्या-34, पृष्ट-44
- 9. वही, संख्या-7,
- 10. वहीं, संख्या-93, पृष्ठ-193 से आगे
- 11. वहीं, संख्या-56 पृष्ठ-67
- 12. वही, संख्या-85, पृष्ठ-171, श्लोक 19 एवं 20
- 13. वहीं, संख्या- 86, पृष्ठ-172, श्लोक 1, 2, 3 एवं 28
- 14. वही, संख्या- 74, पृष्ठ-155,
- **15.** वही, संख्या-78, पृष्ठ-161, श्लोक 1
- 16. वहीं, संख्या- 79, पृष्ठ-164
- 17. वहीं, संख्या-97, पृष्ठ-234, श्लोक 1 एवं 2
- 18. वही, संख्या-10, पृष्ट-11
- 19. वहीं, संख्या-153, पृष्ठ-383, श्लोक 1, 2, 3 और 9
- 20. वही, संख्या-154, पृष्ठ-385, श्लोक 1
- 21. वही, संख्या-156, पृष्ठ-399, श्लोक 1
- 22. वहीं, संख्या-159, पृष्ठ-418, ऊँ नम: शिवाय
- 23. वही, संख्या-22, पृष्ठ-26
- 24. वही, संख्या-30, पृष्ठ-38
- 25. वही, संख्या-33, पृष्ठ-42, श्लोक 1 एवं 11
- **26.** वही, संख्या-70, पृष्ठ-139, श्लोक 1
- 27. वहीं, संख्या-101, पृष्ठ-270
- 28. वही, संख्या-107, पृष्ठ-280
- 29. वही, संख्या-107, पृष्ठ-590
- 30. वही, संख्या-26, पृष्ठ-30
- 31. वही, संख्या-41, पृष्ठ-563
- 32. वहीं, संख्या-158, पृष्ठ-412 और आगे
- 33. वहीं, संख्या-170, पृष्ठ-434

विशेष द्रष्टव्य - शरण, महेश कुमार - कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख, भाग 1-2, नई दिल्ली 2015

भारतीय राजनीति और नारी

अविनाश प्रताप सिंह * एवं अम्बुजेश कुमार मिश्र **

किसी भी देश की वांछित प्रगति के लिये उस देश की महिलाओं की भागीदारी आवश्यक एवं महत्वपर्ण है। भारत में महिलाओं को राजनीतिक क्रियाशीला को जानने के लिये भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि भारत में पूर्व वैदिक काल में मातृ सत्तात्मक परिवार थे परन्तु धीरे-धीरे मध्यकाल और आधुनिक काल में भारत में महिलाओं की स्थिति बिगडती गयी। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में महात्मा गांधी के विशेष प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से महिलायें देश के राजनीतिक क्षेत्र में आगे आयी। सधारवादी आन्दोलन के फलस्वरूप भारत के राजनीतिक इतिहास में कई नारियों ने नये युग के आरम्भ की सुचना दी जिनमें एनी बेसेन्ट, सरोजनी नायड, सुचेता कुपलानी, अरूणा आसफ अली, भिकाजी कामा, राजकुमारी अमृत कौर, कस्तुरबा गांधी, मुथलक्ष्मी रेडडी, दुर्गाबाई देशमुख, कैप्टन लक्ष्मी सहगल मुख्य थीं। 1921-22 के असहयोग आन्दोलन में हजारों स्त्रियाँ आन्दोलन में भाग लेने निकल पड़ी। 1906 से स्त्रियाँ व्यवस्थापक मण्डल की सदस्या होने लगी। 1929-32 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दिनों में भारतीय महिलाओं की यह जागरूकता और व्यापक हो गयी, हजारो महिलाओं ने जुलुसों में भाग लिया तथा जेल भी गयी। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन ने एक जन आन्दोलन के रूप में महिलाओं की जागरूकता को और अधिक व्यापक और विभिन्न क्षेत्रों में तीव्रता के साथ प्रसारित किया। स्वतंत्रता के पश्चात् स्वतंत्र भारत की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बढी और उनका दायरा विस्तृत हुआ। देश में प्रथम आम चुनाव से लेकर अभी तक निम्नलिखित प्रमुख महिलाओं ने अपनी सिक्रियता, सूझ-बूझ एवं नेतत्व से भारतीय राजनीति की दशा व दिशा को नया आयाम दिया है।

सरोजनी नायडू

सरोजनी नायडू का जन्म 13 फरवरी 1879 ई. में हैदराबाद मे हुआ था। 1914 में वे पहली बार गांधी जी से मिलीं और उनके विचारों से प्रभावित होकर देश के लिये समर्पित हो गयीं। उन्होंने अनेक स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व किया और जेल भी गयी तथा गाँव-गाँव घूमकर देश प्रेम की

^{*}प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग, महाराणा प्रताप पी.जी. कालेज, जंगल धूसड़, गोरखपुर

^{**}शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

अलख जगाती तथा देशवासियों को उनके कर्तव्य का याद दिलाती रहीं। वे बहुभाषाविद थीं। अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला, गुजराती में अपना भाषण देती थीं। लन्दन की सभा में अंग्रेजी में बोलकर उन्होंनें सभी श्रोताओं को मंत्र मुग्घ कर दिया था। अपनी लोकप्रियता और प्रतिभा के कारण 1925 में कानपुर कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्षा बनीं और 1932 में भारत का प्रतिनिधि बनकर दक्षिण अफ्रीका भी गयीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्तर प्रदेश की पहली राज्यपाल बनीं। जनसंख्या की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा प्रान्त यह था। उस पद को स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा ''में अपने को कैद कर दिये गये जंगल के पक्षी'' की तरह अनुभव कर रही हूँ। इसलिये वह लखनऊ जाकर बस गयीं और अपने गौरवपूर्ण व्यवहार के द्वारा अपने राजनीतिक कर्तव्यों को निभाया। 2 मार्च 1949 को उनका देहान्त हो गया।

विजय लक्ष्मी पंडित

ये जवहारलाल नेहरू की बहन थीं। इनका जन्म 18 अगस्त 1900 ई. में गांधी नेहरू परिवार में हुआ था। गांधी जी से प्रभावित होकर उन्होंनें आजादी के आन्दोलनों में भाग लेना शुरू कर दिया। वो कैबिनेट मंत्री बनने वाली प्रथम भारतीय महिला थीं। 1937 में वे संयुक्त की प्रान्तीय विधान सभा के लिये निर्वाचित हुई और स्थानीय स्वशासन और सार्वजनिक स्वास्थ्य मंत्री पद पर नियुक्त हुई। 1953 में संयुक्त राष्ट्र महासभा की अध्यक्ष बनने वाली वह विश्व की पहली महिला थीं। वे राज्यपाल और राजदूत जैसे कई महत्वपूर्ण पदों पर रहीं। दिसम्बर 1990 को देहरादून में उनका निधन हो गया।

सुचेता कृपलानी

सुचेता कृपलानी का जन्म 26 जून 1908 में हुआ था। ये एक भारतीय स्वतंत्रता सेनानी एवं राजनीतिज्ञ थीं। 1946 में वह संविधान सभा की सदस्य चुनी गयीं 1957 से 1960 तक वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की महासचिव रहीं। 1963 से 1967 तक वह उत्तर प्रदेश की प्रथम तथा भारत की भी प्रथम महिला मुख्यमंत्री बनीं। 1 दिसम्बर 1974 में उनका निधन हो गया।³

अरूणा आसफ अली

इनका जन्म 16 जुलाई 1909 को हरियाणा के एक बंगाली परिवार में हुआ था। 1942 से 1946 तक वे देश भर मे सिक्रय रहकर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया तथा भूमिगत रहीं। 1946 में वारन्ट जारी होने के कारण वह प्रकट हुई। सम्पूर्ण संपत्ति जब्त कर लेने के बाद भी उन्होंनें आत्मसमर्पण नहीं किया। 1947 ई. में ये दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षा निर्वाचित की गयीं। 1948 ई. में वे सोशलिस्ट पार्टी में शमिल हुई और दो वर्ष बाद 1950 में उन्होंनें अलग से 'लेफ्ट स्पेशलिस्ट पार्टी' बनायी और वे सिक्रय होकर मजदूर आन्दोलन में जी जान से जुट गयीं।

1955 में इस पार्टी का 'भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी' में विलय हो गया। ये भा.क.पा. के केन्द्रीय समिति के सदस्य और 'आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य की। 1958 में भाकपा को छोड़ दी तथा 1964 में पुन: 'कांग्रेस पार्टी' से जुड़ीं। 1958 में दिल्ली नगर निगम की प्रथम महापौर चुनी गयीं। इसके अतिरिक्त ये 'इण्डो सोवियत कल्चरल सोसाइटी', 'आल इण्डिया पीस कार्उसिल', नेशनल फेडरशन ऑफ इण्डियन वूमैन', आदि संस्थओं के लिये उन्होंनें बड़ी लगन व निष्ठा के साथ काम किया। 29 जुलाई 1996 में उनका देहान्त हो गया।

लक्ष्मी सहगल

डॉ. लक्ष्मी सहगल का जन्म 24 अक्टूबर 1914 में एक परम्परावादी तिमल परिवार में हुआ था। वे मेडिकल की शिक्षा प्राप्त करने के बाद सिंगापुर चली गयी और दूसरे विश्व युद्ध के दौरान जब जापानी सेना ने सिंगापुर में ब्रिटिश सेना पर हमला किया तो वे सुभाष चन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज में शामिल हो गयीं तथा रानी झांसी रेजिमेंट में बहुत सिक्रिय रहीं। बाद में उन्हें कर्नल की उपाधि दी गयी लेकिन लोगों ने उन्हें कैप्टन लक्ष्मी के रूप में ही याद रखा। 1947 में वे कानपुर आकर बस गयीं और वंचितों की सेवा में लग गयीं। 1971 के बाद से उनका झुकाव वामपंथी राजनीति की ओर बढ़ा तथा वामपंथियों ने ही इनको भारत के राष्ट्रपति का उम्मीदवार बनाया। 1998 में उन्हें पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया। 23 जुलाई 2012 को उनका कानपुर में निधन हो गया।

इन्दिरा गांधी

स्वतंत्र भारत की पहली महिला प्रधानमंत्री रही इन्दिरा गांधी का जन्म प्रसिद्ध नेहरू परिवार में 19 नवम्बर 1917 को इलाहाबाद में हुआ था। इन्होंने अपनी शिक्षा पश्चिम् बंगाल के विश्वभारती विश्वविद्यालय और इंग्लैण्ड के ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से प्राप्त कीं। पढ़ाई में एक सामान्य दर्जे की छात्र रहीं। इन्दिरा प्रियदर्शिनी गांधी को विश्व राजनीति में लौह महिला के रूप में जाना जाता है। 1959 ई. में उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। उनके पिता जवाहरलाल नेहरू का देहान्त 27 मई 1964 को हुआ और इन्दिरा जी नये प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की प्रेरणा पर चुनाव लड़ी तथा सूचना और प्रसारण मंत्री बनीं। जब 1965 का भारत पाकिस्तान युद्ध चल रहा था, इन्दिरा जी श्रीनगर सीमा में उपस्थित थीं, हालांकि सेना ने चेतावनी दी थी कि पाकिस्तानी अनुप्रवेशकारी शहर के बहुत ही करीब तीन्न गित से पहुँच चुके हैं फिर भी उन्होने अपने को जम्मू या दिल्ली में पुन: स्थापन का प्रस्ताव नामंजूर कर दिया और उल्टे स्थानीय सरकार की चक्कर लगाती रही और संवाद माध्यमों के ध्यानाकर्षण को स्वागत किया। ताशकन्द में लाल बहादुर शास्त्री के निधन हो जाने के उपरान्त 1966 में इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री बनीं। उस समय कांग्रेस दो गुटों में

विभाजित हो चुकी थीं श्रीमती गांधी के नेतृत्व में समाजवादी और मोरार जी देसाई के नेतृत्व में रुबिवादी 1967 के आम चुनाव में कम सीटें प्राप्त करने के कारण मोरार जी देसाई के सहयोग से दो वर्षों तक शासन चलायीं। उसी वर्ष 1969 में बैंकों का राष्ट्रीयकरण भी किया। 1971 से लड रहें मुक्ति सेना को समर्थन देकर पाकिस्तान पर युद्ध घोषित कर दिया और तमाम समस्याओं का सामना करते हुए अमेरिका के विरोध के बावजूद सोवियत संघ की मित्रता प्राप्त करके भारत को सैनिक एवं राजनैतिक जीत दिलायीं। कश्मीर समस्या को शांतिपूर्ण ढंग से समाधान करने के लिये पाकिस्तान के साथ 'शिमला समझौता' किया। स्माइलिंग बुद्धा के अनौपचारिक छाया नाम से 1974 मे भारत ने सफलतापूर्वक एक भूमिगत परमाणु परीक्षण राजस्थान के पोखरण गांव में श्रीमती गांधी के नेतृत्व में ही किया। जिससे भारत दुनिया की सबसे नवीनतम परमाणु शक्तिधर बन गया। हरित क्रांन्ति, श्वेत क्रांति, खाद्य सुरक्षा जैसे कार्यक्रमों का सफल कार्यान्वयन करके 1975 के वर्षों तक व्यापक जनसमर्थन प्राप्त किया।⁴ श्रीमती गांधी 1971 में जबरदस्त जनादेश प्राप्त करने के पश्चात् संविधान में संशोधान कर केन्द्र और राज्यों के बीच की सत्ता संतुलन को बदल दिया था। 12 जून 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कथित तौर पर भ्रष्टाचार आरोपों के आधार पर इन्दिरा गांधी के लोक सभा चुनाव को रद्द घोषित कर दिया। श्रीमती गांधी के द्वारा ऊपरी अदालत में अपील किये जाने पर जय प्रकाश नारायण सहित अनेको शीर्ष नेताओं ने इनका विरोध कर इस्तीफे की मांग की। श्रीमती गांधी ने इन नेताओं के खिलाफ गिरफ्तारी का आदेश दे दिया और आन्तरिक अराजकता को देखते हुए राष्ट्रपति फखरूद्दीन अली अहमद से आपात काल की घोषणा की सिफारिस की जिसके कारण 26 जून 1975 को संविधान की धारा-352 के प्रावधानानुसार आपात काल की घोषणा कर दी गयी और पूरे देश को प्रत्येक केन्द्रीय शासन के अधीन ले लिया गया।⁵ श्रीमती गांधी ने 1977 में पुन: चुनाव की घोषण कर दी। चुनाव पश्चात् वह जनता दल से बुरी तरह हार गयीं। मोरार जी देसाई प्रधानमंत्री तथा नीलम संजीव रेड्डी राष्ट्रपति बनायें गये। तत्कालीन गृहमंत्री चरण सिंह ने कई आरोपों में इन्दिरा गांधी और संजय गांधी को गिरफ्तार करने के आदेश दियं। इससे उन्हें जनता से काफी सहानुभूति मिली। 1979 में देसाई ने इस्तीफा दे दिया और श्रीमती गांधी के बाहरी समर्थन से चौधरी चरण सिंह प्रधानमंत्री बने। एक छोटे अन्तराल बाद श्रीमती गांधी ने अपना समर्थन वापस ले लिया और सरकार व ससंद को राष्ट्रपति ने 1979 में भंग कर दिया। पुन: हुए चुनाव में श्रीमती गांधी महाभीषण बहुमत से सता में आयीं। 1981 में उन्होंने सिख आतंकवादी समूह के समाप्ति हेतु 'आपरेशन ब्लू स्टार' अभियान चलाया और स्वर्ण मंदिर परिसर में हजारों नागरिकों की उपस्थिति के बावजूद सेना को धर्मस्थल में प्रवेश करने का आदेश दिया। जिसमें लगभग 4 अधिकारियों सहित 79 सैनिक व 492 आतंकवादी हताहत हुए और हजारों लोग गोलीबारी में फंसे। श्रीमती गांधी को 31 अक्टूबर 1984 को उनके अंगरक्षकों सतवन्त सिंह और बेअन्त सिंह द्वारा उनके निजी आवास स्थित बागीचे में गोली मारकर हत्या कर दी गयी। श्रीमती गांधी को (1983-1984) में उनकी उपलब्धियों के लिये लेनिन शन्ति पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया था।

प्रतिभा देवी सिंह पाटिल

शीला दीक्षित

इनका जन्म 31 मार्च 1938 को हुआ था। इन्होंने महिला उत्थान के लिये अथक प्रयास किये हैं। इन्होंने संयुक्त राष्ट्र की महिला स्तर समिति में भारत का प्रतिनिधित्व 1984-89 तक किया। अगस्त 1990 में अपने 82 साथियों के साथ उत्तर प्रदेश में महिलाओं पर समाज के अत्याचारों के विरोधा में प्रदर्शन करने के कारण 23 दिनों की जेल यात्रा की थी जिसका समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। 1970 में वे 'यंग विमन्स एसोसियेशन' की अध्यक्षा भी रही। 1984-89 में इन्होंने उत्तर प्रदेश की कन्नौज लोक सभा सीट से संसद में प्रतिनिधित्व किया तथा केन्द्रीय सरकार में 1986 से 1989 तक संसदीय कार्यों की राज्यमंत्री पद पर कार्य भी किया। दिल्ली प्रदेश कांग्रेस समिति की अध्यक्ष के पद पर 1998 में कांग्रेस को दिल्ली में अभूतपूर्व विजय दिलायी और दिल्ली की मुख्यमंत्री बनीं। ये देश की पहली ऐसी महिला मुख्यमंत्री है जिन्होंने लगातार तीन बार मुख्यमंत्री के पद सम्भाला, 17 दिसम्बर 2008 में दिल्ली विधान सभा चुनाव में शीला दीक्षित के नेतृत्व में कांग्रेस ने 70 में से 43 सीटें जीती और तीसरी बार ये मुख्यमंत्री बनीं। 2013 में हुए विधान सभा चुनाव में कांग्रेस

को मिली हार के बाद उन्हें अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा। 2017 के उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी की मुख्यमंत्री पद के लिए उम्मीदवार घोषित की गयी है।

डॉ. नजमा हेपतुल्ला

13 अप्रैल 1940 को मध्य प्रदेश के भोपाल में जन्मी डॉ. नजमा हेपतुल्ला को राजनीति विरासत में मिली है। रिश्ते में मौलाना अबुल कलाम आजाद की नातिन हेपतुल्ला ने एम.एससी. के बाद हृदय रोग विज्ञान में पी-एच.डी. प्राप्त की परन्तु राजनीति के दिलचस्पी के कारण वह राजनीति में आयीं। इन्होंनें मुम्बई प्रदेश कांग्रेस कमेटी की महासचिव से अपना राजनीतिक जीवन प्रारंभ किया, फिर उपाध्यक्ष भी बनीं। 1980 से राज्य सभा की सदस्य है। 1985 से 1986 तथा 1988 से जुलाई 2007 तक वे राज्य सभा की उपसभापित रहीं। इस दौरान उन्होंने सदन की कार्यवाही का कुशल संचालन किया और सता पक्ष और विपक्ष में भी लोकप्रिय बनीं रहीं। लेकिन श्रीमती सोनिया गांधी से मतभेद के कारण भाजपा में शामिल हुई। ये भारतीय सांस्कृतिक परिषद की सदस्य भी रही है। जुलाई, 2004 में भारतीय जनता पार्टी के टिकट पर राज्य सभा के लिये सदस्य चुनी गयीं। 2007 में उपराष्ट्रपति के चुनाव में वे हामिद अंसारी से हार गयीं थीं। 26 मई 2014 की नरेन्द्र मोदी मंत्रिमण्डल में केन्द्रीय मंत्री के रूप में शपथ और कार्यभार सम्भाल रहीं है।

आनंदी बेन पटेल

21 नवम्बर 1941 को गुजरात में जन्मी आनन्दी बेन पटेल एक भारतीय राजनीतिज्ञ और गुजरात की पहली महिला मुख्यमंत्री बनीं। वे 1987 में भाजपा मे जुड़कर अपने राजनीतिक कैरियर की शुरुआत कीं। 1995 में शंकर सिंह बाबेला ने जब बगावत की थी, तो उस कठिन दौर में वे मोदी के साथ पार्टी के लिये काम किया और इसी समय मोदी से नजदीकियाँ बढ़ी। 1998 में गुजरात विधान सभा की सदस्य बनीं और मंत्रिमण्डल में शमिल हुईं। वर्ष 1987 मे उन्हें 'वीरता पुरस्कार' से भी नवाजा गया है। शहरी विकास और राजस्व मंत्री पद पर कार्य करते हुए 52 प्रतिशत किसानों के अंगुठे के निशानों और तस्वीरों का कम्प्यूटरीकरण करके राजस्व धांधली की आशंका को कम कर दिया तथा कई अन्य नई नीतियों व योजनाओं के द्वारा मोदी सरकार की (गुजरात मुख्यमंत्री के रूप में) छवि को उज्ज्वल बनाने मे अहम भूमिका निभायीं। मोदी के प्रधानमंत्री बन जाने के बाद उन्हें गुजरात का नया मुख्यमंत्री बनाया गया। अगस्त 2016 को इन्होंने मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। इनके उत्साहपूर्ण कार्यों के लिये इन्हें अनेकों पुरस्कार व सम्मान प्राप्त हो चुके हैं।

मारग्रेट अल्वा

इनका जन्म एक क्रिश्चियन परिवार में 14 अप्रैल 1942 को कर्नाटक में हुआ था। इन्होंने अपने राजनीतिज्ञ कैरियर की शुरुआत 1969 से शुरू किया। 1974 में वह राज्य सभा के लिये चुनी गयीं और 1992 तक लगातार 3 बार इसकी सदस्य चुनी गयीं। इस दौरान इन्होंने विभिन्न महत्वपूर्ण राजनीतिक दायित्वों का निर्वहन किया तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक मुद्दो पर कार्य किया। 13वीं लोकसभा चुनाव 1999 में लोक सभा सदस्य के रूप में चुनी गयी। 6 अगस्त 2009 को उत्तराखण्ड के प्रथम महिला राज्यपाल के रूप में कार्यभार ग्रहण किया तथा 14 मई 2012 तक कार्य किया। 12 मई 2012 से 5 अगस्त 2014 तक राजस्थान तथा 12 जुलाई 2014 से 7 अगस्त 2014 एवं 7 जुलाई 2014 से 5 अगस्त 2014 तक गुजरात के राज्यपाल के रूप में कार्य किया।

स्मित्रा महाजन

इनका जन्म महाराष्ट्र में 12 अप्रैल 1943 को हुआ था। वर्तमान समय में ये भारत की लोक सभा अध्यक्ष है जो इस पद पर आसीन होने वाली दूसरी महिला हैं। इन्होंने 1989 के आम चुनाव में पहली बार लोकसभा चुनाव में भाग लिया और उन्होंने कांग्रेस नेता और मध्य प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री प्रकाश चन्द्र सेठी को हराया। वे इन्दौर से लगातार 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2009 और अब 2014 में आठवीं बार लोकसभा चुनाव जीतने वाली पहली भारतीय महिला सासंद हैं। इन्दौर में वे 'सुमित्रा ताई' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 2002 से 2004 तक वे केन्दीय मंत्रिमण्डल में भी शामिल थीं। साथ ही यह पहली बार है कि भाजपा का कोई सांसद लोकसभा अध्यक्ष बना है।

स्रोनिया गांधी

सोनिया गांधी का जन्म 9 दिसम्बर 1946 में इटली में हुआ था। 1964 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान राजीव गांधी से उनकी मुलाकात हुई और 1968 में दोनों का विवाह हो गया और वे भारत में रहने लगीं। 1983 में उन्हें भारतीय नागरिकता मिली। पित की हत्या के बाद वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं ने उनसे विना पृछे ही कांग्रेस अध्यक्ष बनाये जाने की घोषणा कर दी तो सोनिया ने विरोध किया और काफी समय तक राजनीति से दूर रहीं। 1996 के आम चुनाव में कांग्रेस की हार के पश्चात् वरिष्ठ नेताओं के दबाव में 1997-1998 में कांग्रेस की अध्यक्ष चुनी गयी। अक्टूबर 1999 में बेल्लारी और अमेठी से लोकसभा सदस्य चुनी गयी और 1999 में ही लोकसभा में विपक्ष की नेता चुने जाने के बावजूद भाजपा का विरोध करने पर स्वयं प्रधानमंत्री न बनकर डॉ. मनमोहन सिंह को अपना उम्मीदवार बताकर प्रधानमंत्री बनाने की घोषणा कीं। 2009 के लोकसभा आम चुनाव में भी उन्होंने यूपीए गठबन्धन को जीत दिलायी और यूपीए अध्यक्ष चुनी गयीं। अन्तरष्ट्रीय स्तर पर महात्मा गांधी के वर्षगांठ के दिन 2 दिसम्बर 2007 को सोनिया गांधी ने संयुक्त राष्ट्र संघ को सम्बोधित किया।

मीरा कुमार

पूर्व उपप्रधानमंत्री श्री जगजीवन राम की सुपुत्री मीरा कुमारी का जन्म 31 मार्च 1945 को

बिहार में हुआ था। राजनीति में उनका प्रवेश अस्सी के दशक में हुआ था। 1985 में वे पहली बार बिजनौर से संसद में चुनकर आयीं। 1990 में कांग्रेस पार्टी की कार्यकारिणी समिति की सदस्य और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की महासचिव चुनी गयीं। 1996 व 1998 में वे दूसरी व तीसरी बार सांसद बनीं। 2004 में बिहार के सासाराम लोकसभा से सांसद बनी तथा यू.पी.ए. सरकार मे सामाजिक न्याय मंत्रालय में मंत्री बनाया गया। 2009 में पांचवी बार सांसद चुनी गयी तथा लोक सभा की पहली महिला स्पीकर बनीं। जी.एम.सी. बालयोगी के बाद वह दूसरी दिलत नेता हैं जो इस पद पर पहुँची हैं।

जयललिता जयराम

इनका जन्म 24 फरवरी 1948 को अय्यर ब्राह्मण परिवार में कर्नाटक में हुआ था। 15 वर्ष की आयु से ही वह फिल्मों में अभिनेत्री की भूमिकायें करने लगीं थी। 1982 उन्होंने एम.जी. रामचन्द्रन के साथ अपने राजनीतिक कैरियर की शुरुआत कीं। 1984-1989 में तिमलनाडू से राज्यसभा के लिये प्रतिनिधित्व भी किया। 1989 में पहली बार विधान सभा सदस्य चुनी गई। पुन: 1991, 2002, 2006, 2011, 2015, 2016 के विधान सभा चुनावों में जीत हासिल कीं। 24 जून 1991 से 12 मई 1996 तक राज्य की पहली निर्वाचित मुख्यमंत्री और राज्य की सबसे कम उम्र की मुख्यमंत्री रहीं। 2001 में वे फिर एक बार तिमलनाडू की मुख्यमंत्री बनने में सफल हुई। 16 मई 2001 में तीसरी बार मुख्यमंत्री पद की शपथ ली और तब से मृत्यु पर्यन्त तक अर्थात 5 दिसम्बर 2016 तक मुख्यमंत्री रहीं।

सुषमा स्वराज

इनका जन्म 14 फरवरी 1952 को हरियाणा में हुआ था। पित एवं पत्नी दोनों ही राजनीति में हैं। इनके पित स्वराज कौशल अभी तक के सबसे कम आयु में राज्यपाल का पद प्राप्त करने वाले व्यक्ति हैं। स्वराज दंपित के उपलब्धियों के रिकार्ड लिम्का बुक आफ वर्ल्ड रिकार्ड में दर्ज करते हुए विशेष दंपित का स्थान दिया गया है। आपात काल का पुरजोर विरोध करने के बाद वे सिक्रिय राजनीति में आयों और आपातकाल के बाद उन्होंने दो बार हरियाणा विधान सभा का चुनाव जीता और चौधरी देवीलाल की सरकार में 1977 से 1979 के बीच राज्य की श्रम मंत्री रहकर 25 साल की उम्र में कैबिनेट मंत्री बनाये जाने का रिकार्ड बनाया था। वे भाजपा में राष्ट्रीय मंत्री कैबिनेट मंत्री एवं भाजपा प्रवक्ता बनने वाली पहली महिला हैं। वह दिल्ली की पहली महिला मुख्यमंत्री थीं और सर्वश्रेष्ठ सांसद का पुरस्कार प्राप्त करने वाली पहली महिला भी वे ही हैं। 2009 में भाजपा द्वारा संसद में विपक्ष की नेता चुनी गयी तथा 15वीं लोकसभा में भी नेता प्रतिपक्ष रहीं। 2014 में उन्हें पहली महिला विदेश मंत्री बनने का गौरव प्राप्त हुआ। देश में किसी राजनीतिक दल की पहली महिला प्रवक्ता बनने की उपलब्धि भी उन्हीं के नाम दर्ज है। 14

वसुन्धरा राजे सिंधिया

इनका जन्म 8 मार्च 1953 को मुम्बई में हुआ। वे ग्वालियर राजघराने की पुत्री है। वे मध्य प्रदेश के कांग्रेस नेता माधवराव सिंधिया की बहन हैं। इन्होंने अपने राजनीतिक कैरियर की शुरुआत 1984 में भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में शमिल हो कर किया था। 1985–87 के बीच राजे भाजपा युवा मोर्चा राजस्थान की उपाध्यक्ष रहीं। 1987 में राजस्थान प्रदेश भाजपा की उपाध्यक्ष बनीं। उनकी कार्य क्षमता और विनम्रता व पार्टी के प्रति वफादारी के चलते 1998–1999 में अटल बिहारी बाजपेयी मंत्रिमण्डल में इन्हें विदेश गज्य मंत्री बनाया गया। भैरो सिंह शेखावत के उपगष्ट्रपित बनने के बाद वें राजस्थान में भाजपा राज्य इकाई का अध्यक्ष बनीं। ये 1985, 2003, 2008, 2013 में राजस्थान विधान सभा सदस्य के रूप में रह चुकी हैं तथा 1989, 1991, 1996, 1998, 1999 में लोकसभा सदस्य के रूप में चुनी जा चुकी हैं। राजस्थान की 22वीं मुख्यमंत्री एवं प्रथम महिला मुख्यमंत्री के रूप में 9 दिसम्बर 2003 – 10 दिसम्बर 2008 तक कार्य किया एवं वर्तमान समय में 24वें मुख्यमंत्री के रूप में 13 दिसम्बर 2013 से कार्यरत हैं।

ममता बनर्जी

इनका जन्म 5 जनवरी 1955 को कोलकाता, पश्चिम बंगाल में एक निचले मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। उन्होंने अपने राजनैतिक सफर की शुरुआत कांग्रेस पार्टी के साथ की। कालेज में पढाई के दौरान ही उन्होंने जय प्रकाश नारायण की गाड़ी के बोनट पर चढकर निकम्मी सरकार के प्रति अपना विरोध व्यक्त किया था। युवावस्था में ही 1976-1980 में राज्य महिला कांग्रेस (पश्चिमी बंगाल) की महासिचव चुन ली गयीं 1984 में लोक सभा चुनाव में अनुभवी साम्यवादी नेता सोमनाथ चटर्जी को हराया और सबसे यवा भारतीय सांसद बन गयीं। उन्होंने अखिल भारतीय यवा कांग्रेस महासचिव पद पर भी काम किया। 1991 में नरसिम्हा राव सरकार में मंत्री बनीं तथा विचारों में मतभेद वे कारण इस्तीफा दे दीं, पुन: 1996 में केन्द्रीय मंत्री बनी तथा पेट्रोल कीमत बढ़ाये जाने पर मतभेद के चलते कांग्रेस छोडकर अपना अलग दल 'आल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस' की स्थापना की। इस पार्टी ने बहुत कम समय में बंगाल की समाजवादी सरकार के खिलाफ कडी चुनौती खडी कर दी। 1999 में एन.डी.ए. में गठबन्धन सरकार में केन्दीय रेलमंत्री बनीं परन्तु कुछ मतभेदों के चलते 2001 में गठबन्धन तोड़ लिया परन्तु 2004 में फिर से एन.डी.ए. गठबन्धन में जुड़ी। 2006 में विधान सभा चुनाव में पार्टी की हार की वजह से एन.डी.ए. से अलग होकर यू.पी.ए. गठबन्धन में शमिल हुईं और केन्द्रीय रेलमंत्री बनीं। 2011 के राज्य विधान सभा चुनाव उनके राजनैतिक सफर में एक नया मोड लेकर आयीं और पार्टी की जीत की वजह से 20 मई 2011 को पश्चिमी बंगाल कीं पहली महिला मुख्यमंत्री बन गयीं और बंगाल से 34 साल के मजबूत साम्यवादी सरकार को उखाड फेंका। अपने उत्साहपूर्ण भाषणों से वे लोगों को प्रोत्साहित करती हैं जिसकी वजह से पश्चिम बंगाल की जनता में वे काफी लोकप्रिय हैं।

मेनका गांधी

भारत की प्रसिद्ध राजनेत्री, पशु-अधिकारवादी एवं इन्दिरा गांधी के छोटे पुत्र स्व. संजय गांधी की पत्नी मेनका गांधी का जन्म 26 अगस्त 1956 को दिल्ली में हुआ था। अपनी पित के देहान्त के बाद सन् 1982 में राजनीति में आयों। 1989 में जनता दल से जुड़ी तथा 1989 एवं 1996 में लोकसभा चुनाव में जीत दर्ज कीं। पुन: 1998, 1999 में निर्दलीय चुनाव लड़कर लोकसभा चुनाव में जीत हासिल कीं। 2004 एवं 2014 मे बीजेपी से मांसद बनीं। 13 अक्टूबर 1999 से 30 जून 2002 तक केन्द्रीय सरकार में कई मंत्रालयों का उत्तरदायित्व सम्भाला। वर्तमान मोदी सरकार में 26 मई 2014 से केन्द्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्री के रुप में अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन कर रही है। एक जानी मानी पर्यावरणवादी कार्यकर्ता है। 1992 में इन्होंने 'पीपल फार एनिमल्स' नामक एक गैर सरकारी संगठन आरम्भ किया जो पूरे भारत में पशु, आश्रय चलाता है।

राबड़ी देवी

स्वतंत्र भारत में बिहार प्रान्त की पहली महिला मुख्यमंत्री एवं राजद अध्यक्ष लालू प्रसाद यादव की पत्नी राबड़ी देवी का जन्म 1956 में गोपालगंज (बिहार) में हुआ था। बहुचर्चित चारा घोटाला मामले में उनके पित लालू प्रसाद यादव का जेल जाना पड़ा तो 25 जुलाई 1997 को बिहार की मुख्यमंत्री बनी। पहला कार्यकाल सिर्फ 2 साल का रहा। पुन: 9 मार्च 1999 से 2 मार्च 2000 तथा 11 मार्च 2000 से 6 मार्च 2005 तक अपना दूसरा एवं तीसरा कार्यकाल पांच-पांच साल की अविध का पूर्ण किया। इनका अपना कोई राजनीतिक कैरियर तो नहीं रहा परन्तु अपने पित के राजनीतिक पहुँच का इन्हें लाभ मिला।

मायावती प्रभू दास

मायावती प्रभू दास, मायावती नैना कुमारी (मायावती) का जन्म 15 जनवरी 1956 को नई दिल्ली में हुआ था। वर्तमान में वह बहुजन समाज पार्टी की राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं। 1977 में कांशीराम के सम्पर्क में आने के बाद उन्होंने एक पूर्णकालिक राजनीतिज्ञ बनने का निर्णय लिया और 1984 में बसपा की स्थापना हुई। उसने अपना पहला चुनाव उत्तर प्रदेश में मुजफ्फरनगर के कैराना लोकसभा सीट से लड़ा था। वे अविवाहित हैं और अपने समर्थकों में बहन जी के नाम से जानी जाती हैं। वे 3 जून 1995 से 18 अक्टूबर 1995 एवं 21 मार्च 1997 से 21 सितम्बर 1997, 3 मई 2002 से 29 अगस्त 2003 एवं 13 मई 2007 से 15 मार्च 2012 तक उत्तर प्रदेश की चार बार मुख्यमंत्री रह चुकी हैं। वे पहली दिलत महिला हैं जो किसी राज्य की मुख्यमंत्री बनीं हैं। 2012 का चुनाव समाजवादी पार्टी से हार गयीं जिसका प्रमुख कारण पूरे उत्तर प्रदेश में अपनी मूर्तियाँ लगवाने और

अपने मंत्रियों द्वारा गलत ढंग से पैसा कमाना बताया गया।

महबूबा मुफ्ती सईद

जम्मू कश्मीर की प्रमुख महिला राजनेता व मुफ्ती मुहमद सईद की पुत्री महबूबा मुफ्ती सईद का जन्म 22 मई 1959 का जम्मू कश्मीर में हुआ था। यह वर्तमान में जम्मू कश्मीर की प्रथम महिला मुख्यमंत्री हैं। यह भारत में द्वितीय मुस्लिम महिला मुख्यमंत्री हैं। प्रथम मुस्लिम महिला मुख्यमंत्री सैयदा अनवरा तैमूर है जो असम की मुख्यमंत्री थीं। यह 'जम्मू कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी' की अध्यक्ष हैं। यह अनन्तनाग लोक सभा सीट से 2004 और 2014 में सांसद चुनी गयी हैं तथा 4 अप्रैल 2016 से जम्मू कश्मीर की मुख्यमंत्री का दायित्व सम्भाल रही हैं।

निर्मला सीतारमण

भारतीय जनता पार्टी की प्रखर वक्ता व कर्म निष्ठ महिला राजनेता निर्मला सीतरमण का जन्म 18 अगस्त 1959 को तिमलनाडू में हुआ था। यह 2006 में भाजपा से जुड़ी और अपनी कुशल कर्म निष्ठा व सुझबूझ से पार्टी में महत्वपूर्ण स्थिति को प्राप्त की। 2010 से भाजपा प्रवक्ता का दायित्व सम्भाली हैं। यह दिल्ली और गुजरात की एक लोकप्रिय महिला नेत्री है।

उमा श्री भारती

इनका जन्म 3 मई 1959 को मध्य प्रदेश में हुआ था। इन्होंने राम जन्म भूमि आन्दोलन में प्रमुख भूमिका निभाई। युवावस्था में ही वे भारतीय जनता पार्टी से जुड़ गयीं थीं। उन्होंने 1984 में सर्वप्रथम लोक सभा का चुनाव लड़ा किन्तु हार गयीं। 1989, 1991, 1996, 1998 में खजुराहो लोकसभा सीट से चुनाव लड़ा और जीत हासिल कीं। 1999 में भोपाल सीट से सांसद चुनी गयीं और बाजपेई सरकार में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में कार्य किया। 2003 के मध्य प्रदेश विधान सभा चुनावों में उनके नेतृत्व में भाजपा ने तीन चौथाई बहुमत प्राप्त किया और वे मुख्य मंत्री बनीं। अगस्त 2004 में उन्होंने मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया जब उनके खिलाफ 1994 के हुबली दंगों के संबंध में गिरफ्तारी वारंट जारी हुआ। 17 नवम्बर 2004 आडवाणी की आलोचना के बाद उन्हें भाजपा से बर्खास्त का दिया गया। पुनः 2005 में भाजपा में शमिल हुई लेकिन शिवराज सिंह चौहान को मध्य प्रदेश का नेतृत्व मिलने के कारण वह भाजपा से अलग होकर ''भारतीय जनशक्ति पार्टी'' नाम की एक अलग पार्टी बना लीं। परन्तु 7 जून 2011 को भाजपा में पुनः वापस हो गयी। उत्तर प्रदेश में पार्टी की स्थिति सुधारने के लिये उन्होंने ''गंगा बचाओ'' अभियान चलाया। 2012 में उ.प्र. की चरखारी विधान सभा से विधायक चुनी गयीं। वर्ष 2014 में झाँसी लोकसभा सीट से सांसद चुनी गयी है और मोदी मंत्रिमण्डल में भारत की जल संसाधन, नदी विकास और गंगा सफाई मंत्री बनाया गया हैं।

फूलन देवी

डकैत से सांसद बनी भारत की एक मात्र दिलत महिला फूलन देवी का जन्म उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गांव में हुआ। बहुत तरह की प्रताड़ना व कष्ट झेलने के बाद वह डकैत बन गयी। वह उस समय राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सुर्खियाँ में आयीं जब पहली बार 1981 में ऊँची जातियाँ के 22 लोगों का एक साथ तथाकथित नरसंहार किया। 1983 में इसने आत्मसमर्पण किया तथा 1994 में मुलायम सिंह सरकार ने उसे जेल से रिहा कर दिया। 1996 में इसने उत्तर प्रदेश की भदोही सीट से लोक सभा चुनाव जीता और संसद पहुँची परन्तु 25 जुलाई 2001 को दिल्ली में उनके आवास पर उनकी हत्या कर दी गयी।

स्मृति जुबिन ईरानी

भारतीय टेलीविजन अभिनेत्री, महिला राजनीतिज्ञ स्मृति जुबिन ईरानी का जन्म 23 मार्च 1976 को दिल्ली में हुआ था। ये मुम्बई जाकर अभिनय के जिरये अपना किस्मत बनायी। इन्होंने टेलीविजन धारावाहिक ''क्योंकि सास भी कभी बहू थी'' में तुलसी का केन्द्रीय किरदार निभाया और चर्चित हुईं। इन्होंने 2003 में भाजपा से जुड़कर अपने राजनीतिक कैरियर की शुरुआत की। इसी वर्ष दिल्ली के चाँदनी चौक लोक सभा निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ा तथा किपल सिब्बल से हार गयीं। 2004 में इन्हें महाराष्ट्र यूथ विंग का उपाध्यक्ष बनाया गया। पांच बार इन्हें पार्टी केन्द्रीय सिमिति के कार्यकारी सदस्य के रूप में मनोनीत किया और राष्ट्रीय सिचव के रूप में भी नियुक्त किया गया। 2010 में उन्हें भाजपा महिला मोर्चा की कमान सौंपी गयी। 2011 में वे गुजरात से राज्य सभा की सदस्य चुनी गयीं और इसी वर्ष इन्हें हिमाचल प्रदेश महिला मोर्चा की कमान सौंपी गयीं। 2014 लोक सभा चुनाव में अमठी लोक सभा सीट से राहुल गांधी से हार गयीं। वर्तमान मोदी सरकार में उन्हें मानव संसाधन विकास मंत्री बनाया गया पुनः मंत्रलय बदल दिया गया है। इस समय भारत सरकार के अन्तर्गत कपड़ा मंत्री हैं।

उपरोक्त महिलाओं के अतिरिक्त भारतीय राजनीति में उर्मिला सिंह, कमला बेनीवाल, कुमुदबेन जोशी, चन्द्रावती, छवि रजावत, ज्योति वैंकटचलम, जानकी रामचन्द्रन, नंदिनी सत्यपथी, पद्मजा नायडू, पार्वती कृष्णन, रजनी राय, रिजन्दर कौर भट्टल, रामदुलारी सिन्हा, वी.एस. रमा देवी, शारदा मुखर्जी, शिशकला, काकोदकर, शीला कौल, चन्द्रकला, हरिसमरत कौर इत्यादि अन्य अनेक महिलाओं की भारतीय राजनीति में आजादी के बाद से आज तक प्रभावी भूमिका रही है तथा वर्तमान में भी बनी हुई है।

वर्तमान समय 2016 में भारतीय संसद में 62 महिला सांसद है जिसमें 22 पोस्ट ग्रेजुएट एवं 22 ग्रेजुएट हैं जो भारतीय राजनीति को अपने विचारों एवं क्रियाकलापों से एक नई दिशा व प्रभाव पूर्ण दशा प्रदान कर रहीं हैं। वर्तमान दशा में देखा जाये तो महिलायें राजनीतिक वर्चस्व की खोज में चूल्हें चौंके से चौपाल की ओर रूख कर चूकीं हैं। राजनीति में जमीन तलाशती आज महिलायें दहलीज के पार हैं, कल तक उसके जो सपने पलकों में चिपके रहते थे, आज उन सपनों ने आकार प्राप्त करना शुरु कर दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1. हजारिका, संजय (2 दिसमबर 1990) ''विजय लक्ष्मी पंडित, राजनीतिज्ञा एवं नेहरू की बहन का 90 की आयु में निधन (अंग्रेजी में) न्यूयार्क टाइम्स, अभिगमन तिथि : 14 अक्टूबर 2013
- 2. ''1953 : Pandit Elected Head of UN'' न्यूयार्क टाइम्स, 16 सितम्बर 2003 अभिगमन तिथि : 14 अक्टूबर 2013
- 3. Sharma, S.K. (2004) Eminent Indian Freedom Fighters, Annol Publications Pvt. Ltd. pp. 560, ISBN-9788126118908
- 4. इंन्दिरा इस तरह बनी गांधी (वेब दुनिया)
- 5. कोचानेक, स्टेनली, मिसेज गांधी पिरामिड : द न्यू कांग्रेस (वेस्टब्यू प्रेस, बोल्डर, सीओ 1976) पृ. 98
- गुहा, रामचन्द्र गांधी के बाद भारत, पृ. 563
- 7. "भारत को मिली पहली महिला राष्ट्रपति" (एसएचटीएमएल). बीबीसी अभिगमन तिथि 2007
- 8. ''भारत की राज्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल'' (पी.एच.पी.) भारत सरकार, अभिगमन तिथि 2009
- 9. New Stars in Rajya Sabha spotlight on मई awati'' द हिन्दू (New Delhi). 25 अप्रैल 2012. अभिगमन तिथि : 18 रुखरी 2014
- 10. "Alphabetical List of All members of RajyaSabha Since 1952". 164.100.47.5. अभिगमन तिथि 18-02-2014
- 11. पटेल, आतिश (21 मई 2014) "Profile: Anandiben Patel" अंग्रेजी में, दिल्ली, अभिगमन तिथि: 24 मई 2014
- 12. ''सुमित्र ताई बन सकती हैं लोक सभा अध्यक्ष'' लाइव हिन्दुस्तान, 4 जून 2014, अभिगमन तिथि, 4 जून 2014
- 13. "Elevenses". Rediff.com. 13 मई 1999. अभिगमन तिथि : 31 जनवरी 2010
- 14. "A sneak peek in to Sushma Swaraj's life" Dainik Bhaskar 28 मार्च 2013. अभिगम तिथि।
- 15. ''राजे का राजघराने से राजनीति का सफर'', राजस्थान पत्रिका 13 दिसम्बर 2013 Archived From the original on 13 दिसम्बर 2013. अभिगमन तिथि : 14 दिसम्बर 2013
- 16. "Untouchable Politics and politicians since 1956: Mayawati" अभिगमन तिथि 2007.
- 17. "BJP Meet to decide Uma Bharati's late" द टाइम्स ऑफ इण्डिया Archived from the original on 23 अगस्त 2004 अभिगमन तिथि : 20 मार्च 2009.
- 18. ''स्मृति ईरानी: सीरियल से संसद तक का सफर'' जी न्यूज अभिगमन तिथि 27 मई 2014

उच्च शिक्षा की समस्याएँ

अजय कुमार मिश्र* एवं कुमारी रूबी नायक**

शिक्षा की सार्थकता इसी में है कि वह मनुष्य को संतुलित और श्रेष्ठ जीवन प्रदान करे। मनुष्य का आत्मिक विकास, सांसारिकता से आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति, गुण अवगुण को परखने की शिक्त तथा उचित अनुचित के विश्लेषण की वृत्ति शिक्षा से ही सम्भव रही है। शिक्षा लौकिक एवं पारलौकिक जीवन की संतुलित विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा से ही मनुष्य का जीवन विशुद्ध, प्रज्ञा सम्पन्न, परिष्कृत तथा समुन्नत होता है। मनुष्य का जीवन शिक्षा और ज्ञान से ही धर्म प्रवण, नैतिक मूल्यों से युक्त, उच्च आदशों से सम्बलित, बहुमुखी व्यक्तित्व से युक्त तथा जीविकोपार्जन हेतु कुशल होता है। भारतीय मनीषियों द्वारा तीन लोग-मनुष्य लोक, पितृ लोक और देव लोक के सन्दर्भ में कहा गया है कि मनुष्य लोक पुत्र लोक के द्वारा पितृ लोक यज्ञ आदि कर्म के द्वारा और देव लोक विद्या द्वारा ही जीता जा सकता है। उपरोक्त तीनों लोको में देव लोक श्रेष्ठ ही नहीं अपितु प्रशंसनीय माना गया।

मनुष्यलोकः पितृलोकः देवलोको इति। सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा। कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोको वै लोकानां श्रेष्ठः। तस्माद् विद्यां प्रशंसन्ति।

विष्णुपुराण में कहा गया है कि अज्ञानता अंधकार के समान होती है- अन्धं तम इवाज्ञानम।

भारतीय परम्परा में तो यहाँ तक कहा गया है कि ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है जो उसे समस्त तत्वों के मृल को समझने में समर्थ बनाती है तथा सही कार्यों की ओर प्रवृत्ति करती है। महाभारत में भी विद्या अर्थात् ज्ञान की प्रतिष्ठा को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि-

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।

अर्थात् विद्या के समान कोई नेत्र नहीं और सत्य के समान कोई तप नहीं। वायुपुराण में कहा गया है कि जान से ही शास्वत की उपलब्धि होती है। विद्यालयीय शिक्षा का उद्देश्य भी दीक्षान्त में स्पष्टत: लक्षित होता है जैसे-

^{*}एसोसियट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, प्रातत्व एवं संस्कृति विभाग, पी.जी. कॉलेज, आश्रम वरहज, देवरिया

^{**}शोध छात्रा, प्राचीन इतिहास, पुरातन्त्र एवं संस्कृति विभाग, पी.जी. कॉलेज, आश्रम बरहज, देवरिया

सत्यवदं धर्ममचर देविपतृ कार्याभ्याम न प्रमदितव्यं। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव।

यह सभी उद्देश्य प्राचीन भारतीय शिक्षा के गौरवशाली स्वरूप को परिलक्षित करते हैं। किन्तु गुलामी की जंजीरों में जकड़े-जकड़े जब हम मानसिक परतंत्रता के शिकार बने तो शिक्षा का उपरोक्त उद्देश्य तो समाप्त हो गया लेकिन स्वातन्त्रयोत्तर काल के बने शिक्षा आयोगों की रिपोर्टी और उसके क्रियान्वयन में बरती गयी उदासीनता ने शिक्षा के स्वरूप को समाप्त कर दिया। मैकाले की शिक्षा पद्धति के हम ऐसे गुलाम बने कि आज तक उसे भूल नहीं पाये हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के 68 वर्ष बाद भी मैकाले और उसकी शिक्षा नीति पर छाती पीटने का अर्थ समझ में नहीं आता। आज भी भारतीय शिक्षा पद्धति भारत के अनुरूप विकसित नहीं की जा सकी है। यदि यह पूछा जाय कि चिकित्सा, तकनीकी तथा प्रबन्धन आदि के क्षेत्रों में शिक्षा संस्थानों के अतिरिक्त भारतीय शिक्षा की उपलब्धि क्या है? शिक्षा भारत को भावी पीढ़ी कैसी प्रदान कर रही है, वर्तमान उच्च शिक्षा का उद्देश्य क्या है? विश्वविद्यालय शिक्षा में सामाजिक मानविकी पाठ्यक्रमों की प्रासंगिकता क्या है? तो ऐसे प्रश्नों का उत्तर शायद ही मिल सके। विशेष रूप से उच्च शिक्षा में चल रहे परम्परागत शिक्षा के पाठ्यक्रम और शिक्षा तंत्र का ढाँचा पूर्णत: अनुपयोगी और अप्रासंगिक हो चला है। उच्च शिक्षा केन्द्रों में न तो ज्ञान की प्राप्ति हो पा रही है और न ही क्षेत्र का विकास हो पा रहा है। उच्च शिक्षा केन्द्र-प्रवेश, परीक्षा और परिणाम तक सिमट कर रह गये हैं। तीन दशक पूर्व उच्च शिक्षा में प्रवेश की समस्या को देखते हुए स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की मान्यता का क्रम प्रारंभ हुआ। स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थापना शिक्षा के बाजारीकरण को बढावा देने वाला प्रमाणित हुआ। इन संस्थाओं का संचालन बाजार की शक्तियों-माँग एवं पूर्ति के सिद्धान्त के आधार पर किया जाने लगा है तथा इनका उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना हो गया है। इस प्रकार शिक्षा समाजसेवा का न होकर लाभार्जन का क्षेत्र बनकर रह गया है। ऐसी संस्थाओं के संस्थापकों में गिने चुने कुछ संस्थाओं को छोड दिया जाय तो शेष सभी संस्थाओं के संस्थापक शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े न होकर व्यवसाय तथा राजनीति इत्यादि से जुड़े हुए लोग है जो शिक्षा को लाभार्जन का एक सुअवसर मानकर पूंजी का विनियोग कर रहे हैं जिससे कम से कम समय में अधिक से अधिक धनार्जन किया जा सके। वस्तुत: 1990 के बाद शिक्षा की संकल्पना में स्ववित्तपोषित व्यवस्था ने एक व्यापक बदलाव लाया है। आज शिक्षा की जो व्यवस्था उभर कर सामने आयी है उसमें सामाजिक एवं राष्ट्रीय हितों के प्रति कोई संवेदना नहीं दिखायी देती। वर्तमान में शिक्षा व्यक्तिगत विकास का साधन बनती जा रही है। स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा केन्द्रों से यह अपेक्षा की गयी कि वे समाज की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करेंगे लेकिन आज अधिकांश शिक्षालय समाज के लिए समस्या उत्पन्न करने के साधन बनते जा रहे हैं। समाज में बन्धुत्व, सामाजिक न्याय एवं शोषण मुक्त व्यवस्था की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण निभाने के बदले शिक्षालयों में शोषण, विषमता, अन्याय और कदाचार के संदेश समाज में नित्य प्रसारित हो रहे हैं। ऐसे में जब उच्च शिक्षा केन्द्र स्वयं विसंगतियों के शिकार हैं तो वह समाज में व्याप्त विषमताओं को कैसे दूर कर सकते हैं।

वस्तुत: शिक्षा शब्द एक व्यापक अर्थ धारण किये हुए हैं। इस संस्कारगत प्रक्रिया का मानव निर्माण में अप्रतिम योगदान है। संस्कारों के निर्माण तथा निर्धारण में मानवीय मुल्यों के विस्तृत आयाम समाहित है। मूल्यों के अभाव में आधुनिक युग में किसी नारी की सुरक्षा के लिए शस्त्रास्त्र तो प्रदान किये जा सकते हैं किन्तु वीरान सडक पर अकेली जाने वाली नारी- 'मेरी मां, बहन या बेटी हैं' इस मुल्य का निर्धारण आधुनिक विज्ञान नहीं कर सकता। इसीलिए हमारे शैक्षिक उद्देश्य तथा गंतव्य का निर्धारण विज्ञान द्वारा सम्भव नहीं है बल्कि संस्कारगत शुद्ध, चरित्रवान तथा सुशिक्षित आचार्य द्वारा ही सम्भव है। राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा को प्राथमिक, माध्यामिक तथा उच्च शिक्षा स्तर पर विभाजित किया गया है। जहां तक उच्च शिक्षा का अभिप्राय है तो वह यही है कि वह शिक्षा जो व्यक्ति के अन्दर उदात्त संस्कार तथा राष्ट्रीयता का भाव पैदा कर ज्ञान के किसी विशेष क्षेत्र में प्रवीण बनाने का कार्य करे किन्तु देश तथा विशेष रूप से उत्तर प्रदेश की वर्तमान उच्च शिक्षा व्यवस्था व्यक्ति में यह भाव पैदा करने में किस सीमा तक समर्थ है? इस प्रश्न पर गंभीरता पूर्वक विचार करते समय उच्च शिक्षा के अतीत एवं वर्तमान का तुलनात्मक विश्लेषण जरूरी है। देश तथा प्रदेश में उच्च शिक्षा की व्यवस्था अत्यन्त पुरातन है। प्राचीन काल से वर्तमान समय तक देश तथा प्रदेश में ख्याति प्राप्त उच्च शिक्षा केन्द्रों के होने की बात सर्वविदित है। इन शिक्षा केन्द्रों में अपने क्षेत्र के प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा विद्यार्थियों को चिरत्र एवं आचरण की शिक्षा दी जाती रही है किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से देश में न केवल उच्च शिक्षा केन्द्रों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुयी है बल्कि उत्तर प्रदेश की उच्च शिक्षा व्यवस्था में अनेक नये प्रयोग किये गये जिसने उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को काफी हद तक प्रभावित किया है। देश में अभी 297 विश्वविद्यालय और 33023 कालेज है। उत्तर प्रदेश 23 विश्वविद्यालय और 3859 कालेज है। राज्य में हर विश्वविद्यालय से औसतन 170 कालेज सम्बद्ध है। महाराष्ट्र में 20 विश्वविद्यालय और 4631 कालेज है। राज्य में हर विश्वविद्यालय से सम्बद्धता प्राप्त कालेजों की औसत संख्या 230 है। आंध्र प्रदेश में में 33 विश्वविद्यालय और 4,066 कालेज है। आंध्र प्रदेश में हर विश्वविद्यालय से औसतन 135 कालेज सम्बद्ध है। बिहार में 14 विश्वविद्यालय और 653 कालेज, दिल्ली में पांच विश्वविद्यालय और 243 कालेज, छत्तीसगढ में 11 विश्वविद्यालय और 641 कालेज है।

वर्तमान समय देश में कुल 296 विश्वविद्यालय तथा 11000 से अधिक कालेजों में 80 लाख अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए 3.42 लाख शिक्षकों के पद सुजित है किन्तू सरकार की अदुरदर्शिता के चलते 70,000 शिक्षकों के पद रिक्त हैं। प्राय: देखा जाता है कि एक शिक्षक की सेवानिवृत्ति के 4 या 5 वर्ष बाद ही उस पद पर नियुक्तियाँ हो रही है तब उस विषय का अध्यापन कैसे होता होगा? यह सोचने के लिए किसी के पास समय नहीं है। जहाँ तक उत्तर प्रदेश की बात है तो एक तरफ जहाँ 1946-47 में प्रदेश में 5 विश्वविद्यालय, 16 महाविद्यालय तथा तीन राजकीय महाविद्यालय में 22348 विद्यार्थी थे वहीं आज 23 विश्वविद्यालय, 331 व्यक्तिगत प्रबन्धतंत्र द्वारा संचालित महाविद्यालयों तथा 137 राजकीय महाविद्यालयों और 3391 स्विवत पोषित महाविद्यालय के 25 लाख से अधिक विद्यार्थी अध्ययनरत हैं। राज्य में प्रत्येक विद्यालय से औसतन 170 महाविद्यालय सम्बद्ध है। जबिक मानव संसाधन विकास मंत्रालय का स्पष्ट निर्देश है कि अधिकतम 100 कालेज ही सम्बद्ध होने चाहिए। इनमें मुक्त विश्वविद्यालयों में परीक्षा देने वाले छात्रों की संख्या सम्मिलत नहीं है अर्थात् आज उत्तर प्रदेश में स्थिति यह है कि प्रत्येक सप्ताह में एक नया महाविद्यालय खोलने की होड़ लगी हुई है। तीव्र गित से आर्थिक लाभ के लिए खुल रहे ये उच्च शिक्षा केन्द्र विद्यार्थियों में उत्तत संस्कार डालने में कहाँ तक सफल हो रहे हैं? यह विचारणीय हो गया है। गत वर्ष प्रदेश में उच्च शिक्षा का बजट 1862 करोड़ रूपये रहा जिसका 82 प्रतिशत से अधिक वेतन के मद में खर्च हुआ।

उच्च शिक्षा के केन्द्र मौलिक रूप से मानवीय मूल्यों के संरक्षण-संवर्द्धन के साथ वैज्ञानिक ज्ञान, अन्वेषणात्मक अनुसन्धान के चेतना केन्द्र के रूप में वैज्ञानिक ज्ञान है। वहीं शिक्षा का उद्देश्य समाज में एकीकरण एवं संगठन उपलब्ध करवाना एवं बालक बालिकाओं को आत्मिनिर्भर बनाने के साथ ही उनका बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास करना भी होता है, जिससे कि वह भविष्य में अपने सम्पूर्ण पर्यावरण के साथ सफल अनुकृलन कर सके तथा अपने ज्ञान एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक विरासत का दूसरी पीढ़ी तक पहुँचा सके। महात्मा गाँधी के अनुसार-शिक्षा से मेरा अभिप्राय बच्चे के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का सर्वोगीण विकास करने से है। वहीं स्पेन्सर का मानना है कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपने जीवन को पूर्णतया सफल बना सके और उच्च शिक्षा के कन्धों पर उत्तरदायित्व स्वाभाविक रूप से आ जाता है। एच. हेरिंगटन ने अपनी पुस्तक-दि सोशल फंक्शन आफ दि यूनिवर्सिटी में विश्वविद्यालय का कार्य ज्ञान के उस व्यापक रूप का अन्वेषण करना बताया है जो मानव की संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में विकास एवं उन्नित में सहायक हो सके अर्थात् उच्च शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान का संकल्प खोज तथा प्रसार करना है।

परन्तु वर्तमान में उच्च शिक्षा अपने उद्देश्य से दूर हो गयी है जो शोधपत्र का विषय भी है और शोधपत्र में यह जानने का प्रयास भी किया गया है कि भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् उच्च शिक्षा में विकास क्यों नहीं हो पा रहा है?

भारत में प्राचीन काल से ही उच्च शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व को स्वीकार किया गया है। वैदिक काल में गुरुकुल, बौद्ध-काल में मठ तथा मुस्लिम काल में मदरसे उच्च शिक्षा के महत्वपूर्ण संस्थान रहे।^{1ए} वहीं ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में शिक्षा विशेष रूप से अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने का उद्देश्य समग्र भारत का विकास न करके ब्रिटेन में मुक्त व्यापार के समर्थकों की माँगों का मानना था जैसा कि सव्यसाची भट्टाचार्य ने कहा है कि भारत में ऐसी नई शिक्षा व्यवस्था का आरम्भ हुआ जिससे ज्ञान के सुजन का काम तो मालिक देश को सौंपा गया जबकि उसके पुनरूत्पादन, दोहराव और प्रसार का काम उपनिवेश की जनता को दे दिया गया।2 इस तरह अंग्रेजी शिक्षा की इस नई नीति की प्रमुख विशेषता अधोमुखी रिसाव (downward filtration) का सिद्धान्त थी। यह शिक्षा जनता के लिए नहीं थी बल्कि सी.ई. ट्रेवेल्यान के शब्दों में- धनिकों, विद्वानों, व्यवसायियों लिए थी³ क्योंकि उनके यहाँ शिक्षा की एक परम्परा थी, ज्ञान पाने की उत्सुकता भी थी और उसके लिए साधन भी थे। सबसे बड़ी बात यह है कि उनके पास इसके लिए पर्याप्त अवकाश था। इसके बाद 1854 में प्रस्तुत किये गये युद्ध घोषणा पत्र में भारत में आधुनिक ढंग के विश्वविद्यालयों की स्थापना करने की घोषणा की गयी थी। इस नीति का प्रस्ताव यह था कि जहाँ अत्यधिक शिक्षित भारतवासियों का एक अपेक्षाकृत छोटा समृह प्रशासन के निचले पदों के लिए आवश्यक होगा वहीं व्यापक जनता को ऐसे श्रमिक बनने के लिए उपयोगी और व्यावहारिक ज्ञान मिलेगा, जो साम्राज्य के व्यापक संसाधनों का विकास कर सके और साथ ही बाजार की तलाश में लगी ब्रिटिश वस्तुओं की गुणवत्ता को महत्व देने वाले अच्छे उपभोक्ता भी बने। इसलिए जहां जनता के लिए प्राथमिक और तकनीकी शिक्षा की पैरवी की गयी, वहीं 1857 में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में लन्दन विश्वविद्यालय की तर्ज पर तीन विश्वविद्यालय की स्थापना करके उच्च शिक्षा को और बढावा दिया गया। इसी माडल को उपनिवेशों की दशाओं के लिए सबसे उपयुक्त पाया गया है। 1852 के भारतीय शिक्षा आयोग इण्टर कमीशन ने शिक्षा व्यवस्था की समस्या को हल करने का असफल प्रयास किया। उसने थोड़े से लोगों के लिए उच्च अंग्रेजी साहित्यिक शिक्षा और जनता के लिए तकनीकी शिक्षा के बीच नये आयाम ढूँढने के लिए भारतीय लोगों को गुमराह करने का प्रयास किया गया और भारत में उच्च शिक्षा की आवश्यकता को अधिक नहीं बल दिया गया। इसका भी एक मुख्य उद्देश्य यही रह गया कि तत्कालीन यूरोप में हो रही औद्योगिक क्रान्ति के लिए शिक्षित मजदरों की व्यवस्था बडे पैमाने पर हो जाय।5

स्वतन्त्र भारत में उच्च शिक्षा का किसी भी राज्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में बहुमुखी विकास हेतु उच्च शिक्षा के प्रसार एवं विकास हेतु सर्वप्रथम प्रयाम किये गये तथा 1948 में डा. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग गठित किया गया। इस आयोग ने उच्च शिक्षा के उद्देश्य संगठनात्मक, संरचना, प्रशासन व वित्तीय प्रबन्धन, पाठ्यक्रम, शिक्षा का माध्यम, शिक्षक का स्थान व महत्व, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा, ग्रामीण विश्वविद्यालय, परीक्षा प्रणाली, स्त्री शिक्षा आदि लगभग समस्त पहलुओं पर विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। इसके कुछ सुझावों का लागू कर दिया

गया था। राधाकृष्णन कमीशन के बाद भारत की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में व्यापक तथा राष्ट्रीय स्तर पर सुधार के उद्देश्य से राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन)की नियुक्ति 1964 में की गयी। इस आयोग ने भारतीय शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता बताते हुए उच्च शिक्षा के संगठन, प्रशासन, वरिष्ठ विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, उद्देश्य पाठ्यक्रम, मूल्यांकन प्रणाली, शैक्षिक स्तर का उन्नयन तथा व्यावसायिक शिक्षा आदि पक्षों का गठन विश्लेषण करते हुए अनेक बहुमूल्य सझाव दिये। 1966 से लेकर 1986 तक भारतीय उच्च शिक्षा ने राजनीतिक उलट-फेर के कारण अनेक उतार-चढाव देखे। किन्तु 1986 में राजीव गांधी सरकार द्वारा घोषित की गयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इसे एक स्थायित्व प्रदान किया। इस शिक्षा पर कोठारी आयोग के सुझावों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। अतः विश्वविद्यालयी शिक्षा पर भी राष्ट्रीय आभार पर विचार करते हुए इस नयी शिक्षा नीति में शैक्षिक अवसरों की समानता, जनतंत्र और शिक्षा, यूजीसी मुक्त विश्वविद्यालय एकेडिमक स्टाफ कालेज स्तर का उन्नयन आदि क्षेत्रों में नवीन महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। किन्तु भारत सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयासों के बाद भी आज यह विश्व के विकसित देशों के तुलना में बहुत पीछे हैं। यह अवश्य है कि यहाँ के कुछ विश्वविद्यालय अपनी शैक्षिक उपलब्धियों और भौतिक संसाधनों की भव्यता के लिए पर्याप्त प्रतिष्ठित माने जाते हैं किन्तु इसके बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय मानकों और विश्व के श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों की तुलना इनसे नहीं की जा सकती। गुणवत्तायुक्त उच्च शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए विशेषत: विकासशील राष्ट्रों को अपरिहार्य रूप से कतिपय दायित्वों को स्वीकारना पडता है। यद्यपि भारत में इस सन्दर्भ में सरकार ने महत्वपूर्ण एवं सराहनीय प्रयास किये हैं तथापि आधिकारिक निकायों और समितियों ने रेखांकित किया है कि शासकीय प्रयासों को और भी संपृष्ट करना आवश्यक है। उदाहरण-दो रिपोर्टों का उल्लेख किया जा सकता है-

- 1. उच्च और तकनीकी शिक्षा का धन उपलब्ध कराने के विषय में केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार परिषद (CABE) समिति की रिपोर्ट एवं
- 2. राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम कर तापस मजूमदार समिति की रिपोर्ट।

इन रिपोर्टों के अनुसार कुल सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने के लिए आवश्यक जनसंसाधनों को उपलब्ध कराने हेतु रास्ते और साधन ढूँढ़ने होंगे। इन रिपोर्टों ने परोक्ष रूप से स्वीकार किया है कि सरकार द्वारा किये गये प्रयास उच्च शिक्षा के विकास में यथेष्ट रूप से सहायक नहीं हो सके है, क्योंकि (1) तेज आर्थिक विकास के लिए (2) वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के लिए (3) समता पर आधारित शैक्षिक तंत्र बनाने में तथा (4) ज्ञान समाज बनाने में समुचित संसाधन उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं। स्वतन्त्रता के उपरान्त उच्च शिक्षा प्राप्त वयस्क आबादी का प्रतिशत निरन्तर बढ़ रहा है परन्तु यदि हम वर्तमान में उच्च शिक्षा में सम्बन्धित आयु-वर्ग (18-22 वर्ष) के नामांकन के आंकड़ों को देखे तो यह अनुपात जिसे

सकल नामांकन अनुपात (GER) कहा जाता है यह 10 प्रतिशत से कम है। स्पष्ट है कि हमें अभी भी एक लम्बी दूरी तय करनी है। यद्यपि विभिन्न निकायों ने स्पष्ट रूप से मध्यम अविध में वांछनीय सकल नामांकन अनुपात (GER) इंगित नहीं किया है, यह उचित प्रतीत होता है कि इसका लक्ष्य न्यूनतम 15 प्रतिशत रखा जाना चाहिए। परन्तु इस वांछनीय स्तर को प्राप्त करने के कार्य में और भी बांधाएँ हैं। उदाहरणार्थ- उच्च शिक्षा पर लोक व्यय में कुल GNP के सापेक्ष में कमी आ रही है जो 1990-91 में कुल GNP का 0.5 प्रतिशत था वहीं 2002-03 में कुल GNP का 0.3 प्रतिशत ही व्यय हो रहा है।7 यहीं नहीं उच्च शिक्षा में प्रति छात्र पर होने वाले व्यय में भी गिरावट हो रही है। सरकार द्वारा उच्च शिक्षा में जो छात्रवृत्तियाँ दी जा रही हैं उनमें भी कमी आ रही है। जहाँ 1990-91 में 0.5 प्रतिशत छात्रवृत्ति दी जा रही थी। यहीं 2000-01 में घटकर 0.25 प्रतिशत ही छात्रवृत्ति दी जा रही है। उच्च शिक्षा में शोध के लिए दी जाने वाली छात्रवृत्ति जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के द्वारा दी जा रही है उसमें भी गिरावट आ रही है।

उच्च शिक्षा इस समय संक्रमण काल के दौर से गुजर रही है इसकी तमाम समस्याओं व विसंगतियों में एक प्रमुख विसंगति है बढ़ता निजीकरण। इस वाक्य में आबादी-बिड़ला रिपोर्ट (2000) की संस्तुति महत्वपूर्ण है जिसका सार-संक्षेप यह कि शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर तो शासन व सरकार की अधिकतम भूमिका हो किन्तु उच्च शिक्षा के स्तर पर इसे न्यूनतम रखा जाय। सिमिति के विचार में उच्च शिक्षा का उपयोग करने वाले ही उसकी कीमत चुकायें। इस रिपोर्ट में उच्च शिक्षा के निजीकरण की खुलकर बात की गयी है वहीं निजी क्षेत्र में विश्वविद्यालय खोले जाने हेतु विधेयक लाने की बात की गयी है। रिपोर्ट में प्रस्तावित निजी क्षेत्र में उच्च शिक्षा के अनेक संस्थान आये दिन खुल रहे हैं और इस प्रकार शिक्षा के निजीकरण का दौर पूरी तरह प्रारम्भ हो गया।

इस प्रकार स्पष्ट कहा जा सकता है कि सरकार के सभी प्रयासों के बावजूद उच्च शिक्षा के विकास में अवरोध स्पष्टत: दृष्टिगत है। सरकार को निजी उच्च शिक्षा-संसाधनों को बढ़ावा देने में अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि प्रगतिशील चिन्तन वाले अनेक शिक्षाविदों का मत है कि उच्च शिक्षा के विस्तार में निजीकरण को प्रमुख साधन बनाना घातक है क्योंकि निजी उद्यम में पारमाणिंक उद्देश्य में रूकावट हो रही है तथा केवल शासकीय उद्यम ही सुव्यवस्थित सुनियोजित एवं सामाजिक दृष्टि से जनकल्याणकारी सिद्ध हो सके जिसकी पहुंच-राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की रिपोर्ट फरवर्ग (2007) और समानता दोनों पक्षों में नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं। यहाँ तक कि यह सूचना प्रौद्योगिकी सम्बन्धी क्षेत्रों का सामाजिक विज्ञान और मानविकी के ऊपर अत्यधिक महत्व देने के कारण उच्च शिक्षा में आंतरिक असन्तुलन और विकृति पैदा कर सकता है। शिक्षा और ज्ञान का व्यावसायिककरण से लम्बे समय तक राष्ट्रीय हितों की रक्षा नहीं हो सकता है। प्रगतिशील दृष्टिकोण में काफी बल है परन्तु यदि संसाधनों की उपलब्धता के वर्तमान वास्तविक परिदृश्य को

ध्यान में रखा जाय तो यह दृष्टिकोण व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता है। भारत में अनेक दृष्टान्त हैं जहाँ निजी संस्थानों का प्रदर्शन शैक्षणिक एवं सामाजिक दोनों दृष्टियों से अच्छा प्रतीत होता है। इन परिस्थितियों में प्रगतिशील दृष्टिकोण द्वारा दी गयी चेतावनी के बावजूद यह अपरिहार्य है कि निजी शिक्षा संस्थानों को उच्च शिक्षा की पहुँच बढ़ाने, उनमें सामाजिक समानता का महत्वपूर्ण समन्वय करने हेतु भूमिका निभानी ही होगी। परन्तु इस सन्दर्भ में कई रक्षात्मक कार्य-क्रियान्वित करने पड़ेंगे तािक यह शुद्ध व्यावसायिक उद्देश्यों तक ही सीिमत न रहे तथा उनके क्रिया-कलापों में सामाजिक गन्तव्यों का उपयुक्त समायोजन हो सके।

इस तरह सरकार संसाधनों के कमी के चलते उच्च शिक्षा के विकास के लिए निजी शिक्षा संस्थानों को प्रोत्साहित करने, सक्षम बनाने तथा विनिमय करने की दिशा में सरकार के स्तर पर नये सोच/कदमों की अत्यन्त आवश्यकता है, परन्तु ऐसे सभी उपायों में व्यावसायीकरण पर प्रभावी नियंत्रण करना भी अपेक्षित है साथ ही सामाजिक समानता बढ़ाने के लिए कुछ अन्य प्रावधानों का समन्वय आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में बदलते वैश्विक व सामाजिक परिदृश्य के कारण विश्वविद्यालयों के उत्तरदायित्वों में बढोत्तरी हुयी है और यह अपेक्षा की जा रही है कि विश्वविद्यालय प्रत्येक क्षेत्र के विकास के लिए अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्धारण स्वयं भी करे। ऐसे में आवश्यकता हो जाती है कि विश्वविद्यालय समय की मांग को ध्यान में रखते हुए अपने सम्पूर्ण संगठन, प्रबन्धन एवं कार्यक्शलता का पुनर्मूल्यांकन करे तथा समय के अनुरूप अपनी व्यवस्थाओं में परिवर्तन लाये ताकि समाज तथा राष्ट्र की उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं की पूर्ति को सुनिश्चित किया जा सके। इस प्रकार कोई भी देश जो अपनी आर्थिक उन्नित को निरन्तर सुरक्षित रखना चाहता है उसे शिक्षा प्रणाली पर काफी ध्यान देना आवश्यक है। विश्व बैंक रिपोर्ट (1999-2000) में यह स्पष्ट अंकित है कि अन्य सभी विकास प्रयासों एवं उद्यमों की भांति शिक्षा और स्वास्थ्य भी अतंर्सम्बन्धित है और यह समग्र विकास प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते हैं। मानव-विकास का पथ अन्तत: आर्थिक विकास की ओर जाता है। छात्रों और शिक्षकों की उपेक्षा कर शिक्षालय राष्ट्र व समाज का विकास नहीं कर सकते। स्ववित्त पोषित शिक्षा व्यवस्था के कारण शिक्षकों का मनोबल प्रभावित हुआ है और यह ध्यातव्य है कि यदि समाज में शिक्षक का मनोबल ट्ट जायेगा तो राष्ट्र भी अपना अस्तित्व बचा नहीं पायेगा इसीलिए 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है कि कोई भी राष्ट्र अपने शिक्षक के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता। शिक्षकों का मनोबल टूटने में बचाने हेतु उनके व्यावसायिक गरिमा के संरक्षण एवं सम्बर्द्धन के साथ ही उनके सामाजिक एवं आर्थिक हितों की सुरक्षा उनकी व्यक्तिगत नहीं बल्कि राष्ट्रीय आवश्यकता है। इस जिम्मेदारी से मुक्ति के सभी व्यक्तिगत व सरकारी प्रयास शिक्षा, शिक्षक व शिक्षार्थी के लिए ही नहीं बल्कि राष्ट्र व समाज के लिए उपयोगी साबित होंगे। उच्च शिक्षा की समस्याओं से मुक्ति के लिए शैक्षिक प्रणाली में एकरूपता महत्वपूर्ण आवश्यकता है। वित्त पोषित, स्ववित्त पोषित, निजी तथा सरकारी

व्यवस्था के कारण आज शिक्षा केन्द्रों के बीच जो दीवार खड़ी कर दी गयी है वह शिक्षा के विकास की व्यवस्था में बाँधा उत्पन्न कर रही है। इसी कारण से आज छात्रों से लेकर शिक्षकों के चयन में विसंगतियाँ दिखायी देती है। यह इतनी प्रभावी है कि छात्र के मस्तिष्क के अनिवार्य की हिस्सा बन गयी है। इसके कारण उसका सामाजिक और पारिवारिक जीवन विसंगतियाँ का शिकार हो रहा है। इसलिए उच्च शिक्षा में सुधार सम्बन्ध सबसे प्रभावी पहल शिक्षा में व्याप्त विभेद को समाप्त करना है।

ऐसे में सरकार समाज और शिक्षा से जुड़े लोगों का यह कर्त्तव्य है कि उच्च शिक्षा के समक्ष यह उत्पन्न गंभीर चुनौतियों का सामना करने के लिए अधिक सजग एवं सिक्रय हो। सरकार को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अपनी भूमिका सीमित करने की जगह अधिक संवेदनशील और सार्थक बनानी होगी तािक अपेक्षाकृत कमजोर वर्ग के बच्चों और युवाओं को उच्च शिक्षा के लाभ से वंचित होने से रोका जा सके साथ ही शिक्षा में विदेशी संस्थाओं की बढ़ती भूमिका पर अंकुश लगाना आवश्यक है तािक युवा पीढ़ी को भारतीय संस्कृति श्रेष्ठ तत्वों एवं राष्ट्रीय हितों से विमुख होने से बचाया जा सके। प्राइवेट कालेजों में सुधार लाने के लिए विश्वविद्यालयों को प्रवेश, नियुक्ति तथा पदोन्नित आदि के सम्बन्ध में कड़े नियम बनाने चािहए तािक इन कालेजों का मानदण्ड किसी प्रकार से न गिरने पाये। विश्वविद्यालय को दलगत राजनीति से दूर रहने और ज्ञान की खोज करने के लिए उपयुक्त बनाने हेतु उन्हें अधिकाधिक स्वायत्तता प्रदान की जाय। जिस बात को हम राजकीय हस्तक्षेप कहने लगे हैं वह हस्तक्षेप न होकर सहयोग होना चािहए। शिक्तशाली राष्ट्रों के समक्ष एक चुनौती के रूप में उभरने एवं स्थापित होने के लिए भारत को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्वयं को सशक्त बनाना होगा। इसके लिए तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा के साथ ही साथ बुनियादी ज्ञान, समाज विज्ञान और मानिवकी विषयों में गंभीरता से अध्ययन और शोध की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

- 1. बृहदारण्यक उपनिषद 1,5,16।
- 1ए. यादव, डा. वीरेन्द्र सिंह, भारत में उच्च शिक्षा: कुल अहम सवाल, कुछ बुनियादी समस्याएं पृ. 34 : 2011, ओमेगा पब्लिकेशन्स दरियागंज, दिल्ली।
- 2. Bhattacharya, S., 1998: 7, Introdouction to the Contested terrain: Perspectives on Education in Indian Hyderabad: Orient Langman, Modern Times Delhi: Oxford University Press.
- 4. बंधोपाध्याय, शेखर, प्लासी रो विभाजन तक 2007 : ओरियंट लॉग्मैन 2007।
- 5. उपर्युक्त पृ., 351
- 6. 25 जुलाई 2006 को लोकसभा में प्रस्तुत की गयी संस्तुतियाँ।
- 7. Public Expenditure Real Expenditure on Higher Education.
- 8. U.G.C. Grant: Research Fellowships.
- 9. 24 अप्रैल 2000 का प्रस्तुत अग्वानी-बिड्ला रिपोर्ट।
- 10. 25 जुलाई 2006 को लोकसभा में प्रस्तुत की गयी संस्तुतियाँ।

गाँधी और जैन दर्शन

बच्छराज दूगड्*

अहिंसा, जैन दर्शन और गांधी परस्पर कुछ अथों में समान दृष्टिगोचर होते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि ये तीनों परस्पर समानान्तर अर्थ ही नहीं रखते अपितु अहिंसा, जैन दर्शन और गांधी कई अर्थों में एक-दूसरे के बिना अपूर्ण हैं।

जैन दर्शन अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त के मूल आधारों पर आधारित है, वहीं गांधी दर्शन के मूलाधार स्वधर्म, स्वदेशी व स्वराज हैं। इस लेखन में यह प्रयास किया गया है कि जैन दर्शन के प्राचीन सिद्धान्तों को गांधी द्वारा जिन नवीन रूपों में अपनाया गया, उन्हें वैश्विक परिदृश्य में अच्छी तरह से समझा जा सके। जैन धर्म के विभिन्न सिद्धान्तों का सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक आधार यह स्पष्ट करेगा कि गांधी पर जैन दर्शन का प्रभाव था। यह भी कहा जा सकता है कि गांधी ने जैन दर्शन/धर्म के कितपय सिद्धान्तों की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्तर पर मानवीय और पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के रूप में व्याख्या की।

जैन धर्म, गांधी और अहिंसा

जैन धर्म में अहिंसा को बहुत सूक्ष्मता से विश्लेषित किया गया है। यहाँ अहिंसा का अर्थ केवल 'नहीं मारने' तक ही सीमित नहीं है। जैन दर्शन में मन, वचन और शरीर से किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुंचाने पर बल दिया गया है। आचारांगसूत्र में कहा गया है– अहिंसक व्यक्ति न ही प्राणियों की हत्या करता है, न करवाता है और न ही हत्या करवाने की अनुमोदना करता है। अहिंसापूर्ण जागरूकता ही अवस्था है। अहिंसा की यह समग्र व्याख्या वैश्विक मामंजस्य की व्याख्या करती है जिसमें मनुष्य और प्रकृति सम्मिलित है। मनुष्य के लिए जहाँ अहिंसा का सम्बन्ध प्रवृत्ति और अभिप्राय से है वहीं प्रकृति के लिए अहिंसा प्राणीमात्र के प्रति सम्मान है।

सामाजिक-सांस्कृतिक रूप में अहिंसा का तात्पर्य उस व्यवहार से है जो सभी प्रकार के शोषण से मुक्त हो। किसी भी प्रकार का शोषण, चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म, क्रोध, मान, माया और

^{*}अध्यक्ष, अहिंसा एवं शान्ति विभाग - निदेशक, शोध, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनृं (राजस्थान)

लोभ की वृत्तियों द्वारा ही प्रेरित होता है। समाज में अशांति के मूल में इन्हीं कषायों की उपस्थिति काम करती है। कषायों के उपशमन के लिए व्यक्तिगत प्रयास और जागरूकता ही वे साधन हैं जो एक अहिंसक समाज की संरचना में सहायता कर सकते हैं।

गांधी ने लिखा था- "जैन धर्म के अतिरिक्त दुनिया में ऐसा कोई दूमरा धर्म नहीं है, जिसने अहिंसा की इतनी गहरी और व्यवस्थित व्याख्या जीवन में अनुप्रयोग के साथ की हो।" जैन दर्शन का केन्द्रीय सिद्धान्त अहिंसा है, गांधी दर्शन भी इसी पर आधारित है। गांधी ने एक राजनीतिक सिक्रियतावाद का सिद्धान्त विकसित किया जिसे 'सत्याग्रह' कहा जाता है; पूर्णत: सत्य और अहिंसा पर ही आधारित है। सत्याग्रह को 'असहयोग' और 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के रूप में भी अनुदित किया गया। गांधी ने कहा- "सत्याग्रह निश्चित रूप से सत्यवादियों का हथियार है। एक सत्याग्रही अहिंसा का कठोरता से पालन करने की प्रतिज्ञा करता है.।"

सामाजिक-सांस्कृतिक ढांचे में गांधी अहिंसा की अपनी समझ में हिंसा के रूपों की चर्चा करते हैं। वे हिंसा के दो रूप स्वीकारते हैं- प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष हिंसा। प्रत्यक्ष हिंसा शारीरिक, दृश्य और कर्ता केन्द्रित है जिसका परिणाम शारीरिक चोट, मृत्यु एवं अंतिम परिणति के रूप में युद्ध है। हिंसा का दूसरा रूप अप्रयत्यक्ष है। यह सहजतया दृश्यमान नहीं है। अप्रत्यक्ष हिंसा को संरचनात्मक हिंसा भी कहा जाता है। यह व्यवस्था पर आधारित होती है। सामान्यत: सामाजिक-आर्थिक जीवन में किसी न किसी रूप में यह विद्यमान रहती है। गांधी की विशिष्टता इसी में है कि उनके संवेदनशील मस्तिष्क ने हिंसा के उस सूक्ष्म स्वरूप को भली तरह समझा जो सहज रूप से दृष्टव्य नहीं है, किन्तु वह समाज में विभिन्न प्रकार के शोषण के रूप में व्यापक रूप से विद्यमान है। गांधी ने पुरजोर इस बात को स्वीकार किया कि वर्तमान सामाजिक-सांस्कृतिक ढांचे में शोषण ही हिंसा का मूल कारण है। गांधी ने समाज में व्याप्त शोषण के विभिन्न प्रकारों और साधनों की व्याख्या की, जैसे- अधि-कार्यभार, कार्य की अमानवीय दशाएं, न्यूनतम मजदूरी नहीं दिया जाना, मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति (जैसे-भोजन, आवास, कपडा, स्वच्छ पानी, पर्यावरण, शिक्षा, चिकित्सकीय सुविधा) का अभाव, काम करने के अवसरों का अभाव, बाल श्रम, लैंगिक अन्याय, मानवीय अधिकारों का हनन आदि। शोषण के ये सभी रूप संरचनात्मक हिंसा के ही व्यापक रूप हैं। इसलिए जब गांधी अहिंसक विश्व व्यवस्था की बात करते हैं तो उनका उद्देश्य समाज से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष-दोनों प्रकार की हिंसा को समाप्त करना था।

हिंसा के अभाव की स्थिति को ही शांति नहीं कहा जा सकता है। शांति की संस्कृति अथवा समाज में शांति की स्थापना तभी हो सकती है जब जीवन के प्रति सम्मान, करुणा, दया, अभय, मैत्री आदि के रूप में पल्लवित हो। दूसरे शब्दों में, जहां सभी का उत्थान हो, गांधी जिसे सर्वोदय कहते हैं। अत: गांधी और जैन दर्शन के अनुसार अहिंसा सद्गुणों की स्थापना और दुर्गुणों का

उन्मूलन है। सद्गुणों का विकास जीवन में स्वैच्छिक रूप से स्वीकृत व्रतों के पालन से होता है। 18 वर्ष की आयु में गांधी जब वकालत की पढ़ाई करने इंग्लैण्ड जा रहे थे तब उनकी माँ उन्हें इंग्लैण्ड भेजने में हिचिकिचा रही थीं। उन्होंने सुन रखा था- युवा, विवाहित व्यक्ति जब इंग्लैण्ड गये तो वे भ्रष्ट हो गये। उस समय गांधी की माँ ने जैन संत बेचरजी स्वामी से परामर्श किया। उन्होंने कहा-गांधी विदेश जाने से पूर्व माँ के समक्ष कुछ व्रत ग्रहण करें तभी उन्हें विदेश गमन की अनुमित दी जा सकेगी। गांधी ने प्रतिज्ञा ली- मैं विदेश में मांस, मिदरा और परस्त्रीगमन का त्याग करता हूँ। व्रत ग्रहण करने पर ही मेरी माँ ने मुझे जाने की अनुमित दी। इन व्रतों एवं कुछ अन्य बातों के कारण से मैं समय बचा सका जिससे मुझे धर्मग्रंथों के गंभीर अध्ययन का अवकाश मिला।

इच्छापरिमाण, स्वदेशी व स्वराज

जैन दर्शन और गांधी दोनों ही आर्थिक विकास के विरोधी नहीं हैं। उस आर्थिक विकास से कोई हानि नहीं है जो नैतिक पतन और सांस्कृतिक गिरावट से अछूता हो। इसीलिए आर्थिक क्रियाओं का निषेध नहीं है यदि वे प्राकृतिक एवं सामाजिक बाध्यताओं के अनुरूप हों।

दोनों ही विचारधाराओं में अर्थशास्त्र गहन रूप से नैतिकता से सम्बद्ध रहा है। सतत विकास का लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है जब मानवीय गतिविधियां मनुष्य व प्रकृति के साथ सामंजस्य रखकर संपादित की जाएं। इच्छापरिमाण, इच्छाओं का विलोपन नहीं अपितु इच्छाओं का अल्पीकरण है। 2 इस सीमाकरण का मृल उद्देश्य यद्यपि आध्यात्मिक उत्थान है किन्तु इसका परिणाम सामाजिक व आर्थिक विकास के रूप में भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

गांधी युग में आधुनिकीकरण और विकास की अवधारणा, एफ्रो-एशियन देशों- जो यूरोपियन शासन से मुक्त हुए थे, की प्रभुत्व वाली विचारधारा के रूप में उद्भूत हुई। इन देशों के मुख्य उद्देश्य थे-

- 1. तीव्र आर्थिक विकास
- 2. पाश्चात्य प्रतिमान के अनुकरण में सामाजिक परिवर्तन

इन लक्ष्यों की पूर्ति के प्रयासों ने भारत की सामाजिक, आर्थिक संरचना तथा आध्यात्मिक संपदा के विध्वंस का खतरा उत्पन्न कर दिया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि यह विकास सत्ता, लाभ और भौतिक सुख के आधारों पर अवलंबित था।¹²

विकास के इस प्रतिमान के विरुद्ध गांधी ने शरीर श्रम, आत्म-संयम तथा सद्गुणजनित सरल ग्रामीण जीवन की वकालत की। स्वदेशी की अवधारणा का उद्देश्य शरीर श्रम, प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग तथा स्वप्रबंधन की राजनीतिक संरचना के द्वारा आर्थिक आत्मनिर्भरता व पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करना था। गांधी ने जिस स्वराज की अवधारणा प्रस्तुत की, वह इच्छा परिमाण के सिद्धान्त पर आधारित है। कहा गया है- "स्वराज के लिए आत्मसंयम, अनुशासित-व्यवहार और व्यक्ति में समुदाय के सभी सदस्यों के प्रति दायित्वबोध की चेतना आवश्यक है।"¹⁴

आर्थिक विकास की यह अवधारणा अनेक संदर्भों में प्रासंगिक है जिसमें पृथ्वी की सुरक्षा एवं न्यायपरक जीवनक्षम विश्वव्यवस्था का उद्भव भी सम्मिलित है।

समता तथा आत्मपीड्न के प्रति गांधी का तर्क

पाश्चात्य दार्शनिकों ने बोद्धिकता को मनुष्य की एक प्रमुख विशेषता के रूप में स्वीकार किया है। सिगमंड फ्राइड जिन्होंने प्रथमत: मनुष्य को भावों के सम्बन्ध में विश्लेषित किया, के बाद ही यह कहा गया कि मनुष्य जितना बौद्धिक है, उतना ही भावप्रधान प्राणी भी है। जैन दर्शन के प्रारम्भ से ही कर्म सिद्धान्त के माध्यम से यह वर्णित किया जाता रहा कि मनुष्य बौद्धिक प्राणी के साथ भावात्मक प्राणी भी है। समता सत् की सर्वोच्च अवस्था है जो समान्य भाव स्थिति से उपरत है तथा जो राग और द्वेष से सम्बन्धित है। तकनीकी रूप से यह मोह विजय की अवस्था है, जिसमें इच्छाएं शून्य हो जाती हैं। इयावहारिक रूप में यह एक अहिंसक उपक्रम है जो करुणा, क्षमा और दूसरों के उत्थान से सम्यन्न है।

आत्मपीड़न जिसका प्रयोग सत्याग्रह में भी किया जाता है, के लिए गांधी का तर्क विरोधियों के तर्कों को काटने की तर्कपूर्ण रणनीति के रूप में प्रयुक्त किया जाना है। 'दूसरों को समझने के लिए केवल तर्क पर बल देना अपर्याप्त है। गांधी के शब्दों में– यदि तुम वास्तव में कुछ महत्त्वपूर्ण करना चाहते हो तो तुम्हें केवल तर्क को ही संतुष्ट नहीं करना है, तुम्हें हृदय तक प्रवेश करना होगा। तर्क का सम्बन्ध मस्तिष्क से है। हृदय में प्रवेश कष्ट सहने से होता है। इससे एक व्यक्ति को भीतर से पहचानने की शुरुआत होती है। 'इस प्रकार समता और आत्मपीड़न दूसरों को समझने के लिए उच्च अवस्थाएं हैं। कई अथों में ये रूपान्तरण के साधन के रूप में प्रयुक्त होती हैं।

अनेकान्त और संघर्षमुक्त संस्कृति

अनेकान्त सत् के विभिन्न रूपों का सिद्धान्त है। दूसरों के विचारों को जानने के लिए जैनदर्शन ने अनेकान्त के सिद्धान्त पर बल दिया। रुचि, विचार और व्यवहार में विरोध संघर्ष का मूल कारण है। इं जैन दर्शन यह स्वीकार करता है- मानवीय समझ में इन विरोधों को दूर करना या समाप्त करना आसान नहीं है। स्वयं के दृष्टिकोण के आधार पर विरोधी विचारों की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए अपितु मतों की विभिन्नता का गलत और सही का दावा किये बिना सम्मान होना चाहिए।

गांधी ने 1926 में लिखा था- "मैं अपने दृष्टिकोण से सदैव सत्य होता हूँ और कई बार मेरे

आलोचकों के दृष्टिकोण से गलत। मैं जानता हूँ कि हम दोनों ही अपने-अपने दृष्टिकोणों से सही हैं।"¹⁹

अनेकान्त प्रत्येक व्यक्ति के दृष्टिकोण को समान महत्त्व देती है। दूसरे को समझने में यद्यपि कुछ दृष्ट एवं कुछ पृष्ठ अर्थ होते हैं किन्तु वहां कभी भी कोई हाथ ऊपर नहीं होता है। इसलिए वहां विरोधी विचारों के प्रति भी पर्याप्त सम्मान होता है। गांधी कहते हैं- "मैं सत् के विभिन्न रूपों के इस सिद्धान्त को बहुत पसंद करता हूँ। यह वह सिद्धान्त है जिसने मुझे एक मुसलमान को उसके दृष्टिकोण से, एक ईसाई को उसके दृष्टिकोण से समझना सिखाया। जैन दर्शन के धरातल पर मैं ईश्वर के अकर्ता रूप को प्रमाणित करता हूँ और रामानुज दर्शन के धरातल पर ईश्वर के कर्ता रूप को। वस्तुत: तो हम सभी सत्य के सम्बन्ध में अविचारणीय पर विचार करते हैं, अवर्णनीय की व्याख्या करते हैं, अनाम को जानने की इच्छा करते हैं, इसीलिए हमारी भाषा मिथ्या होती है, अपर्याप्त होती है और प्राय: विरोधाभासी भी।"20

अन्तत: यह कहा जा सकता है कि जैन दर्शन के अहिंसा, अपरिग्रह व अनेकान्त तथा गांधी के स्वधर्म, स्वदेशी व स्वराज की अवधारणा जीवन के लिए नया दृष्टिकोण है। ये समग्र रूप से एक नवीन मानव जीवन की संरचना प्रस्तुत करते हैं। हमारी जीवन शैली को संयमित करते हैं तथा एक नवीन विश्व व्यवस्था के निर्माण का आधार प्रस्तुत करते हैं। इसमें प्रकृति के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार, मानवीय गरिमा का सम्मान तथा संघर्षों का शांतिपूर्ण समाधान सम्मिलत है।

संदर्भ :

- आचार्य महाप्रज्ञ, जैनदर्शन के मूल तत्त्व, आदर्श साहित्य संघ, दिल्ली, 2001, पृ. 19-21
- 2. Ali Asaraf, Gandhian Approach to Sustainable Development (Gandhism after Gandhi¼, Mittal Publication, New Delhi 1999, p. 17
- 3. दसवैआलियं, जिनदासचूर्णि, पृ. 20 एवं श्री भिक्षु आगम विषयकोश, संपादक-आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं, 1996, पृ. 76
- 4. आचार्य महाप्रज्ञ, टीकाकार-आचारांग भाष्य, जैन विश्व भारती, लाडनूं, 2001, 3.46
- 5. आचार्य तुलसी, जैन सिद्धान्त दीपिका, आदर्श साहित्य संघ, चूरू, अध्याय-6
- 6. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा 2990-91 एवं श्री भिक्षु आगम विषयकोश, संपादक-आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं, 1996, पृ. 196
- 7. http:èèjainismus.hubpages.comèhubèGandhi-and-Jainism
- 8. Gandhi, M.K., An Autobiography or the Story of My Experiments with Truth, Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1990 p.266
- 9. Ibid, p.389
- 10. शोभाचन्द्र भारिल्ल (संपा.), अनुवाद-मुनिश्री प्रवीण ऋषि जी महाराज, प्रश्नव्याकरण, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 2000, 2.107, पृ. 159

- 11. Gandhi, M.K., Op. cit.. p. 33; Romain Rolland, Mahatma Gandhi, Published in Great Britain , 1924, p. 4
- 12. आवश्यकसूत्र, पृ. 22 एवं श्री भिक्षु आगम विषयकोश, संपादक-आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं, 1996, पृ. 625
- 13. Ali Asaraf, Op. cit., p. 13
- 14. Bhatt, Siddharth; Shukla, Dinesh, Gandhi & Peace, Devvrat Pathak Memorial Trust, Ahmedabad, p. 93
- 15. आचार्यकुन्दकुन्द, प्रवचनसार, संपादक-हुकुमचन्द भारिल्ल, पं. टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर, 2008, गाथा 7
- 16. Bondurant, Conquest of Violence, p. 227-229; see also Seifert, Conquest of Suffering, p. 69-70
- 17. Sharp, Gene. The Politics of Nonviolent Action, Porter Sargent Publishers, Boston, 1985, p. 709
- 18. Sills, David L., International Encyclopedia of Social Sciences, The Macmillan, New York, 1972, Vol. III, p.236
- 19. जैन भारती, मार्च-मई 2002, पृ. 53
- 20. वही, पु. 53

तिब्बती बौद्ध धर्म एवं कला में प्रयुक्त भारतीय प्रतीक

हिमांशु तिवारी*

प्रतीक किसी वस्तु, चित्र, लिखित शब्द या विशिष्ट चिह्न को कहते हैं, जो सम्बन्ध, सादृश्यता या परम्परा द्वारा किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है। प्रतीक, स्थापत्य कला एवं शिल्प में बहुलता से प्रयुक्त विविध प्रतीकों एवं अभिप्रायों का अपना विशिष्ट महत्व है। ये किसी भी संस्कृत एवं कला के बहुआयामी स्वरूप के अभिज्ञान हेतु कुन्जी के सादृश्य हैं, जिनके अध्ययन के बिना इनके बहुत सारे पक्षों का उद्घाटन कर पाना सम्भव नहीं है। भारतीय कला विश्व की प्राचीनतम कलाओं में से एक मानी जाती है जिसने अपने पड़ोसी राष्ट्रों की कलाओं को बहुत ही गहरे ढंग से प्रभावित किया है। अत: यह स्वभाविक ही था कि जिन राष्ट्रों में यह कला पहुँची भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतीक चिह्नों का भी गमन वहाँ हुआ। इसका सर्वप्रमुख उदाहरण तिब्बत है, जहाँ भारतीय कला में विद्यमान प्रतीकों ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है जिसको अद्यतन उनकी कलाओं में देखा जा सकता है।

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि तिब्बती कला में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है, उसका मुख्य स्रोत भारतीय प्रतीक ही रहे हैं, जिसका मुख्य कारण है कि तिब्बत में न केवल बौद्ध धर्म का प्रसार भारत के माध्यम से हुआ, अपितु वहाँ की संस्कृति कला भी भारतीय कला और संस्कृति का ऋणी है। इस विवेचन का उद्देश्य कदापि नहीं है कि तिब्बत कला में प्रयुक्त प्रतीक भारत की कार्बन कापी है, बिल्क उन प्रतीकों को अपने यहाँ के पर्यावरण और आदर्श के अनुरूप ढाल कर प्रयोग किया गया है। इसके बावजूद चीन, नेपाल और मध्य एशिया जैसे ईरान से प्रभावित होने के बावजूद भी तिब्बती कला में उपस्थित प्रतीक के विकास में भारत का प्रमुख योगदान रहा है।

यह उल्लेखनीय है कि 7वीं सदी के आस-पास भारत से तिब्बत में बौद्ध धर्म की ज्योति पहुँची इसलिए वहाँ पर बौद्ध धर्म के पहुँचने के साथ ही भारतीय कला और संस्कृति का जाना स्वभावित ही था।

^{*}यू.जी.सी. वरिष्ठ/अध्येता, शोध, प्राचीन इतिहास पुगतत्त्व एवं संस्कृति विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

तिब्बती कला का विकास 7वीं शताब्दी के समय से प्रारम्भ हो गया था। इस कला पर तत्कालीन भारत में प्रचलित पाल कला एवं कश्मीर कला का निर्णायक प्रभाव पड़ा। तत्कालीन समय में भारत में जान, विज्ञान और धर्म के महान् केन्द्र के रूप में नालन्दा और विक्रमशिला महाविहारों का स्थान प्रमुख था। तिब्बती कलाकारों ने भारत के इस महाविहारों में शिक्षण और ज्ञान प्राप्त किया तथा भारतीय पर्यावरण प्रतीकों एंव आदशों का विधिवत् ज्ञान प्राप्त किया। मात्र यही नहीं भारत से धीमन और बिथपाल जैसे कलाकारों को बुलाकर तिब्बती कलाकारों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। तिब्बती यात्री और इतिहासकार तारानाथ ने इस बात की पुष्टि की है कि भारतीय कलाकारों से तिब्बती कलाकारों ने निर्देशन और आज्ञा प्राप्त की। इस प्रकार भारतीय कला और संस्कृति का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा, जिसके फलस्वरूप तिब्बती कलाकारों ने भारतीय प्रतीक चिह्नों का व्यापक रूप से प्रयोग किया।

'ए हैण्डबुक ऑफ तिब्बत सिम्बोलिज्म' नामक शोध पत्र के लेखक राबर्ट बीयर (Robert Beer) ने इस बात की पुष्टि की, कि तिब्बती कला में विशेषकर बौद्ध धर्म में भारतीय प्रतीकों का व्यापक रूप से प्रयोग किया। राबर्ट पीर ने अपने शोध पत्र में मुख्यत: 8 प्रतीकों के प्रयोग का उल्लेख किया है जिसको अष्टमांगलिक प्रतीक चिह्न कहा गया है। इन अष्टमांगलिक प्रतीक चिह्नों को प्रमुख रूप से वर्गीकृत किया गया हैं -

- 1. छत्र
- 2. मत्स्य युग्म
- 3. स्वर्ण कलश पात्र
- 4. कमल पुष्प
- 5. श्वेत शंख
- 6. श्रीवत्स
- 7. विजयी ध्वज
- 8. चक्र

इन प्रतीक चिह्नों को भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही प्रयुक्त किया जा रहा है न केवल हिन्दू धर्म बिल्क जैन धर्म में भी इन अष्ट प्रतीक चिह्नों का प्रयोग किया गया है। तिब्बती कथा के अनुसार उपरोक्त अष्ट चिह्न को भगवान् बुद्ध को प्रदान किये जाने के सम्बन्ध में कथा कही जाती है। इसमें सम्पूर्ण विश्व में अज्ञान के अंधकार के व्याप्त हो जाने पर सृष्टि के रचियता ब्रह्मा ने बुद्ध को हजार तिलियों वाली स्वर्ण चक्र प्रदान किया और उनसे आग्रह किया कि वे धर्म को सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित करें। इन्द्र ने उनको श्वेत रंग का शंख प्रदान किया जिससे कि वह सम्पूर्ण विश्व

में सत्य का शंखनाद करें। इसके अतिरिक्त दोनों देवताओं को बुद्ध के सिंहासन के समक्ष निवेदन की अवस्था में दिखाया गया है, साथ ही पृथ्वी को एक देवी के रूप में हाथ में कलश लिये हुए बुद्ध के समक्ष दिखलाया गया है। सिंहासन के पीछे विजय पताका एवं छत्र लगा हुआ है। इस प्रकार तिब्बती कलाकारों ने इन अष्ट प्रतीकों को बुद्ध के विभिन्न अंगो से भी जोड़ा है, जैसे-

- 1. छत्र को बुद्ध के सिर से।
- 2. मछलियों को उनकी आँखो से।
- 3. कलश पात्र को उनकी गर्दन से।
- 4. कमल को उनकी जिह्ना से।
- 5. चक्र को उनके पांव से।
- 6. विजयी ध्वज को उनके शरीर से।
- 7. शंख को वाणी से।
- श्रीवत्स को मस्तिष्क से जोड़ा गया है।
 उपरोक्त अष्ट प्रतीकों का अपना भी एक अर्थ है, जिसका विश्लेषण प्रासंगिक होगा -

छत्र :

छत्र को भारतीय प्रतीक चिह्नों से ग्रहण किया गया है। सामान्यत: छत्र धूप, गर्मी और से बचने के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है। धार्मिक अर्थो में इसका प्रयोग होता है, जब भिक्षुओं को मोह माया, बीमारी, भ्रम, बुराइयों से बचाया जाय। सामान्यत: छत्र राजकीय अभिव्यक्ति का सूचक है, जिसके सिर पर छत्र है वह सम्माननीय और विशेष व्यक्ति माना जाता है। बुद्ध के सन्दर्भ में यह चक्रवर्ती सम्राट् और महान् विभूति के रूप में उल्लेख किया गया।

संयुक्त स्वर्णिम मछलियाँ :

संस्कृत में इनको मत्स्य युग्म कहा जाता है। इनकी उत्पत्ति प्राचीन भारतीय कला में भारत की दो पिवत्र निदयों गंगा और यमुना के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया गया। तिब्बती बौद्ध धर्म में संयुक्त मछिलयों को प्रसन्नता और ऐश्वर्य का सूचक मानते हैं। इसी प्रकार यह मछिलयाँ उर्वरता एवं सम्पन्नता का सृचक है। चीनी बौद्ध धर्म में इनको सम्पदा का सूचक मानते हैं जिनको फेगंशुई कहते है। मिस्र में इन मछिलयों को नील नदी का प्रतीक मानते है।

स्वर्ण कलश पात्र :

जिसे भारतीय परम्परा में विद्या, ज्ञान, सृष्टि, देवता, ब्रह्मांड के साथ सूर्य और चन्द्र का प्रतीक

माना जाता है। इसकी प्रतीकात्मकता को सिंधु सभ्यता से प्राप्त किया जा सकता है। तिब्बती बौद्ध धर्म में धन से परिपूर्ण कलश को जम्भला, वैश्वरना और वसुंधरा जैसे देवी-देवताओं के साथ दिखलाया गया है।

कमल :

इसे पद्म के रूप में दिखलाया गया है। यह भारतीय परम्परा में महत्वपूर्ण मांगलिक चिह्न के रूप में प्रचलित है। विभिन्न पूजा स्थलों, स्तूपों, स्तम्भों, देवालयों और मन्दिरों के शिखर में इसका व्यापक प्रयोग हुआ। हिन्दू धर्म में सृष्टि के पालनहार भगवान् विष्णु के नाभि से कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा की उत्पत्ति बतलाई गयी है।

तिब्बत में बौद्ध धर्म के महान् प्रचारक आचार्य पद्म सम्भव की उत्पत्ति कमल से बतलायी गयी है और उनके द्वारा किये गये कार्यों के कारण लामा धर्म का प्रतीक चिह्न पद्म रखा गया है। तिब्बती इन्हें महा गुरु की संज्ञा दी है।

शंख :

भारतीय धर्म, संस्कृति में शंख का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। विष्णु के हाथ में पाञ्चजन्य शंख का उल्लेख मिलता है। महाभारत में अर्जुन के हाथ में शंख को देवदत्त कहा गया है। इसको युद्ध में घोषणा करने और विजयनाद के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। धार्मिक अर्थों में इसका प्रयोग बुरी शक्ति के नाश हेतु एवं प्राकृतिक आपदा एवं हानिकारक हिंसक जीवों को दूर रखने के लिए किया जाता है।

तिब्बती बौद्ध धर्म में इसका प्रयोग बुद्ध की शिक्षाओं की अजेयता के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। तिब्बती बौद्ध धर्म में शंख को बुद्ध की वाणी के रूप में स्वीकार किया गया है।

श्रीवत्म :

श्रीवत्स को हिन्दू धर्म में श्री की प्यारी अर्थात् लक्ष्मी के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। स्वस्तिक चिह्न के सामानार्थी है, इसको बौद्ध धर्म में सौभाग्य चिह्न के रूप में उल्लेखित किया जाता है।

चक्र :

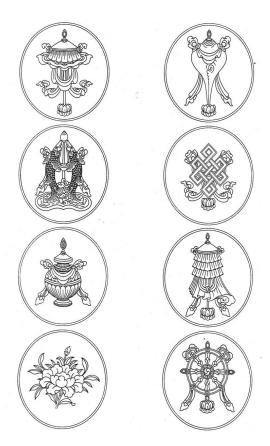
चक्र को काल का प्रतीक मानते हैं और यह मिन्धु सभ्यता से ही इसके माक्ष्य प्राप्त होते हैं। हिन्दू धर्म में विष्णु के हाथ में सुदर्शन चक्र का उल्लेख मिलता है। तिब्बती बौद्ध धर्म में चक्र को बुद्ध के प्रथम उपदेश के रूप में धर्म चक्रम परिवर्तन के रूप में उल्लेखित किया गया है। यह चक्र परिवर्तन, गति और अध्यात्मिक परिवर्तन को और बुद्ध की शिक्षाओं की निरन्तरता का प्रतीक है।

ध्वज:

इसे भारतीय संस्कृति में युद्ध में विजय के प्रतीक के रूप में दिखलाया जाता है। महाभारत युद्ध में अर्जुन के ध्वज पर हनुमान जी जबिक महात्मा भीष्म के ध्वज पर पीपल का पत्ता अंकित था।

तिब्बती बौद्ध में ध्वज को बुद्ध के कामदेव (मार) के ऊपर विजय के रूप में दिखलाया जाता है। अत: प्रारम्भिक तिब्बती भिक्षुओं ने मकरध्वज धारण किया था, जो बुद्ध के विजय का प्रतीक था।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि तिब्बती बौद्ध धर्म कला में जिन चिह्नों का प्रयोग किया गया है वह निश्चित ही रूप से भारतीय संस्कृति एवं कला तथा धर्म के प्रभाव को तिब्बत में दिखलाता है।



संदर्भ

- 1. Per, Robert (2003) - Tibiten Buddhist Symbol, Walnut Street पब्लिकेशन साक्य माला
- दास, शरदचन्द्र : इन साइक्लोपिडिया ऑफ तिब्बत, पृ. 226-240 2.
- Srivastava, P.S. Research Paper: Indian Culture in the land of snow प्रकाशित, बिहार, पुराविद् परिषद, 3. पटना, 1964
- मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति : बैजनाथपुरी, प्रकाशित सन् 1992 पाचवां संस्करण 4.
- श्रीवास्तव, ऋचा भारत-तिब्बत सम्बन्ध: कानपुर, 1992 पहला संस्करण, पृ. 32-56 5.
- तिब्बतीय अभिलेखागार अनुवादित ग्रन्थ पुस्तक : तिब्बत का संक्षिप्त इतिहास धर्मशाला, हिमांचल प्रदेश 6.
- दास, संजीव कुमार द आईज आफ लोचस्व, विश्व भारती, प्रकाशित सन् 2015, प्रथम संस्करण, विश्व 7. भारतीय संस्थान, भारत तिब्बत अध्ययन संस्थान
- Elliot, Charles Hinduisam & Buddhism, Vol.-2, 1964 8.

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की अवधारणा एवं यथार्थवादी/ नव यथार्थवादी सिद्धान्त का नव विश्लेषण

सलिल कुमार पाण्डेय*

वस्तुतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति विश्वकल्याण की पक्षधर हो और उसका पाठ्यक्रम में समावेश स्वरूप लोकतंत्र का परिचायक है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे तीन तत्व उभर कर आते हैं: राष्ट्र हित, विवाद और शक्ति। राष्ट्रहित अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का लक्ष्य है, विवाद उसकी प्रकृति है और शक्ति उसका साधन है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रत्येक राष्ट्र शक्ति के माध्यम से अपने राष्ट्रहित को सामने रखकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को चलाता है।

यथा प्रहलानाच्चन्द्र: प्रतापान्तपनो यथा। तथैव सोडभ्दन्वर्थो राजा प्रकृति रन्जनात्।।

रघ्वंश 4-12

कालिदास ने उक्त श्लोक में कहा है कि प्रजा का का रज्जन (कल्याण) करने के कारण ही 'राजा' शब्द की सार्थकता है जैसे सबको आनन्द देकर चन्द्रमा ने अपना नाम (चन्द्र) सार्थक किया और सबको तपाकर सूर्य ने अपना तपन नाम सार्थक किया वैसे ही रच्च ने भी प्रजा को प्रसन्न करके और उन्हें सुख देकर अपना 'राजा' यह नाम सार्थक किया। राजनीति का मूलस्वर भी यही है प्रजा का जनता का कल्याण। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रमुख लक्ष्य है विश्व स्तर पर अपने देश के सम्बन्धों को बढ़ावा देना तािक हमारा देश विश्व के करीब आये और हम विश्व मंच पर अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज करा सकें। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति विश्व के उन देशों की मदद करने की पक्षधर होती है जहाँ अशिक्षा, गरीबी भुखमरी, शोषण तथा आतंकवाद जैसी कुप्रवृत्तियां व्याप्त है। भारत सदैव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्तर पर विश्व को एक परिवार मानता है-

अयं निज: परोवेति इति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु बसुधैव कुटुम्बकम् ।।

पंचतंत्र 5-38

^{*}प्रबन्ध सम्पादक, चेतनता शोध पत्रिका, पूर्व सदस्य-अखिल भारतीय राजनीति विज्ञान परिषद्, ग्राम-भिलोग्न, पोस्ट-नौसड्, जिला-गोरखपुर, उ.प्र.

यह अपना है, यह दूसरे का है, यह सोचना ही संकुचित विचार है क्योंकि उदारमना व्यक्तियों के लिए सारा संसार एक परिवार है। उक्त श्लोक भारतीय संसद के केन्द्रीय कक्ष के द्वार पर ऊपर अंकित है। भारतीय संसद से ही भारत की राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय का संचालन होता है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विश्व बन्धत्व का सदैव से प्रबल पक्षधर है। महात्मा गांधी का कथन है कि 'मेरा लक्ष्य संसार से मैत्री है और मैं अन्याय का प्रबलतम विरोध करते हुए भी दुनिया को अधिक से अधिक स्नेह दे सकता हूँ।' (वक्तव्य 7 मार्च 1920)। विश्व कवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सुक्ष्म तन्तुओं की विवेचना करते हुए लिखते हैं कि प्रत्येक घर में मेरा घर हैं, मैं उसी घर की खोज कर रहा हूँ। प्रत्येक देश मेरा देश है, मैं उसी देश की प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहा हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति समग्र मानवता के विकास का पक्षधर है। डॉ. राधाकष्णन की मान्यता है कि 'जो लोग धर्म, जाति, राष्ट्र या राजपद्धति के नाम पर अपने आपको शेष संसार से पृथक कर लेते हैं वे मानव विकास में सहायता नहीं देते, अपित उसमें बाधा डाल रहे होते है। (धर्म और समाज पु. 20)

अन्तर्राष्ट्रीय विवाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मूल स्नोत है। राष्ट्रों के हित परस्पर विरोधी होते हैं तब तक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के आचरण पर अधिक से अधिक नियंत्रण रखकर राष्ट्रहित साधने का प्रयत्न करता है। यह राष्ट्रहित विदेश नीति के माध्यम से साधा जाता है। इसलिये फैलिक्स ग्रॉस (Felicks Grass) और रसल फिफिल्ड (Russell Fifield) सरीखे विद्वानों का मत है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अध्ययन वास्तव में विदेश नीतियों के अध्ययन के अतिरिक्त कुछ नहीं है (The study of international politics is identical to the study of foreign policy) यदि इनका मत माना जाये तो विभिन्न देशों की विदेश नीतियों को समझे बिना अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को समझना असम्भव है। यद्यपि विदेश नीति का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पक्ष तो अवश्य है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और विदेश नीति का एक-दूसरे का पर्याय नहीं माना जा सकता।

कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक नवागत विषय है, जो परिपक्वता की ओर अग्रसर है, अभी इनमें समान सामंजस्य की कमी है। तब भी विभिन्न विद्वानों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र के विषय में कई बातों में एकरूपता पायी जाती है। बोकर ने लिख है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत (1) इसके स्वरूप तथा प्रमुख प्रभावी तत्वों का अध्ययन, (2) अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संगठनों का अध्ययन, (3) राष्ट्रीय शक्ति के तत्वों का अध्ययन तथा उसकी सीमाओं का ज्ञान, (4) राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि के साधन, (5) छोटे बडे राष्ट्रों का विदेश नीतियों का अध्ययन तथा (6) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का ज्ञान ताकि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का अध्ययन हो सके। क्विन्सी राईट ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत (1) विश्व में तनाव की दशा (2) राज्यों की पारस्परिक निर्भरता (3) कानून और मुल्य तथा जीवन के आदर्श बताये हैं। मार्गेथ्यू ने कहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति प्रत्येक राजनीति की भांति शक्ति-संघर्ष है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अन्तिम लक्ष्य चाहे कुछ भी हो परन्तु तात्कालिक लक्ष्य शक्ति ही होता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हम इस बात की जानकारी प्राप्त करते हैं कि राष्ट्रों की शक्ति की रचना में किन तत्वों का योग है।

अन्तर्राष्ट्रीय संगठन और संस्थाएँ भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन का मुख्य विषय है। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के महत्व को बढ़ाने में बड़ा योगदान दिया है। साथ ही आर्थिक, सैनिक, राजनीतिक, प्रादेशिक और सांस्कृतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति निरन्तर युद्ध एंव शान्ति की समस्याओं का अध्ययन करती है बदले हुए युग में जबिक राष्ट्रों के बीच संघर्ष के अर्थ है आणिवक युद्ध, इन प्रश्नों का महत्व बहुत बढ़ गया है। आमने-सामने का युद्ध इतना भयानक और महँगा है और उसके परिणाम समस्त विश्व के लिए इतने विनाशकारी है कि उसको जहाँ तक होता है सभी राष्ट्र टालने की कोशिश करते हैं। आर्थिक प्रतिबन्धों के द्वारा राष्ट्र एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध लड़ सकते हैं। स्मरणीय है कि जैसा पहले उल्लेख किया गया है अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन में विभिन्न देशों की विदेश नीतियों का अध्ययन सबसे महत्वपूर्ण है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत हम उन तत्वों को भी जानता चाहते है जिनसे किसी विशिष्ट देश की विदेश नीति बनी हुई है। ऐसी विदेश नीति के दो जाने पहचाने तत्व तो समझ ही लेने चाहिए। (1) राष्ट्रीय हित और (2) राष्ट्रीय शक्ति। सरकारें अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार विदेश नीति के माध्यम से अपने राष्ट्रीय हितों को बढ़ाती रहती हैं। साथ ही वे यह भी ख्याल रखती हैं कि उनकी राष्ट्रीय शक्ति कितनी है। देखने में यह भी आता है कि सरकारें बदल जाने पर भी राष्ट्रों की विदेश नीति में कोई फर्क नहीं आता। उसमें सामान्यत: निरन्तरता बनी रहती है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हम अन्तर्राष्ट्रीय कानून का भी अध्ययन करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय कानून शान्ति और युद्ध दोनों के सम्बन्ध में होता है। राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का बहुत महत्व है। वास्तव में आज हम युद्ध के मुहाने पर खड़े दिखायी दे रहे हैं। अणु शिक्त ने मानव प्रगति की जो सम्भावनाएं प्रस्तुत की हैं वे पहले कभी नहीं थी। परन्तु देखने की बात यह है कि उसने सारे संमार को विनाश के कगार पर लाकर छोड़ दिया है। सम्पूर्ण मानवता के अस्तित्व एवं भविष्य पर ही प्रश्न चिह्न लग गया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में निरन्तर इस बात का अध्ययन हो रहा है कि वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति/अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का वास्तविक महत्व तब है, जिसमें मानवता स्वयं को सुरक्षित महसूस कर सके जिससे भावी पीढ़ियाँ इस विषय का महत्वपूर्ण ढंगा से अध्ययन कर सके।

सम्यक् अध्ययन के परिणामस्वरूप हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सिद्धान्त को यथार्थवादी

सिद्धान्त एवं नव यथार्थवादी सिद्धान्त के रूप में प्रयोग करके अध्ययन करते हैं। इसका जन्म 18वी शताब्दी में हुआ था। आदर्शवाद के प्रतिनिधि विद्वान हरबर्ट, बटरफील्ड, ई.एच. कार, रीनहोल्ड निब्र तथा कॉन्डोर्स हैं यह नैतिक मुल्यों का समर्थन करते हैं। यह एक ऐसी विश्व व्यवस्था का समर्थन करता है जिसमें युद्ध, दण्डनीति तथा अत्याचार के लिए कोई स्थान न हो। आदर्शवादी विचारधारा के समर्थकों में आधुनिक समय में बड्रेन्ड रसेल (Berdrand Russell) का नाम उल्लेखनीय है। रसेल ने विश्व में अशान्ति और युद्ध के कारणों में मानव के संग्रहात्मक मनोवेगों को उत्तरदायी माना है। रसेल के शब्दों में वर्तमान अशान्तमयी और सन्तोषजनक राजनीतिक स्थिति को सुधारों के लिए हमें अपने राजनीतिक आदर्श में परिवर्तन करना होगा। रसेल ने असन्तोष की राजनीति को सुधारने के लिए विस्तृत विवरण लिखा है। उनका मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए नि:शस्त्रीकरण आवश्यक हैं ऐसा होने पर ही विश्व सरकार की कल्पना की जा सकती है। 1919 से 1934 तक संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन आदर्शवाद के सबसे बड़े प्रवक्ता रहे। वे विश्व शान्ति के लिए 14 सूत्रों के नाम से जाने जाते हैं और उनकी ही कल्पना के आधार पर राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई।

आदर्शवादी विचारधारा का वर्णन करते हुए कोलोम्बिस तथा वुल्फ ने लिखा है कि ''आदर्शवादियों के लिए राजनीति एक अच्छी सरकार की कला है न कि सम्भावित सरकार की कला। एक अच्छा राजनीतिक व्यक्ति वह नहीं करता है जो सम्भव होता है बल्कि वह करता है जो अच्छा है। आदर्शवाद का सारा पक्ष समाज में विकासात्मक प्रगति होने के विचार पर आधारित है। यह विचार 18वीं शताब्दी में सामने आया था। इतिहासकारों की यह मान्यता रही है कि अमरीकी और फ्रांसीसी क्रान्तियों की प्रेरणा आदर्शवाद ही था। कान्डरसेट (Condorcet) ने 1795 ई. में एक ग्रन्थ लिखकर एक ऐसी विश्व व्यवस्था की कल्पना प्रस्तुत की जिसमें न युद्ध के लिए कोई स्थान है, न विषमता के लिए, न अत्याचार के लिए। वहाँ एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समाज का एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करता है जो शक्ति की राजनीति (power politics) अनैतिकता (immorality) और हिंसा (violence) से मुक्त हो। आदर्शवादी दृष्टिकोण इस बात का समर्थक है कि शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की सहायता से संसार को शान्तिमय रखा जा सकता है उसे और अधिक अच्छा बनाया जा सकता है।

नव यथार्थवाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विश्व की व्याख्या एवं वर्णन के विषय में खोज करता है। यह विश्व कैसा होना चाहिए इसके अतिरिक्त इस बात पर बल देता है कि जिस रूप में भी यह विश्व है उसका अध्ययन वैसा ही किया जाये। नव यथार्थवादियों के अनुसार उन्हें यह विश्व खतरनाक एंव असुरक्षित स्थान लगता है जहाँ हिंसा खेदजनक है लेकिन अनिवार्य भी है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की इस संघर्षपूर्ण प्रकृति में नव यथार्थवादी राष्ट्र राज्यों के केन्द्रीयता को बहुत ज्यादा प्राथमिकता प्रदान करते हैं तथा उसे विश्व में सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता के रूप में देखते हैं। राष्ट्र राज्यों के हिंसात्मक व्यवहार का वर्णन करते हुए वे शक्ति की भूमिका पर बल देते हैं तथा अधिक शक्तिशाली होने की प्रवृति (जैसे कि महाशक्तियाँ) के महत्व पर बल देते हैं। नव यथार्थवाद की बुनियादी मान्यता यह है कि राष्ट्रों के बीच विरोध एवं संघर्ष किसी न किसी रूप में बने रहते हैं। नव यथार्थवादी इन विरोधों और संघर्षों को कोई आकस्मिक घटना नहीं मानते। उनका मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति या प्रभाव के लिए निरन्तर प्रयत्न होते रहते हैं और कोई अन्तर्राष्ट्रीय कानून इसे नियन्त्रित नहीं कर सकता। नीति निर्धारकों का मुख्य कार्य ऐसी विदेश नीति बनाना है जिससे शक्ति की होड में वे बराबर आगे बने रहें।

नव यथार्थवादी विचारधारा 18वीं 19वीं शताब्दी में प्रचलित थी। 19 वीं शताब्दी में नीत्शे और ट्रीट्श्के ने इस विचारधारा का प्रचार प्रसार किया। एरिक कॉफमैन, फ्रेडिरिक वाल्किन्स, हैराल्ड लासवैल, डेविड ईस्टन आदि राजनीतिक विचारकों ने राजनीति के अध्ययन में नव यथार्थवाद विचारधारा के विभिन्न पहलुओं पर जोर दिया। नव यथार्थवाद विचारधारा द्वितीय विश्वयुद्ध के काल में पुन: प्रतिष्ठित की गयी। येल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर निकोलस जे. म्पाइक मैन ने 1942 ई. से पूर्व ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन में नव यथार्थवादी दृष्टिकोण पर विशेष बल दिया। सन् 1945 के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति विचारकों जैसे जार्ज खाजनबर्गर क्विन्सी राइट, मार्गेन्थो, ई.एच. कार आदि ने राजनीतिक यथार्थवाद को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में लागू करने का प्रयास किया। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में नव यथार्थवादी विचारधारा को स्थापित करने में मार्गेन्थों को महत्वपूर्ण स्थान है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में यथार्थवाद और नव यथार्थवाद में जिन बातों का विरोध है उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण शिक्त की समस्या है। बीसवीं सदी में प्रथम विश्व युद्ध के बाद नव यथार्थवाद के नायक वुडरो विलसन (Woodra Wilson) बने। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के बीच के काल में यथार्थवाद और आदर्शवाद के बीच विवाद खुलकर सामने आया। यह धारणा जोर पकड़ती गयी कि नव यथार्थवाद पर बनी नीतियाँ राष्ट्रवादी और आदर्शवाद पर बनी नीतियाँ आदर्शवादी होती है। यहाँ तक माना जाने लगा कि यथार्थवादियों की नीतियां शान्ति विरोधी हैं और दुनियां में शान्ति का पक्ष प्रबल करने के लिए आदर्शवाद पर चलना जरूरी है। यथार्थवादियों के आदर्श का समर्थन वैज्ञानिक चिन्तन के आधार पर किया जा सकता है और आदर्शवादियों के नैतिकता के आदर्श का आधार दार्शनिक हो सकता है। स्पष्ट है दार्शनिक आधार पर शिक्त को एक आदर्श नहीं ठहराया जा सकता। नव यथार्थवाद का दार्शनिक आधार पुष्ट है जबिक यथार्थवाद के साथ ऐसा नहीं है।

साराशंत: हम कह सकते हैं कि दुनिया छोटी हो जाने से राष्ट्रों में पारस्परिक सहयोग का क्षेत्र बढ़ गया है और युद्ध के परिवर्तित स्वरूप ने शान्ति की आवश्यकता का अहसास सभी राष्ट्रों को करा दिया है। शान्ति की ओर राष्ट्रों का जो रूख बदला है उसे नव यथार्थवाद की ही एक उपलब्धि माना जायेगा। यद्यपि यह जादू है प्रौद्योगिक विकास का। अब यथार्थवादियों को भी यह महसूस हो रहा है कि युद्ध की सर्वनाशी शक्ति को देखते हुए न तो शक्ति संचय के प्रयास को अपनी पराकाष्ट्रा तक ले जाया जा सकता है और न अन्तर्राष्ट्रीय लोकमत उसका समर्थन कर सकता है। परमाणु शक्ति के आविष्कार से यह बात अब संदिग्ध हो गई है कि नैतिक मुल्यों की बलि देकर और युद्ध के लिए पूरी तरह अपनी शक्ति पर निर्भर होकर भी कोई राष्ट्र अपनी सुरक्षा के बारे में निश्चित नहीं हो सकता क्योंकि विश्व में होने वाला कोई भी युद्ध केवल एक राष्ट्र के लिए नहीं अपित सारी दुनिया के लिए घातक सिद्ध हो सकता है कि नव यथार्थवाद और यथार्थवाद का मतभेद भिवष्य में उतना गम्भीर नहीं रहेगा जितना सदा से हो रहा है वास्तव मे यथार्थवाद और नव यथार्थवाद में अधिकांशत: समानता है और ये विधायें राजनीति विज्ञान को समृद्ध कर रही हैं।

संदर्भ -

- फडिया, डा. बी.एल. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध 1.
- शर्मा, डॉ. प्रभुदत्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (सिद्धान्त एवं व्यवहार) 2.
- पंत, डा. पृष्पेश, जैन, श्रीपाल पचौला, डा. राखी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति 3.
- समाचार पत्र/पत्रिकायें

भारत की कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया नीति

ब्रजेश कुमार मिश्र*

संक्षिप्तिका : राप्ट्रीय हित का संवर्धन विदेश नीति का लक्ष्य है। भारतीय विदेश नीति भी इससे अछ्ती नहीं है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में विकास विदेश नीति का प्रमुख एजेंडा है। आगामी वर्षों में विकास के लिए पर्याप्त ऊर्जा की आवश्यकता पड़ेगी। अत: अभी से इसके विकल्पों की खोज आवश्यक है। संयोगवश मध्य एशिया में ये विकल्प मौजूद हैं। वहाँ पर चल रहे 'ग्रेट गेम' के बड़े खिलाड़ियों के मध्य भारत अपनी उपस्थिति पहले से दर्ज करना चाहता था किन्तु पिछले दशक तक यह पूरी तरह से सम्भव नहीं हो सका था। भारत की 'कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया पालिसी' इसी का परिणाम है। मध्य एशिया भारत के लिए क्यों महत्वपूर्ण है, और वहाँ पर भारत की भावी योजनाएँ क्या हैं, इसकी पड़ताल प्रस्तुत शोध पत्र में की गयी है।

कंजी शब्द- भारत, विदेश नीति. मध्य एशिया, ग्रेट गेम

1990 के दशक के आरम्भिक वर्षों में वैश्विक स्तर पर हुए 'भू-राजनीतिक', 'भू-आर्थिक' और 'भू-सामिरक' परिवर्तनों ने वैश्विक शिक्त संरचना को परिवर्तित कर दिया। ऐसी परिम्थिति में भारतीय विदेश नीति के नियन्ताओं के लिए एक कड़ी चुनौती थी कि वे विदेश नीति को किस प्रकार से व्यवस्थित करें। तत्कालीन चुनौतियों को देखते हुए आर्थिक नीतियों को वरीयता दी गयी। इसका उदाहरण 'पूरव की ओर देखो नीति' (Look East Policy) है। इस नीति ने दशकों पूर्व बनाई गयी 'द्विपक्षीय आर्थिक सम्बन्धों' की लीक से हटकर नये प्रकार के क्षेत्र और केन्द्र को चुना। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि भारत अगले कुछ वर्षों में ही संस्थापक गठजोड़ (ब्रिक्स, इब्सा आदि) तथा क्षेत्रीय संगठनों (सार्क, आशियन, यूरोपीय संघ, विम्सटेक और शंघाई सहयोग संगठन इत्यादि) से जुड़ गया।

W.T.C. के बाद की परिस्थितियों ने एक बार पुन: वैश्विक शिक्त संरचना को प्रभावित किया। बदलती वैश्विक शिक्त संरचना, बढ़ती जनसंख्या, आतंकवाद के उभरते नये स्वरूप, विकास की चुनौती और बढ़ती ऊर्जा की माँग ने भारतीय विदेश नीति के विश्लेषकों को नये सिरे से सोचने पर विवश किया। पिछले एक दशक में जिस प्रकार से ऊर्जा की मांग बढ़ी है उसे देखते हुए संप्रग-1

^{*}असिस्टेण्ट प्रोफसर, राजनीति विज्ञान विभाग, अखिलभाग्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानापार, गोरखपुर

के कार्यकाल में ही भारत ने अमेरिका से परमाणु समझौता किया। इस समझौते को '123 समझौता' के नाम से भी जाना जाता है। यद्यपि यह समझौता यथार्थ के धरातल पर अब तक नहीं उतर सका है तथापि इस समझौते में सम्भावनाएँ बहुत हैं। इसके पूर्व तक भारत अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु परम्परागत ऊर्जा स्रोत पर निर्भर रहा है। वर्तमान समय में नीति-नियन्ताओं ने वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों पर ध्यान केन्द्रित किया है। अब तक अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत की निर्भरता पश्चिम एशिया अथवा मध्यपूर्व पर थी। सामयिक स्थितियों के संदर्भ में भारत ने ऊर्जा के नये केन्द्रों की तरफ ध्यान देना आरम्भ किया और फलत: मध्य एशिया की तरफ उन्मुख हुआ।

मध्य एशिया का महत्व :

पिछले एक दशक में आंशिक व्यापार के बावजूद मध्य एशिया का भारत के लिए अत्यन्त महत्व है। अफगानिस्तान से इसकी निकटता, चीन का बढता हस्तक्षेप और ऊर्जा की अपार सम्भावनाओं के कारण भी इस क्षेत्र की विशिष्ट पहचान है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है, इसकी 'भू-रणनीतिक स्थिति'। मध्य एशिया यूरेशिया के मध्य में अवस्थित एक ऐसा चौराहा है, जो कई सभ्यताओं को एक साथ जोडता है। इस क्षेत्र को लेकर कई तरह की संकल्पनाओं को विकसित किया गया। इसमें 'ग्रेटर सेन्ट्रल एशिया' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसका प्रयोग मध्य एशियाई देशों (उजबेकिस्तान, कजाकिस्तान, तजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और किर्गिस्तान), अफगानिस्तान और चीन के टर्किक झिनझियांग क्षेत्र के लिए किया जाता है। इसके विस्तारित क्षेत्र में पाकिस्तान के उत्तर हिस्से, ईरान का खोरसान क्षेत्र और रूस के टारसन परिक्षेत्र और यहाँ तक कि इसमें उत्तरी भारत को भी सम्मिलित करने की बात की जाती है।³

भौगोलिक कारकों के विस्तृत प्रभाव ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इस क्षेत्र को भू-राजनीतिक, भ-आर्थिक और भ-रणनीतिक तरीके से विश्व का अखाडा बना दिया है। इस क्षेत्र के क्रुड ऑयल, प्राकृतिक गैस, सोना, कॉपर, यूरेनियम, एल्यूमीनियम और ऑयरन ने विश्व की बडी शक्तियों को अपनी ओर आकर्षित किया। मध्य एशिया के भू-रणनीतिक विशिष्टता को दो कारकों से पहचाना जा सकता है- (1) हाइडोकार्बन भण्डार के कारण और (2) तेल पाइपलाइन और मल्टीमॉडल संचार कारीडोर का प्रमुख परिवहन हब होने के कारण, जो चीन, रुस, यूरोप, कॉकेशियस क्षेत्र, ट्रांस कैस्पियन क्षेत्र और हिन्द-महासागर को जोड़ता है। आज मध्य एशिया में अमेरिका, रूस, चीन और युरोपीय संघ जैसे प्रमुख वैश्विक खिलाडी मौजुद हैं जिनके मध्य 'ग्रेट गेम' चल रहा है। यहाँ पर प्रमुख खिलाड़ियों की उपस्थिति के पीछे वर्ष 1904 में हालफोर्ड मैकिंडर द्वारा दिया गया 'हर्टलैण्ड सिद्धान्त' भी एक कारक है। इस सिद्धान्त में मैकिंडर ने रूस और मध्य एशिया को यूरेशिया का पीवट या हर्टलैण्ड बताते हुए यह कहा, "यह भाग वैश्विक शक्ति सन्तुलन की कुंजी है। जो राज्य हर्टलैण्ड पर शासन करेगा वह वर्ल्ड आइलैण्ड को नियंत्रित करेगा। जो वर्ल्ड आइलैण्ड पर राज करेगा, वह विश्व पर राज करेगा।'' ऐसा प्रतीत होता है कि सम्प्रित मध्य एशिया की प्रचुर ऊर्जा की उपलब्धता ने इस क्षेत्र को बड़ी शक्तियों के साथ ही भारत, ईरान और तुर्की जैसी शक्तियों को भी अपनी ओर आकर्षित किया है।

इस प्रकार मध्य एशिया की भौगोलिक स्थिति उसे आर्थिक और सामरिक दृष्टि मे महत्वपूर्ण बनाती है।

कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया नीति :

भारत का मध्य एशिया से जुड़ाव वैदिक काल से ही रहा है। सम्बन्धों का यह क्रम अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के बाद टूट गया। स्वतंत्रता के बाद भारत का प्रभाव मध्य एशिया में लगभग समाप्त हो गया। शीत युद्ध की समाप्ति ने कैस्पियन सागरीय क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति को बदल दिया। फलतः सोवियत रुस से अलग होकर मध्य एशिया के पाँच देशों का अभ्युदय हुआ। इसके तत्काल बाद भारत उन प्रथम पंक्ति के देशों में सम्मिलित हो गया, जिन्होंने मध्य एशियाई देशों को मान्यता दी। 26 नवम्बर 1991 को भारत ने अपने कूटनीतिक सम्बन्ध इन देशों से स्थापित कर लिये। इसके बाद के वर्षों में भारत और मध्य एशियाई देशों के बीच राजनीतिक, कूटनीतिक, आर्थिक और व्यक्ति से व्यक्ति के मध्य सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आयी। 1997 में भारतीय प्रधानमंत्री इन्दर कुमार गुजराल ने क्षेत्रीय आर्थिक विकास का खाका खींचा था। इसमें एशिया को भी सम्मिलित किया गया। जिसे उन्होंने हमारा नजदीकी विदेश कहा था। मध्य एशिया में भारतीय सम्भावनाओं के संदर्भ में भारत के पूर्व राजदूत राजीव सीकरी ने निम्नांकित बिन्दुओं पर प्रकाश डाला था–

- मध्य एशिया में स्थिर और धर्मनिरपेक्ष शासन को प्रोत्साहित करना होगा।
- यह सुनिश्चित करना कि इस क्षेत्र में उत्पन्न अस्थिरता कहीं 'डोमिनोइफेक्ट' की ओर न चली जाए।
- मध्य एशिया की स्थिति का झिनझियांग प्रान्त पर सिम्मिलित प्रभाव पड़ सकता है। यह भारतीय हितों के लिए घातक हो सकता है।
- अन्य बड़ी शक्तियों के साथ मध्य एशिया में अपनी स्थिति को और मजबूत करना होगा ताकि भारतीय हितों की पूर्ति हो सके।
- > यहाँ कि प्राकृतिक सम्पदा तक अपनी पहुँच बनानी होगी।
- सम्भव हो सके तो कुछ विशिष्ट रक्षा प्रौद्योगिकी और रक्षा सुविधाओं को हासिल करना होगा।

इक्कसवीं शताब्दी के पहले दशक में भारत ने यद्यपि अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप

कितपय समझौते किये किन्तु इसका कोई सार्थक परिणाम नहीं निकला। 2008 के पूर्व तक भारत कैस्पियन बेसिन में प्रवेश करने में असफल रहा। 2005 में भारतीय कम्पनी 'ओ.एन.जी.सी. विदेश' का कजािकस्तान से एक समझौता हुआ किन्तु चीनी हस्तक्षेप के कारण यह समझौता मूर्त रूप नहीं ले सका। इसी तरह ओ.एन.जी.सी. मित्तल एनर्जी ने तुर्कमेनिस्तान में कैस्पियन बेसिन में दो स्थानों पर 30 प्रतिशत शेयर प्राप्त कर लिया था किन्तु भारी विफलता के चलते उसे ये शेयर बेचने पड़े। इससे स्पष्ट होता है कि भारत 2010 तक मध्य एशिया में प्रमुख खिलाड़ी बनने में सफल नहीं हो सका। अब तक यह क्षेत्र बड़े खिलाड़ियों (चीन, रूस और अमेरिका) के लिए प्रतिस्पर्धात्मक बन चुका था। यहाँ के बदले राजनीतिक, रणनीतिक और आर्थिक परिदृश्य ने भारत को पुन: अपने सम्बन्धों को दूढ़ता से स्थापित करने के निमित्त आकर्षित किया तािक यहाँ पर भारत अपनी रचनात्मक भूमिका का निर्वहन कर सके।

वर्ष 2012 में मध्य एशिया से भारत ने अपने सम्बन्धों को आत्मीय बनाने के उद्देश्य से एक नई नीति को आरम्भ किया। 'इण्डियन काउन्सिल फॉर वर्ल्ड अफेयर' और 'वर्ल्ड डिप्लोमेटिक अकादमी' के संयुक्त तत्वावधान में 12-13 जून, 2012 को बिश्केक में प्रथम 'भारत-मध्य एशिया संवाद' का आयोजन किया गया। इसका निहितार्थ प्रतिवर्ष दोनों तरफ के उद्योगपितयों, शोधार्थियों, अकादिमिक कार्यों से जुड़े लोगों तथा शासकीय स्तर के अधिकारियों के मध्य संवाद स्थापित करना था। 12 जून को भारत के तत्कालीन विदेश राज्यमंत्री ई. अहमद ने इसे 'कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया' नीति की शुरूआत माना। यह नीति ठीक उसी तरह आरम्भ की गयी जिम तरह पी.वी. नरिसंह राव ने आशियान देशों के साथ 'लुक ईस्ट नीति' आरम्भ की थी। यह नीति उस समय शुरू की जा रही थी जब मध्य एशिया में अपार सम्भावनाओं के बावजूद नई दिल्ली की तरफ से बड़े प्रयास नहीं किये गये थे। अन्तत: भारत ने मध्य एशिया की सामिरक स्थिति का संज्ञान लिया और इसी आधार पर उससे जुड़ना लाभप्रद समझा।

कनेक्ट सेन्टल एशिया नीति की घोषणा करते हुए ई. अहमद ने कहा कि यह नीति इस क्षेत्र से राजनीतिक, आर्थिक और व्यक्ति से व्यक्ति के सम्पर्क पर केन्द्रित जुड़ाव पर आधारित है। इसमें व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही स्तरों को सिम्मिलित करना होगा। इसी दौरान 12 सूत्रीय फार्मूला भी दिया गया जो उच्च स्तरीय यात्राओं के माध्यम से मध्य एशिया के साथ भारत के राजनीतिक, सामरिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों पर आधारित था। ई. अहमद ने प्रथम 'भारत-मध्य एशिया संवाद' के उद्घाटन के उपलक्ष्य में बोलते हुए इन 12 सूत्रों का उल्लेख किया, जो इस प्रकार हैं-9

1- उच्च स्तरीय यात्राओं के आदान-प्रदान के माध्यम से राजनीतिक सम्बन्धों को बढ़ावा दिया जाना जारी रहेगा। नेतागण द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय मंचों पर घनिष्ट कार्यकलाप करना जारी रखेंगे।

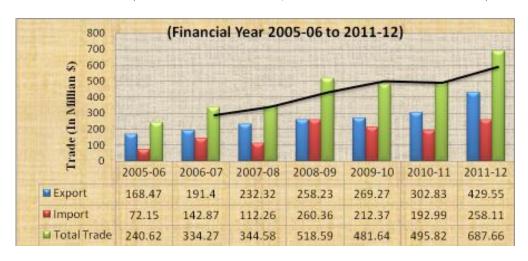
- 2- हम अपने रणनीतिक एवं सुरक्षा सहयोग को सुदृढ़ बनायेंगे। सैन्य प्रशिक्षण, संयुक्त अनुसंधान और आतंकवाद के मुद्दे पर एक साथ काम करेंगे। साथ ही अफगानिस्तान से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने पर बल देंगे।
- 3- शंघाई सहयोग संगठन, यूरेशियाई समुदाय तथा सीमा-शुल्क संघ जैसे विद्यमान मंचों के मध्यम से संयुक्त प्रयासों की सहक्रिया का उपयोग करते हुए अपने मध्य एशियाई भागीदारों के साथ किये जाने वाले बहुपक्षीय कार्यकलापों में गति लायेंगे।
- 4- भारत ऊर्जा एवं प्राकृतिक संसाधनों के संदर्भ में मध्य एशिया को एक दीर्घकालिक भागीदार के रूप में देखता है। मध्य एशिया में कृषि योग्य विशाल भू-खण्ड हैं। अतएव मूल्य संवर्द्धन के साथ लाभ योग्य फसलों के उत्पादन में अपार सम्भावनाएँ हैं।
- 5- चिकित्सा क्षेत्र में भी अपार सम्भावनाएँ हैं। इस क्षेत्र में हम नागरिक अस्पतालों की स्थापना करके सहयोग के लिए तैयार हैं।
- 6- पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में विश्वविद्यालयी शिक्षा सस्ती है। इसे ध्यान में रखते हुए भारत विश्केक में एक मध्य एशियाई विश्वविद्यालय की स्थापना में भी सहायता प्रदान करेगा। सूचना प्रौद्योगिकी, प्रबन्धन, दर्शनशास्त्र और भाषा जैसी विधाओं में यह विश्वविद्यालय विश्वस्तरीय शिक्षा प्रदान करने का एक उत्कृष्ट केन्द्र हो सकता है।
- 7- भारत मध्य एशिया के देशों को दृष्टिगत रखते हुए दूरस्थ शिक्षा और दूरस्थ चिकित्सा के लिए ई. नेटवर्क की स्थापना करेगा जिसका केन्द्र भारत होगा।
- 8- मध्य एशियाई देशों विशेषत: कजाक गणराज्य में लौह अयस्क, कोयला का असीमित भण्डार है। यहाँ सस्ती दरों पर बिजली भी उपलब्ध है। यहाँ भारतीय कम्पनियाँ मझले स्तर के रॉलिंग मिलों की स्थापना करके सहायता दे सकती हैं।
- 9- जमीनी सम्पर्क को बनाने के लिए उत्तर-दक्षिण परिवहन गलियारे को सक्रिय बनाने पर विचार किया जाना चाहिए।
- 10- इस क्षेत्र में व्यवहारिक बैंकिंग अवसंरचना का अभाव है। यदि उपयुक्त नीतिगत परिवेश उपलब्ध होता है तो भारतीय बैंक इस क्षेत्र में विशेष भूमिका निभा सकते हैं।
- 11- हवाई सम्पर्क को सुधारने के क्रम में प्रयास किया जायेगा। साथ ही पर्यटन और फिल्म उद्योग के क्षेत्र में अपार सम्भावनाएं हैं।
- 12- गहन कार्यकलाप को बनाये रखने के उद्देश्य से व्यक्ति से व्यक्ति को जोड़ना महत्वपूर्ण है। इससे सांस्कृतिक रिश्ते मजबृत होंगे।

इस प्रकार ई. अहमद ने अपने व्याख्यान के दौरान जिन 12 सूत्रीय योजनाओं का उल्लेख किया, उससे यह स्पष्ट होता है कि भारत की 'कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया नीति' वस्तुतः एक अति विस्तृत अवधारणा है। यह भारत और मध्य एशिया को राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सम्पर्कों के माध्यम से जोड़ती है।

मध्य एशिया के प्रचर ऊर्जा स्रोतों और उसकी राजनीतिक स्थिति को देखते हुए भारत के लिए यह उचित नीति थी। भारत और मध्य एशिया दोनों ही तरफ से इस क्षेत्र में प्रयास किये गये। दोनों तरफ से सरकारी यात्रायें आरम्भ हुईं। भारत के नागर विमानन मंत्रालय ने मध्य एशिया के प्रत्येक देश के साथ एक-एक उड़ान सहित प्रति सप्ताह 14 उड़ानों हेतु जुलाई 2012 में ही अनुमति प्रदान कर दी थी।10 इससे इस क्षेत्र के साथ भारत के हवाई सम्पर्क में वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त भारत ने यहाँ अपनी रणनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से तजाकिस्तान के साथ अपने सम्बन्धों को बेहतर करने का प्रयास किया। 17 और 18 जून 2013 को इस नीति को और आगे बढाने के निमित्त कजाकिस्तान के अलमाटी में द्वितीय भारत-मध्य एशिया वार्ता का आयोजन किया गया। इस वार्ता का उद्घाटन भी तत्कालीन विदेश राज्यमंत्री ई. अहमद ने ही किया। उन्होंने विगत एक वर्ष के कार्यों पर संतोष जताया, साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि भारत को इस क्षेत्र से जुड़ने में दो दशक लग गये। ई. अहमन ने अपने व्याख्यान के दौरान कहा कि अभी आर्थिक, सामरिक और अनुसंधान के क्षेत्र में सुधार करने की आवश्यकता है। जब पहली बार 'कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया' की घोषणा की गयी थी तो उसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि प्रत्येक वर्ष भारत मध्य एशिया वार्ता का आयोजन किया जायेगा। इसी क्रम में 18 अक्टूबर 2014 को तृतीय भारत-मध्य एशिया वार्ता का आयोजन किया गया।11 नि:संदेह 'कनेक्ट सेन्ट्ल एशिया नीति' भारत की एक महत्वाकांक्षी नीति रही है। इसे भारत के भौगोलिक अवस्थिति के संदर्भ में 'लुक नार्थ पॉलिसी' भी कहा जा सकता है। भारत पहले से ही मध्य एशिया को अपना दूरस्थ पड़ोस समझता रहा है किन्तु अब तक भारत की मध्य एशिया में स्थिति वैसी नहीं है जैसी होनी चाहिए। 'कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया नीति' आरम्भ होने के पूर्व तक भारत का मध्य एशिया से कुल व्यापार वित्तीय वर्ष 2011-12 में 687.66 मिलियन \$ था (रेखाचित्र संख्या-1) जबिक बाद के वर्षों में यह तेजी से बढ़ा है और यह वित्तीय वर्ष 2014-15 में दोगुना से अधिक होकर 1380.31 मिलियन \$ के स्तर पर पहुँच गया। अप्रैल 2015 से अगस्त 2015 तक यह 240 मिलियन \$ के स्तर पर था। (रेखाचित्र संख्या-2)। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि द्विपक्षीय व्यापार का बढना भारत के लिए महत्वपूर्ण है किन्तु यदि भारत के मध्य एशिया के व्यापार की तुलना चीन के मध्य एशिया के व्यापार से करें तो विदित होता कि वर्ष 2011 में चीन का व्यापार जहाँ 30 बिलियन \$ था 12 वहीं भारत का व्यापार 687.66मिलियन S का ही था। यह भारत और चीन के मध्य एशिया से होने वाले व्यापार के प्रत्यक्ष अन्तर को दिखलाता है।

रेखाचित्र संख्या-1

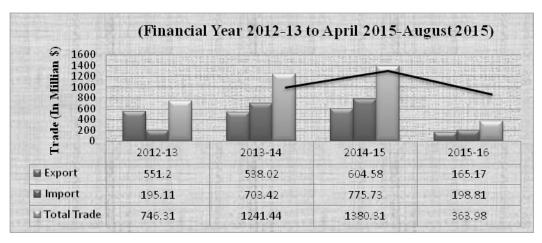
भारत का मध्य एशिया से द्विपक्षीय व्यापार (वित्तीय वर्ष 2005-06 से 2011-12)



स्रोत- वाणिज्य मंत्रलय, भारत सरकार

रेखाचित्र संख्या-२

भारत का मध्य एशिया से द्विपक्षीय व्यापार (वित्तीय वर्ष 2012-2013 से अप्रैल 2015- अगस्त 2015 तक)



स्रोत- वाणिज्य मंत्रलय, भारत सरकार

कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया का अन्तिम ध्येय आर्थिक और रणनीतिक है। चीन मध्य एशिया के बिल्कुल पड़ोस में स्थित है। यह कजाकिस्तान, किर्गिस्तान एवं तजाकिस्तान से सीमा साझा करता है। यह चीन के लिए इस क्षेत्र का प्रमुख खिलाड़ी बनाये रखने के लिए मजबूत आधार प्रदान करता हैं। रूस भी मध्य एशिया का पड़ोसी हैं। उसका प्रभाव तो इस क्षेत्र पर पहले से ही रहा है। इस क्षेत्र का एक प्रमुख खिलाड़ी अमेरिका भी हैं। रूस को अमेरिका से नहीं वरन् मध्य एशिया में चीन से खतर हैं। चीन का रूस क्षेत्र में 2012 में 250 बिलियन निवेश करने का लक्ष्य था। जिसे उसने प्राप्त कर लिया। चीन की बढ़ती गतिविधि रूस और भारत दोनों के लिए ही खतरनाक है। मध्य एशिया में भारत को तेल-क्षेत्र में कोई विशेष सफलता अब तक नहीं मिल सका है। अप्रैल 2014 में अस्ताना में ज्वाइन्ट बिकंग ग्रुप की बैठक में भारत की ओ.एन.जी.सी. विदेश को अवार्ड ब्लाक में 25 प्रतिशत हिस्सेदारी का प्रस्ताव दिया गया था किन्तु भारत ने यहाँ के ब्लाक में 2.8 अरब बैरल भण्डारण को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि यहाँ सम्भावित भण्डारण इससे काफी कम है। मध्य एशिया से भारत अगर अब तक नहीं जुड़ा सका है तो इसके पीछे तकनीकी और रणनीतिक बाधायें जिम्मेदार हैं।

2012 में आरम्भ की गयी इस नीति को वांछित सफलता तभी मिल सकती है जब निवेश के मुल क्षेत्रों की पहचान की जाए। साथ ही साफ्ट लोन और अन्य संस्थागत सहायता उपलब्ध करायी जाए। मध्य एशिया से व्यापार को बढावा देना ही अन्तिम लक्ष्य रखा जाए। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक एवं कूटनीतिक सम्बन्धों को भारतीय नीति-नियन्ताओं द्वारा ऊर्जा के अनुरुप ही प्राथमिकता दी जाए।¹⁴ मध्य एशिया से गैस पाइप लाइन के संदर्भ में कई तरह की समस्याएं हैं। तापी परियोजना और 'ईरान-पाकिस्तान-भारत' पाइपलाइन परियोजना के माध्यम से भारत अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को पुरा कर सकता है। किन्तु पाकिस्तान के कारण से परियोजनाएँ लम्बित हैं। पाकिस्तान अभी भी आतंकवाद को प्रश्रय दे रहा है। अगानिस्तान की स्थिति अब थोड़ी सुधरी है किन्तु जबतक पाकिस्तान इस क्षेत्र में सहयोग नहीं करेगा स्थित यथार्थोन्मुख नहीं हो सकेगी। इसमें ईरान के कारण भी कठिनाई थी किन्तू जुलाई 2015 से ईरान पर से प्रतिबन्ध हटाने की प्रक्रिया ने यह संकेत दिया है कि ये लिम्बत परियोजनाएँ मूर्त रूप ले सकती हैं। मध्य एशिया में शीतयुद्ध जैसी स्थितियाँ विद्यमान हैं जिसके पीछे चार कारक दिखलायी दे रहे हैं- (1) यूक्रेन संकट, (2) सीरिया संकट, (3) इराक की स्थिति और (4) अफगानिस्तान की स्थिति। ये स्थितियाँ भी इस क्षेत्र में भारतीय विदेश नीति को सतर्कता बरतने के लिए विवश करती हैं क्योंकि जब तक इन मुद्दों को दृष्टिगत रखते हुए अपनी विदेश नीति में परिवर्तन नहीं लाया जाता तब तक इस क्षेत्र में सुखद स्थिति को प्राप्त करना नितान्त कठिन है।

विगत कुछ महीनों में कितपय ऐसी घटनाएं घिठत हुई हैं जिनसे आभाषित होता है कि भारत की 'कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया नीति' अपने वांछित उद्देश्यों को प्राप्त कर लेगी। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की मध्य एशियाई गणराज्य की यात्रा। मोदी की विदेश नीति का सबसे विशिष्ट पहलू आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करना रहा है। पं. नेहरु के बाद नरेन्द्र मोदी पहले भारतीय प्रधानमंत्री हैं जिन्होंने मध्य एशियाई देशों का दौरा किया। यह यात्रा 6 जुलाई से 13 जुलाई 2015 के मध्य की गयी। इस यात्रा को तीन चरणों में बांटा जा सकता है- (1) रूस के उफा में सातवें ब्रिक्स सम्मेलन में भाग लिया (8-9 जुलाई), (2) शंघाई सहयोग संगठन की 15वीं बैठक में भाग लिया (9-10 जुलाई) और (3) मध्य एशियाई देशों का दौरा (उजबेकिस्तान 6-7 जुलाई), कर्जाकिस्तान (7-8 जुलाई0, तुर्कमेनिम्तान (10-11 जुलाई), किर्गिस्तान (11-12 जुलाई) और तजाकिस्तान (12-13 जुलाई)। इस यात्रा के दौरान भारत संघाई सहयोग संगठन का पूर्ण सदस्य बन गया। इस अवसर पर प्रधानमंत्री ने कहा कि यह सदस्यता यूरेशिया के विभिन्न क्षेत्रों से पुन: जुड़ने में हमारी सहायता करेगी। उन्होने आशा व्यक्त की कि अन्तर्राष्ट्रीय उत्तर दक्षिणी गिलयारा को विकसित करने में भी मदद मिलेगी।

मध्य एशियाई देशों की यात्रा आरम्भ होने के बाद मोदी ने किर्गिस्तान की राजधानी विश्केक में कहा था कि ''हम मध्य एशिया को भारत के भविष्य के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान के रूप में देख रहे हैं।''¹६ मोदी का यह वक्तव्य भारत के लिए मध्य एशिया के महत्व को दर्शाता है। मध्य एशिया की राजनीतिक जटिलताओं को दृष्टिगत रखते हुए मोदी की यह यात्रा विशिष्ट थी। आर्थिक क्षेत्र में यह यात्रा महत्वपूर्ण मानी जा सकती है। उजबेकिस्तान और कजािकस्तान से प्रतिवर्ष क्रमशः 2000 और 5000 मीट्रिक टन यूरेनियम को आयात करने का समझौता हुआ है। तुर्कमेनिस्तान से गैस तथा कजािकस्तान से तेल और गैस दोनों के व्यापार के संदर्भ में समझौता किया गया है। इसके अतिरिक्त आपसी व्यापार को और मजबूत करने, अन्तरिक्ष मिशन में कजािकस्तान को सहयोग देने तथा कजािकस्तान, उजबेकिस्तान और तजािकस्तान में अपनी पैठ को मजबूत करने सम्बन्धी समझौते किये गये।

प्रधानमंत्री मोदी की इस यात्रा ने 'कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया नीति' को बल प्रदान किया है। किन्तु अभी भी तेल के ब्लाकों को प्राप्त करने में भारत की असफलता इस बात का संकेत देती हैं कि कूटनीतिक स्तर पर कहीं न कहीं कमी है। इस कमी को दूर करना नितान्त आवश्यक है। भारत शंघाई सहयोग संगठन का पूर्ण सदस्य बन गया है। अत: मध्य एशिया से सम्बन्धों को सुदृढ़ करने में आसानी होगी। इसके लिए प्रयास करना होगा। वर्तमान समय में ईरान के साथ भारत के सम्बन्ध और प्रगाढ़ हुए हैं। ईरान ही वह माध्यम है जिसके जरिये अफगानिस्तान के रास्ते मध्य एशिया में पहुँचा जा सकता है। पश्चिम एशिया में बढ़ते आई.एस.आई.एस. के खतरे को ध्यान में रखते हुए भी अपनी भावी रणनीति तैयार करनी होगी। भारत को मध्य एशिया में द्विपक्षीय व्यापार बढ़ाने, तेल और गैस के ब्लाकों तक अपनी पहुँच सुनिश्चित करने पर ध्यान केन्द्रित करना होगा तभी कनेक्ट सेन्ट्रल एशिया का वास्तविक लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी यह कहना यथोचित होगा कि विगत तीन वर्षों में मध्य एशिया तक हमारी पहुंच हो गयी है अब हमें इसके एक कदम आगे

बढ़कर कनेक्ट एशिया की जगह 'स्टेब्लिस इन सेन्ट्रल एशिया' नीति को आरम्भ करना होगा, तभी मध्य एशिया से मिलने वाले लाभों को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ

- 1. Maria Sultan & Behzad Adil, "The Henry J. Hyde Act and 123 Agreements: An Assessment." London: South Asian Strategic Stability Institute, September, 2008.
- 2. Arun Sahgal& Anand Vinod, "Strategic Environment in Central Asia and India" In Nirmala Joshi (Ed.), Reconnecting India and Central Asia: Emerging Security and Economic Dimention, Central Asia Caucasees Institute and Silk Road Studies Programe, Nitz School of Advanced Internal Studies Johns Hopkins University: Wasington D.C., 2010, pp.35
- 3. Ibid
- 4. 1904 में हालोर्ड मैकिंडर ने लन्दन के रॉयल जियोग्राफिकल सोसाइटी में 'द जियोग्राफिकल पीवट ऑफ हिस्ट्री' नामक शोध पत्र पढ़ा था। हर्टलैण्ड सिद्धान्त पर उन्होंने प्रकाश डाला था।
- 5- I.K. Gujral, "A Foreign Policy in India." New Delhi: External Public Division, Ministry of External affairs, Government of India, 1998, cited in Stephen Blank, "India's resing in Central Asia", Comparative Strategy, No. 22, 2003, pp.148.
- 6. The Extraordinary and Planypotentiary Diplomist Special, October 2006, New Delhi: Embassy of Uzbekistan, pp. 26.
- 7. Sebstien Peyrouse, "Domestic and International Articulations of the Indian Involvement in Central Asia" In I. Maulen Larulle & Sebastien Peyrause (Ed.), "Mapping Central Asia: India perceptions and Strategies", Ashgate Piblishing: England, 2011.
- 8. Meena Singh Ray, "S.M. Krishna's Visit to Tajikistan and India's 'Connect Central Asia Policy'" Search for Answers at http://idsa.in/idsacomments/smkrishnasvisittajikistan_meenaSRoy_050712 accessed on 27.09.2013.
- 9. "India's Connect Central Asia Policy", Ministry of External Affairs, 17.06.2012.
- 10. Annual Report of Ministry of external Affairs, 2012-13. P. VII.
- 11. Annual Report of Ministry of external Affairs, 2014-15. P. X.
- 12. Malika Tukanadiyeva, "Xinjiang in China's Foreign Policy towards Central Asia" Search for Answers at http://article/xinjiang-china-foriegn-policy-towards-central-asia.
- 13. Joshua Kucera, "Central Asia: What is China's Policy Driver? Eurasia-anet.org. (18 Decembe, 2012).
- 14. IWN, India's Writes Network, "Energy Diplomacy: Kazikistan offerse India Stake in oil Block", India Writes Network, 12 Network.
- 15. The Hindu, 11 July 2015.
- 16. Can Modi Reconnect India With Central Asia? B.B.C. News, 15.07.2015, www.bbe.com.

Brahma in South-East Asia

Vijay Shankar Shrivastava*

By the Hindus, *Brahma* is believed to be the creator of the Universe - the father of the gods and men, a figure majestic indeed, but some what pallied, as all the products of speculation are, and ill qualified to dispute the supermacy with his formidable rivals that had their origin in the popular beliefs. Unknown to the ancient cults-although his prototype, *Prajapati* filled a pretty large space in it he does not appear to have occupied more space in the new systems of worship, and many sanctuaries as there are in India, we know of only one of there, that of Puskara, near Ajmer, in Rajasthan. The worship of *Brahma* is, however, minutely described in the *Bhavisyapurana*.

Brahma, the first god of the Brahmanical trinity, has been able to command very little influence in Burma. He seems to have had temple and, as an independent deny, very few adherents too. He has not been represented, as we have seen, with Visnu and Siva on the Anantasayin reliefs from Thaton and Hmawza; but independent images of Brahma are rare, and only five six extant examples are known, Of the more interesting of them, one is at present housed in the Rangoon Museum, another is in the Pagan Museum and a third is represented in low relief on the face of the interior pillars of the Manuha temple, Pagan. Broken fragments of images of Brahma have here and there been found, for example in the ruins of the Zegu pagoda, Hmawza, as well as at the precincts of the Shwesandaw pagoda, Pagan, but even such finds are rare.

In Rangoon Museum *Brahma* is carved in bold and round relief out of a rectangular (about 1'4" x 1') slab of soft greyish sandstone² in *Brahma* is seated *padmasana* with folded hands raised up to the chest-height, a position, which, most probably, shows him in an attitude of worship of, or of prayer to, a superior deity. He is represented with three heads with matted locks of hair beautifully dressed in the *jata-mukuta* fashion crowned over with a floral ornament.

^{*}Asstt. Professor, Deptt. of History, R.L.S.Y. College, Aurangabad (Magadh University, Bodhgaya-Bihar)

The Pagan Museum Brahma³ conforms exactly to the same description. He is similarly seated in padmasana with folded hands in an attitude of worship: and his three heads are crowned with his matted locks beautifully dressed. But the quality of the stone is better in the present example and the two belong to the strictly different schools. Moreover, stylistically judged, they are separated from one another by a gulf of at least two centuries. The former is the product of a local school of art which is but obvious in the comparatively stiff modelling of the body, in the too much boneless flexible lines of the different limbs, in the rigid pose and, last but not least, in the quaint expression of the face. The local artist tutored by his Indian master seems to have worked out an Indian type. But the latter is undoubtedly the product of an Indian artist who gives evidence of his art and skill in the soft modelling of the body in the pleasing graceful lines and curves of the limbs, in the most easy position of the body and lastly in the soft pleasing expression of the face. The sculpture at once reminds one of similar Indian examples of the late Gupta art traditions of Eastern India, and belongs to a date not later than the 10th Century, whereas the Rangoon Museum example seems to be a local product of the 12th-13th Century of the Christian era.4

There are four images of Brahma carved in very low relief on the faces of the interior square pillars of the Nanpaya temple at Pagan. This temple is traditionally known to have been the residential house of the defeated Talaing king Manuha, who was brought from Thaton and kept a captive at Pagan by Anwrahta. Manuha built a temple where a huge recumbent image of the Buddha in his parinirvana can be seen, and also a second one just adjacent to the first to shelter himself. These two temples are situated at Myinpagan and are in a good state of preservation. Curiously enough, the smaller one, i.e. the temple that was used for the residence of Manuha, a king fervently devoted to Buddhism, contains on its pillars image of Brahma carved and modelled in very low and flat relief. The main sanctum of the temple is now empty, and it is difficult to determine whether it was a Brahmanical or Buddhist deity that was worshipped there. It is not improbable that an image of the Buddha himself was installed there at the sanction to whom the four Brahma images were represented in prayer or worship. Even then, the existence of a Brahmanical deity in the residential palace of a devout Buddhist shows that the captiva king had decided Brahmanical lcaning.

Herein Brahma is seated on a full-blown lotus-seat that shoots off its delicately and richly carved stems with leaves and floweres, a beautiful vegetable decoration of considerable artistic merit, on two sides of the seated image. *Brahma* seems to have a soft and flabby body resting on his legs, the left one of which is in a squatting position and the right lifted at an angle-a position that is suggestively analogous to what is technically known as *lalitasana*. Unlike the images of *Brahma* noticed above, here the two hands are not clasped in prayer, but are raised upwards and hold two lotus floweres. The matted locks of hair are arranged in a beautiful jata-mukuta consisting of carefully intertwined plaits curling capriciously and coquettishly. He has also a halo round his head and a sacred thread, treated in a flat plastic volume, hanging from his left shoulder. The four images belong to the same type and conform exactly to the same description; but the type itself is interesting, for the lotus attribute in the hands and the particular seated attitude of the god are unique features rarely seen in exatant images of *Brahma*.

Siam now Thailand has the unique distinction of maintaining the Brahmanical faith till the present day. Finds of Hindu deities and associated objects in consideable number testify to the existence of the Brahmanical population. Hindu religion, affiliated to *Brahma*, *Siva* and *Visnu* were widely practised throughout the country. Amongst the trinity, *Visnu* was most popular and occupied the prominent position in the Brahmanical fold. *Siva* and *Brahma* have lesser importance.

The cult of *Brahma*, known as Hinduism, is rarely mentioned in the inscription of Cambodia. In sculptures also he does not have any important position. By the Hindus he is believed to be the creator of the universe. He is not a very popular god in the colonies. The name of *Brahma* was not unknown to them but he had much unpopularity. In sculpture he occupies a secondary position. In Prasat Sneng Krabei there is a fountain in which dancing *Siva* has been depicted occupying the middle place and on his right is four faced *Brahma* and on his left is Lord *Visnu*. The *Brahma* image has been found at Prasat Samrong also. Another figure of *Brahma* carried by a bird (perhaps *Hamsa*) has been discovered at Muang Tarn. Sometimes *Brahma* is seen with five hands instead of four. The peculiarity with this god is that though he is not very popular in Cambodia, he can be seen not only among the Brahmanic monuments but in certain Buddhist monuments also.

Brahma is referred to as creator in several inscriptions (No. 12, V. 24; No., 62, V. 3), but he does not seem to have held a very prominent position in Champa. He is also called *caturanana*, having four faces and in several inscriptions of the 13th century A.D. he is referred to as *Svayamutpanna* of self-created. In inscription No. 21 he is said to have made the golden peak of mount Meru. King Jaya Pramesvara

varman installed an image of *Svayamutpanna* at Phanrang in 1233 A.D., and rich endowments were made to the god by the king himself, his heir apparent Nandabhadra, his Commander-in-Chief Abhimanyudeva and by the king Indravarman. The evidence of iconography is in full accord with that of epigraphic records in respect of the inferior position of *Brahma*. Only two small images of *Brahma* have been discovered in Myson. These were originally placed in temples A and B as secondary gods. *Brahma* also figures in bas-relief decorations of temples but mostly as a subsidiary god.

The characteristic features of the image of *Brahma* are his four faces-of course only three being visible in most cases and his *Vahana*, the goose. His common attributes are rosary and lotus-stems. In a bas-relief in the Touranne Museum he is represented as standing, with four heads and eight arms, holding a sceptre in one of them.

The scene figuring the birth of *Brahma* has been referred to in connection with *Visnu*. Here *Brahma* wears a sacred thread, and holds a discus and a long necked bottle in his hands. *Brahma* is usually seated on lotus though in one case the serpents form his bed.

The real importance of *Brahma* lies in the fact that he is regarded as a member of the trinity. We meet with the conception of the trinity of Brahmanic gods in one of the earliest records of Champa. The Myson inscription of Bhadravarman dating from 5th century A.D. begins with a reverence to *Uma* and *Mahesvara* as well as to *Brahma* and *Visnu*. This decided leaning towards *Siva* is further developed in inscription, no. 39. Here *Siva* is represented as the supreme god, and the two others pay homage to him. Finally the three gods stand together, *Siva* in the middle with *Brahma* on the right and *Hari* on the left.

The same idea is conveyed by iconographic representations on decorative panels. The tympanum at Trach Pho has it *Mukhalinga* in the middle with *Brahma* seated on a serpent the proper right, and *Visnu*, seated on a boar, to the proper left.⁵ Both these gods are turned towards *Siva*, with joined hands and two attributes *Visnu* viz., a discus and a club are shown in the background. In the tympanum of U'u Diem,⁶ *Siva* and *Uma* riding on a single bull occupy the centre; *Brahma* and *Visnu*, with joined hands, and seated respectively on a lotus and a *Garuda*, are in the upper right and upper left corners. while two other figures, an armed soldier and *Karttikeya*(?), occupy position just below these figures. At Thuy Trieu, however .. *Visnu* occupies the central position with *Brahma* on the left and *Siva* on the right. *Siva* rides on a boar, and both the gods have their hands joined in an attitude of prayer.

Visnu and Siva were both claimed to be the chief of the trinity by their respective followers.⁷ An attempt at compromise resulted in the conception of a new god Sankara-Narayana. Here the two gods are placed on the same level in theory, and this is expressed by a concrete image, half of which is Siva, and half Visnu. Such an image is clearly referred to in inscription No. 24 bur unfortunately no actual remains of such a figure have yet been discovered.⁸

The idea of association of the chief gods also probably led to the practice of decorating the temple, dedicated to one god, with figures of the other group. Thus, the temple of Phong Le dedicated to *Siva* has its front decorated with images of *Visnu*. Similarly figures of *Laksmi* and *Brahma* appear on the tympanums of *Saiva* temples. The principal tympanum in a temple, however, usually figures the god or gods to whom the temple is dedicated, though a *Saiva* temple in Myson has the scene of the birth of *Brahma*, and a temple at Phanrang dedicated to *Brahma*, shows the trinity with Visnu as the chief god.

Stone images of *Brahma* have come into light from the highlands of the island of Sumatra. The images of *Brahma*, the remaining number of the trinity, are comparatively few in number. He is presented in the form of *Chaturanan*. He is easily recognised by his four heads facing the four directions. He has four arms holding rosary, fly-whisk, lotus and water pot. His rider (*Vahana*) *Hamsa* (Swan) is sometimes depicted in its normal forms, but sometimes also as a human being with the head of a swan above indicating his true nature. *Sarasvati*, the *Sakti* of *Brahma*, is represented with two or four arms, riding on a peacock. The Tengger hill to east of Singhasharari is referred to as the sacred hill of the *Brahma* in an inscription dated 1405 A.D.

References

- 1. Annual Reports of Archaelogical Survey of Burma, 1908, pp. 6
- 2. Rangoon Museum Exhibit, No. 5/6
- 3. Pagan Museum Exhibit, No. V/74
- 4. Shrivastava, Vijaya Shankar, Hinduism in South-East Asia, New Delhi, 1989, pp. 30
- 5. Inscriptions du Cambodge, Vol II, pp. 411
- 6. Ibid, pp. 432-433
- 7. The god srisana Visnu mentioned in no. 71 2007 also refer to such an image.
- 8. Ibid

Thai Society and the Rural Life

Asim Kumar Pawan*

Situated in the heart of Southeast Asia mainland, and covering an area 513, 115 Sq. Km., Thailand borders Burma to the northern Cambodia and the Gulf of Thailand to the east Burma and Indian Ocean to the west and Malyasia to the south. The population of Thailand is approximately 58 million, with about of 3 per cent annual growth the vast majority being ethnic Thai. The most significant ethnic minority are the Chinese. Other minority groups include Malays, Indians, Cambodians, non Thai hill tribes, Burmese and some Victnamese.

About eighty five per cent people of the country are peasant. Most of them live in small villages and own their own agricultural land. They inhabit four major regions: the central area, the southern peninsula, the northern mountains and the north eastern plateau.

The central region containing about one fifth of the total population, is a vast fertile alluvial plain. It stretches almost 200 miles north of Bangkok and is watered by the Chao Phraya River and its tributaries. It comprises one half of the kingdom's rice-growing land and is the most intensively cultivated area. It produces about 1.5 million tons of surplus rice for export each year.

Southern Thailand has rich soil and abundant rainfall, but it consists largely of dense forests. It grows only enough rice to feed its own population. Fishing in nearly coastal waters supplies an important supplement to the daily diet. Rubber plantations and tin mines provide additional exports and employ thousands of people.

The northern sector is largely forests and mountains. It produces some of the finest teak wood in the world. In cleared areas the peasants irrigate their small fields and often grow two crops of rice each year. Between the rice harvests, the peasants grow soy beans and tobacco.

The north east is the largest region in the kingdom and contains about one

^{*}Lecturer, Deptt. of Ancient Indian and Asian Studies, Wazirganj College, Wazirgang, Gaya (Bihar)

third of the entire population. It has a semi-arid climate and the soil is poor. Until recently it has been isolated from the rest of the country and it continues to be the most backward area. Its strategic location and depressed living conditions have caused the Government to launch technical assistance project in order to improve the productivity of the land increase the welfare of the pesants.¹

The Rural Life:

A typical Thai village (muban) contains between fifty and two hundred families. The houses are usually clustered together, often near a stream or river and the rice fields lie in the surrounding area. Built of bamboo, thatch, or teak wood depending on the status of the peasant the small dwellings are raised on stilts about six to eight feet high. Thus the family keeps dry during the heavy monsoons from June to November and the children have a cool place to play beneath the house. Also the water buffalo and a few other domesticated animals are kept there.

There is a broad porch at the front of the house and a small kitchen in the back. Often the whole family sleeps in one room with each member lying on a woven mat under a mosquito net on the floor. The windows of the house consist of wooden shutters or home made blinds which are closed at night and during heavy rainstorms.

The peasant's house is surrounded by a bamboo fence. The yard usually includes a vegetable garden, a betel palm and perhaps a few banana and coconut trees. In one corner stands a spirit house, a small wooden or concrete structure on a short post. Here the peasant makes offering to the spirit of his property, one of the many signs that he judiciously mixes his devotion to Buddhism with a dose of animism.

If the house is not located near a stream or river, the compound usually contains a small bathing area enclosed by a shoulder high thatched fence. A large water jar and metal dipper provide the means for a cool bath after working in the rice fields under a hot sun. The Thai peasant does not disrobe when bathing. Instead he splashes cool water over his body while wearing a *pakoma*, a brightly coloured loin cloth. When he has finished he slips a clean *pakoma* over the wet one, letting the latter drop to the ground in perfect modesty.

In the morning the peasant family sit on the floor of the porch for the breakfast meal. The peasant's wife brings a large pot of rice, which she has cooked in the kitchen over a charcoal fire. Each member consumes generous portions of rice and

side dishes of dried fish and spicy curry, eating with his fingers. The evening meal also consists of rice and curry made from dried or fresh fish and vegetables. Only on special occasions, such as temple ceremonies or rice harvesting work parties, do the women prepare more elaborate curries of chicken, pork or game. The resourceful peasant finds a variety of supplementary foods to combine with the one pound of rice he consumes daily on an average. The base of many curries is crab paste ground from rice crabs, which women gather from young paddy plants in the nearby fields. Another curry paste is made shrimp. Often ants are baked and grass hoppers are salted and fried. The diet of the Thai peasant is low in vitamin and protein content, yet when compared to the villagers in other Asian countries, he and his family are reasonably well fed.

On the outskirts of the village stands the wat, or Buddhist temple. Its bright green, orange and yellow tiled roof contrasts markedly with the drab brown houses. In the walled compound of the temple grow coconut palms and often a Bodhi tree similar to the one under which the Buddha got enlightenment over 2550 years ago.

The temple is the centre of religious and social life of the village. Colourful ceremonies such as the ordination of monks and cremations take place there. These occasions are noted for having both a sacred and festive atmosphere.

All Thai villages participate in the religious life of the community. Although the women do not ordinally enter monastic life, they devoutly support the religious order. Each morning they place cooked rice in the bowls of the local monks as they make their rounds of the houses of the village. Each women considers this deed a privilege, not a hardship, as she is making merit for herself and her family. Hence this act of devotion is well worth the extra time and efforts.²

Married and unmarried Thai men may enter the Buddhist order at any time after the age of about 15. Many men wear the saffrorn robe for a period of three months. After returning to secular life, the former monk is addressed by a special title and given added respect regardless of this economic status.

Young boys who can be spared from the paddy fields often assist in the activities of the village temple. They are usually between the ages of 10 and 15 and they also wear saffron robes. They sleep and eat at the temple, although they usually continue to attend the local school. They run errands for the monks and carry their few personal belongings. They help and keep the temple grounds orderly and clean. Their families are proud of their religious services as the family earns additional

merit.

The Thai peasant spends much of his small cash income on religious matters. These include the daily rice provision for the monks, expenses for sponsoring the ordination of a novice into the religious order, the purchase of incense and candles, and contributions of money for the general maintenance of the temple. All these gifts are voluntary. The peasant gives gladly and generally since he believes these acts will bring further merit to himself and his family for the next life.³

The public school is the second most important building in a Thai village. The school is a symbol of progress and it provides the peasant children with a sense of belonging to the nation. It also expands their limited mental horizons. Here they learn to read and write, study Thai history and geography and have contact with young people from surrounding communities.

Education has been compulsory in Thailand since 1921. Before that time a few boys were fortunate enough to attend classes in the village temple. Girls rarely recieved any formal education. Now the temples confine their teaching to religion, unless the village is too poor to creet a school building. In these few cases, school classes are still held in the temple compound.

Rural communities build their own schools with a minimum of assitance from the central government. The Ministry of Education in Bangkok prepares the curriculum and text books and distributes educational material through the district education offices. Even with this assistance education seems expensive to the peasant family, whose cash income is very low. Each child must pay about twenty baht a year for his states, chalk and used text books.

The school teacher is often local man who has studied for one or two years at the government teacher training school in a nearby provincial town. In large villages the teacher may have more formal training, but often his education does not meet government standards. Although the salary is low, the school teacher lives reasonably well in the village with its self-sufficient economy. He enjoys much prestige and his opinions on local problems and national affairs are sought by most villagers.⁴

Thai rural life revolves around the rice growing seasons. The peasants plough their fields soon after the heavy rainfall begins in June when the soil becomes soft and workable. The water buffalo is used to pull a large wooden plough through the thick muddy earth. Harrowing is accomplished with a heavy timber with sharp wooden teeth. The field is made smooth by dragging a bamboo log behind the water buffalo.

Rice seedlings which have already been growing for six weeks are then transplanted from a germinating plot to the large paddy fields.

Peasant often form voluntary working parties for the transplanting operation. This work is long and strenuous and the peasants reduce the monotomy with much frivolity and laughter. Each day they move on to another fields until all the paddy fields surrounding the villages are dotted with freshly planted rice seedlings. Soon the rain pours down relentessly and the rice plants become covered with a few inches of water. In some regions the fields are watered by irrigations.⁵

The harvesting is done during the cool season in November and December. Peasant families again form small working parties and labour in each other's fields for about a week. By this time the fields are usually dry, although in some areas the crop must be cut in flooded paddy fields by standing in the water or working from small boats. To harvest the crop, the reapers cut the stalks near the ground with a sickle and tie them into sheaves, which are left to dry in the sun. The dried sheaves are then carried on a long pole to the threshing mound.

The peasant prepares the threshing area on a flat piece of land near his house or in a nearby field. He pounds the earth with a mallet and plasters it with buffalo dung, making a hard, smooth surface. In central Thailand the peasants tie a bullock to a post in the middle of the threshing mound and train the animal to walk continuously in a circle. The heavy hoofs crush the paddy sheaves and separate the white grain from the stalks. In the northern region, the peasants thresh by hand. They gather the rice sheaves into large piles on the threshing mound and beat them one at a time on the hard ground. The winnowing is done by tossing the loose grain into the air with a round, flat basket so the wind can blow the chaff away. On a windless day, the peasants use a large fan to separate the grain from the chaff.⁶

At the end of the harvesting season there is mirth and festivity throughout the land. The peasants and their families gather around large bonfires. The young people sing and dance and court. In a country where prosperity is synonymous with a good rice crop, it is a time of great jubilation.

The family is less cohesive in Thailand than in most Asian cultures. The children are taught by example rather than by reprimand and punishment. They are expected to respect their elders, yet they are also taught to be resourceful and selfreliant. Family ties are flexible. This combined with the general sense of well being and the teaching of Buddhism has produced a distinctly individualistic approach to

life. This in turn makes village allegiance relatively weak and promotes both geographic and social mobility. These forces have induced rapid urbanization during the past two decades and given to Thailand the description of a loosely structured society.

References

- 1. Frank and Ann Darlilng Thailand, The Modern Kingdom, Singapore, 1971, pp. 24
- 2. Ibid. pp. 26, cf Sharan, M.K. The Glory of Thailand (in Press), pp. 256
- 3. Kabilshingh, Chatsumara, Thai Women in Buddhism, Berkeley, Paroliavo Press, 1991, pp. 22
- 4. Shastri, A.M. An Outline of Early Buddhism, Varanasi, 1965, pp. 39
- 5. Ghosh, S.K. Indian Women Through The Ages, New Delhi, 1989, pp. 56
- 6. Murcott, Susan The First Buddhist Women: Translations and Commentaries on the Therigatha, pp. 4

International and National Perspectives of Financial Inclusion: A Review of Select Studies

Susmita Chaturvedi*

ABSTRACT: Financial inclusion has become an important policy objective of many countries in recent years. In India this was adopted in eleventh five year plan. Financial inclusion implies access of financial services to all segments of the society. This paper highlight some studies and try to evaluate the role of Financial Inclusion at International level and national level, what are the factors which are playing important role in international and national level and to know those factors which are barrier in implementing financial inclusion?

The finding shows that some study of cross country analysis and various national level analyses laid an important focus on the positive relationship between financial inclusion and economic development. The Indian study show that there is exclusion and that poorer sections of the society have not been able to access adequately financial services from the organized financial system.

KEYWORDS: Financial Inclusion, Community Reinvestment Act (CRA), Community Financing Learning Initiative (CFLIs), Post Office Card Account (POCA), Business Facilitator (BF), Business Correspondent (BC), Know your customer (KYC), Sclf-Help Group (SHG), Regional Rural Banks (RRBs)

The world financial inclusion can be stated as a delivery of financial service at affordable cost to sections of disadvantage and low income segment of society. The importance of financial inclusion arises from the problem of financial exclusion of nearly 3 million people across the world. This exclusion is of two types: One, exclusion from the payments system – i.e. not having access to a bank account, thus leading to non access of basic banking facility and second include the exclusion from formal credit market-i.e. requiring the excluded to approach informal and exploitative markets. This limited access to affordable financial services such as savings, loan, remittance and insurance services by the vast majority of the population in the rural areas and unorganised sectors is believed to be acting as a constraint to the growth impetus in these sectors. Hence financial inclusion is considered crucial

^{*}Ph.D. Scholar, Department of Commerce, Delhi School of Economics, University of Delhi.

for achieving inclusive growth; which itself is required for ensuring overall sustainable overall growth in the country.

In India a committee on financial inclusion was set up under the supervision of Dr. Rangarajan in 2008. They defined financial inclusion as: "As the process of ensuring access to financial services and timely and adequate credit where needed by vulnerable groups such as weaker sections and low income groups at affordable cost."

Another definition given by Indian Institute of Banking & Finance said that, "Financial inclusion is delivery of banking services at an affordable cost ('no-frill' account) to the vast sections of disadvantaged and low income group. Unrestrained access to public goods and services is the sine qua non of an open and efficient society."

Considering over this issue in the Annual Policy of the Reserve Bank of India 2004-05, the Governor, Dr. Reddy observed and the Deputy Governor Smt. Usha Thorat quoted-"There has been expansion, greater competition and diversification of ownership of banks leading to both enhanced efficiency and systemic resilience in the banking sector. However, there are legitimate concerns in regard to the banking practices that tend to exclude rather than attract vast sections of population, in particular pensioners, self-employed and those employed in unorganised sector. While commercial considerations are no doubt important, the banks have been bestowed with several privileges, especially of seeking public deposits on a highly leveraged basis, and consequently they should be obliged to provide banking service to all segment of the population, on equitable basis."

Thus from the above definition Financial inclusion can be referred to as the delivery of financial system of an economy to its member. Banking services are the backbone of financial system in any economy and are in the nature of public goods, so it is essential that it should be made available to each segment of the entire population without any discrimination.

Background

Several countries had already implemented financial inclusion in their policy framework.

The origins of the current approach to financial inclusion can be traced to the United Nations where a civil right law Community Reinvestment Act (CRA) prohibits

discrimination by banks against low and moderate income communities in which they are chartered. Apart from this, the State of New York Banking Department made mandatory that each banking institution should offer basic banking account and in case of credit unions the basic share draft account, which is in the nature of low cost account with minimum facilities. In an attempt to provide more stimuli to this drive United Nation made 2005 as the 'UN Year of Micro- Credit'.

The G20 Toronto Summit (June, 2010) had outlined the "Principles for Innovative Financial Inclusion", which serves as a guide for policy and regulatory approaches aimed at fostering safe and sound adoption of innovative, adequate, low-cost financial delivery models, helping provide conditions for fair competition and a framework of incentives for the various bank, insurance, and non-bank actors involved in the delivery of a full range of affordable and quality financial services.

In UK, The Financial Inclusion Task Force has been set up; they had also established a Financial Inclusion Fund, a Post Office Card Account (POCA) for those who are unable or unwilling to access basic bank account. They had started the concept of Saving Gateway for low employment group. In addition the Community Financing Learning Initiative (CFLIs) was also introduced with a view to promoting basic financial literacy among housing association tenants.

In India the Reserve Bank of India (RBI) and the Government of India (GOI) had made continuous efforts since independence to increase the banking penetration in the country. Some of these measures include the creation of State Bank of India in 1955; nationalization of commercial banks in 1969; initiating the Lead Bank Scheme in 1970; establishing Regional Rural Banks (RRBs) in 1975; introducing a Self-Help Group (SHG)-Bank Linkage Programme in 1992 and formulating the Kisan Credit Card scheme in 2001.

In 2005 Reserve Bank of India promulgated a drive where bank take a lead in providing all 'unbanked' household in a district with saving account. This started opening of 'No-Frill' Accounts as a crucial policy initiative. 'No-Frill' accounts are either have a low or nil balance with some restriction in transaction. The individual bank has the authority to decide whether the account should have minimum or nil balance. Also a Committee on Financial Inclusion was set up under the supervision of Dr. C. Rangarajan which recommended that each semi-urban/rural bank branch open roughly 250 bank account annually which if successful would result in approximately 11.5 million account across country. With the combined effort of all these financial institution, six million new 'no-frill' accounts were opened up in the

period between March 2006-07.

In January 2006, banks were permitted to utilize the services of non-governmental organizations (NGOs/SHGs), micro-finance institutions and other civil society organizations as intermediaries in providing financial and banking services through the use of business facilitator (BF) and business correspondent (BC) models.

For reducing procedural hassles, know your customer (KYC) procedures for opening accounts has been simplified. The Reserve Bank has directed banks to make available all printed material used by retail customers in English, Hindi and the concerned regional language. To extend hassle-free credit to bank customers in rural areas, the guidelines on General Credit Card (GCC) schemes were simplified to enable customers' access credit on simplified terms and conditions, without insistence on security, purpose or end-use of credit.

A simplified mechanism for one-time settlement of loans with principal amount up to Rs.25,000 which have become doubtful and loss assets as on September 30, 2005 was suggested for adoption. Banks have been specifically advised that borrowers with loans settled under the one time settlement scheme will be eligible to re-access the formal financial system for fresh credit. In the Reserve Bank, the *Customer Service Department* has recently been constituted to serve as the interface between customers and banks.

Moreover, the Government of India has also expressed its explicit concern on the issue of overall inclusion in the development process through its various initiatives such as the *Rural Employment Guarantee* Scheme. the *Bharat Nirman* programme, the *Sarva Shiksha Abhiyan*, and the like.

Objectives

The objectives of this study are:

- To evaluate the role of Financial Inclusion at International level and
- To evaluate the role of Financial Inclusion at national level.
- To know the factors which are playing important role in international and national studies?
- To know those factors which are barrier in implementing financial inclusion?

Further this paper is organised as follows: section 3 deals with detailed methodology, section 4 results and discussion, section 5 concludes the paper and

section 8 draws out the limitation of the study.

Methodology

The methodology will go simultaneously as the objective of this study is defined. Firstly, all those studies which are done on an international level their finding will be explored. These studies is done at two level first, cross-country study and second, country-specific study. Secondly all the studies which are done at national level will be highlighted. This is also categorised in two parts: first, all India based study (covering all India State) and area-specific study. This is as follows:

3.1 International Studies on Financial Inclusion

These studies tells about the international experience of financial inclusion, there necessity and outcome. Further these study are categorised in two parts: (i) Cross-Country study and (ii) area –specific study. They are as follow:

3.1 (i) Cross-country Study:

These studies had concentrated on examining the factors which are related to accelerate financial inclusion, their impact and consequences. They are as follows:

King and Levine (1993) presented cross-country analysis that the financial system can promote economic growth. The objective of this paper is to show that the predetermined components of financial development are robustly correlated with future rates of economic growth, physical capital accumulation and economic efficiency improvement. They took the data of 80 countries over the period of 1960-89. They used four indicators of financial system as predetermined components of financial development. First being ratio of deposit money bank domestic assets to deposit money bank domestic assets plus central bank domestic assets. Second include financial depth in terms of other function provided by the banks. Third indicator being ratio of non-financial private sector over credit and the fourth being degree of public sector borrowing. They also used four indicators as the component of economic growth, physical capital accumulation and economic efficiency improvement viz., first being GDP, the second being growth rate of the per capita physical stock, third being anything remaining which is not the part of second indicator and fourth being gross national investment divided by output. They ran the correlation between finance and growth and found that during the period countries with slower growth rate in financial system had low financial development as compared to countries with high growth rate. They also ran comtemporaneous regression and gauge the strength of correlation and summarised that in due process poor countries react more quickly in terms of growth to the changes in financial development that in the richer country because of the growth in financial system.

Beck et al. (2004) focuses on one specific policy area – financial intermediary development – and its effect on income inequality and poverty alleviation. Using a broad sample of 52 developing and developed countries, with data averaged over the period 1960 to 1999, this paper assesses whether there is a direct relationship between financial intermediary development and changes in income distribution. They hypothesised that this relationship is crucial in understanding the linkage between financial development and poverty alleviation since poverty reduction in any given country is determined by the growth of mean income and changes in income distribution. For financial intermediary development variable they used the breadth and depth of financial system and for income GDP and per capita income of the country is used. Given that there is already significant evidence that financial development is pro-growth, they seek to determine whether financial development is also pro-poor. By pro-poor, they mean does financial development significantly improve income distribution by disproportionately boosting the incomes of the poor. They used the growth rates of (i) income of the poorest quintile, (ii) the Gini coefficient, and (iii) the standard deviation of income distribution. To test whether financial development boosts income growth of the poor more than the average, they examined the relationship between finance and income growth of the poor while controlling for average income growth. Their results indicate that finance is propoor. The income of the poorest quintile grows faster than average GDP per capita in countries with better-developed financial intermediaries. Income inequality, measured both by the Gini coefficient and the standard deviation, falls more rapidly in countries with higher levels of financial intermediary development.

Beck et al. (2005) presented cross-country study among various developed and developing countries about access and use to banking services across countries. The main focus was to explore the relationship between banking sector outreach (access) and financial depth (use) towards economic development of the country in terms of GDP. They used the data of 99 countries in the period 2003-04. For banking sector outreach they used two classes of indicators number of branches and ATM relative to population and area. To represents the financial depth they had used the deposit and credit services by loan and deposit account relative to the population. They conducted a number of "reality check" on the proposed outreach indicators to

test the validity of the indicators. They ran OLS regression model and explored that the proportion of population that has access to and uses of financial service, identify some obstacles to access in terms of environment effect, or cultural barriers. Their finding reveals that both outreach and depth indicators are positively associated with the overall level of economic development. Thus in this manner this paper had first attempted to measure outreach and depth in a cross country analysis.

Beck et al. (2008) expanded this paper to include the notion of financial "exclusion" as a barrier to economic development and the need to build inclusive financial systems. They laid emphasis that financial exclusion acts as a brake in economic development. Exclusion occurs because there are certain types of barriers. For this study they used the same data set as used in earlier study (Beck et.al.(2005)) covering the period of 2003-04 across 99 countries. For banking outreach they had used the two indicators, number of branches and ATM relative to population and area. To represents the financial depth they had used the deposit and credit services by loan and deposit account relative to the population. For barriers they had used banking ownership, cultural barriers, media freedom and immigration. They applied the correlation technique for both penetration and found that these barriers are negatively correlated with banking penetration and outreach and may exclude a large percentage of population from using banking services in many countries.

Sharma (2008) proposed a comprehensive measure that can be used to measure the extent of financial inclusion in an economy. This paper proposes an index of financial inclusion (IFI), following a multidimensional approach similar to that used by UNDP for computation of some well known development indexes such as the HDI, the HPI, the GDI etc. in order to know the extent of financial inclusion. The IFI developed here incorporates three dimensions like banking penetration, availability of banking services and usage inclusive financial system. These dimensions of financial inclusion lie between 0 and 1, where 0 denotes complete financial exclusion and 1 indicates complete financial inclusion in an economy. For computation of IFI first a dimension index for each dimension of financial inclusion is created. Then IFI equation is formed for separate country. For this purpose they had taken data 94 countries in 2004. With this index they compare the extent of financial inclusion across different economies and on the basis they generalised that higher the index higher the economy is showing progress towards financial inclusion.

Chibba (2009) studied various developed and developing country to know the effect of financial inclusion (FI), poverty reduction (PR) and millennium

development goal (MDG). This approach was named by her as FI-MDG-PR nexus where financial inclusion (FI) offers incremental and complementary solutions to tackle poverty (PR), to promote inclusive development and to address the millennium development goals (MDG). This paper focuses on approaches to planning, policymaking and programming in order to strengthen the FI-PR-MDG nexus. Based on field research and related analysis, it was suggested that tackling FI and strengthening the FI-PR-MDG nexus requires a focus on four key pillars: private (financial and non-financial) sector development, financial literacy, microfinance and public sector support. The paper highlighted five such models: (1) formal financial sector consensus; (2) public sector leadership, (3) private sector development, (4) civil society/NGOs, and (5) the catalytic model. They concluded that these models play the leading role in countries such as India, South Africa and Mexico. As financial inclusion is a dynamic and multidimensional process all of these models play crucial role but at varying degrees. One fact also came out that the majority of developing countries have the advantage of learning from lessons learned by the early leaders, and of emulating or adapting proven approaches to tackling financial exclusion through the informed use of these five models.

Sharma (2010) first pointed the methodological difference with the UNDP methodology in the manner in which dimension indexes are combined to compute the final index. Unlike the UNDP's methodology of using an average (a simple arithmetic average in case of HDI, GDI and GEM and a geometric average for HPI), index is based on a measure of the distance from the ideal. Data for this study was taken from the database published, for the first time (and unfortunately for the last time till date), some data on deposit money bank branches and deposit accounts for 209 countries in the World Bank's list of economies. These data are for the latest year during 2001-04, and collected from surveys of banking and regulatory institutions by the World Bank's Research Department and Financial Sector and Operations Policy Department (WDI, 2006). For the usage dimension, International Monetary Fund's (IMF) ,International Financial Statistics (IFS) database provides data on credit and deposit. They used three dimensions penetration, availability and usage to financial system. Here they assigned weight for each dimension and computed IFI. They came to conclude that this was the more precise measure of finding the extent of financial inclusion.

Chakravarty & Pal (2010) In order to get an aggregate picture of banking activities in different dimensions, they designed an index of financial inclusion. This

is because from individual dimensions they get only partial information on banking activities. The position of one country may be quite good in one dimension but not in other. Finding out that the patterns of changes in different dimensions of banking services over time are quite diverse they laid that it become necessary to get a comprehensive picture of the situation so there is a necessity to have an overall index of financial inclusion. This index was a measure of banking performance. A higher value of the index will indicate a better performance since an improvement in the banking activity in a dimension will represent a higher value. Such an index may be referred to as a functioning achievement index. The objective of the paper includes creation of axiomatic structure and index to be broken down into dimension-wise components for calculating the individual percentage contribution. They had taken the data of 55 countries for the period for the year 1999, 2001 and 2007 and also the national data for different Indian states for the year 1999, 2001 and 2007. They used variables like geographic penetration, demographic penetration, deposit account per 1000 people, credit account per 1000 people, and deposit as percentage to income and credit as percentage of income. They created the overall index of financial inclusion for measuring and comparing cross-country and state data. For this they used the axiomatic structure and came out with the conclusion that axiomatic structure is better indicator of different dimension than the one created by Sharma using UNDP method.

Sharma & Pais (2011) presented a cross country empirical analysis of the relationship between financial inclusion and development. Using the index of financial inclusion developed in Sarma (2008), the paper attempts to identify the factors that are significantly associated with financial inclusion. They identified three factors of which affect financial inclusion these are socio-economic, infrastructure and banking variables. The data for this study was taken for the period 2004 of 49 countries. They ran three sets of regressions on the IFI on three different sets of variables. The finding of this study came out that among socio-economic factors; income is positively associated with the level of financial inclusion. Going beyond income, inequality, literacy and urbanisation are other important factors. Further, physical infrastructure for connectivity and information are also significantly associated with financial inclusion. Among the banking sector variables, NPA and CAR are negatively associated with financial inclusion. Government ownership of banks is not significantly associated with financial inclusion while foreign ownership is found to be negatively associated. Interest rate does not seem to be significantly associated with financial inclusion.

3.1 (ii) Country-specific Studies

These study deals with the situation of a particular country or particular area of country and its impact. These are as follows:

Jones (2006) advocated that a substantial proportion of the funding should be allocated to third sector lenders such as credit unions operating in low-income areas to enhance financial inclusion task apart from HM Treasury2005. They used the data of Credit unions in the West Midlands that began in the period March 2002 to December 2004. They adopted a "New model" methodology for West Midlands's credit unions with a road-map for their transformation into more effective financial institutions. With this they came to know as 'quality credit unions'. This new model methodology, and the concept of a quality credit union, offers British credit unions the opportunity to generate the capacity to offer low income and financially excluded groups the accessible and affordable services and products they need, want and deserve.

Kempson & Collard (2012) reviewed the UK's progress towards financial inclusion, and develops an evidence-based vision for achieving financial inclusion over a ten-year timeframe i.e. from 1999-2009. Financial inclusion policy and practice has come a long way since Policy Action Team 14's landmark report in 1999. Other countries, in Europe and elsewhere, continue to look to the UK as a leader in this field. This paper is based on the objective that everyone should have access to, use and retain: an appropriate account, or equivalent product, into which income is paid, can be held securely and accessed easily; an appropriate method of paying, and spreading the cost of, household bills and other regular commitments; an appropriate method of paying for goods and services, including making remote purchases by telephone and on the Internet; an appropriate means to smooth income and expenditure. They should be able to use these transaction services without the risk of losing financial control or incurring excessive or unexpected charges. They tried toinhance more financial inclusion for this they had taken four basic banking services namely, banking, credit, saving and insurance. They research methods used on the above four areas to know the influence of financial capability and over-indebtness on the level of financial inclusion are evidence assessment, initial round table meeting, telephone depth interview, community select committee and final round interview. They came to conclusion that in order to have a vision for financial inclusion there is a need to incorporate the different needs that financially excluded people may have and indicates how these might be met in an appropriate way. Only when financially excluded people are able to meet these needs can this vision for financial inclusion be said to have been achieved. Their vision for financial services for meeting day-to-day needs is that everyone has access to, uses and retains. This would also require a shift away from a heavy reliance on credit to meet most or all of these needs, towards a more balanced mix of saving, borrowing and insurance.

Thus, we can sum up that cross-country study focuses on the relationship between financial inclusion or well functioning financial system and economic development. Where financial inclusion or system on the one hand indicates the branch penetration, credit and deposit ratio, on the other hand economic growth or development is indicates GDP or per capita income. As the more precise measure evolved with the creation of Index of Financial Inclusion (IFI), it became easier to get to know about the extent of financial inclusion. This also helped in comparing IFI among different set of countries and its relationship with economic development and growth. Some studies had also analysed the country-specific determinants such as socio-economic, infrastructure related and banking sector variable which play a vital role in influencing the level of financial inclusion. Some country specific study we find out that the level of financial inclusion is highly dependent upon a country specific factors such as socio, legal, demographic, cultural, political, etc. The country with higher financial inclusion is one who does not have this level of barriers in their system.

3.2 National Studies on Financial Inclusion

The study related to India analysed the importance of financial inclusion drive in India its need and importance. This is also categorised in two parts: (i) Nationallevel studies and (ii) area-specific studies. Some of the few studies are as follows:

3.2 (i) National Level Studies:

This section covers those studies which are done at national level. These prime objective of these studies are to focus the importance of financial inclusion in Indian level. These are as follows:

Burgess & Pande (2003) identified the impact of opening a rural bank and its impact on poverty and output. They suggested that the Indian rural branch expansion program will significantly lower rural poverty and increase non-agricultural output. They used a panel data-set for the sixteen major Indian states over the period 1961-2000. They used a branch level data-set for every bank branch opened since 1805 in banked, unbanked and rural unbanked locations as their variables. They used OLS

to know the relationship between rural bank branch expansion and rural poverty. They concluded that expanding access to finance in poor, rural settings can generate significant social returns.

Mohan (2006) studied the impact of economic growth, financial deepening and the relationship of financial inclusion in the Indian economy. Data for the study was taken of all Indian state covering the period 2005-06. The financial deepening variables include banking penetration and usage of banking services. The growth variables include per capita. The study concluded that those state that had greater financial deepening are more growth oriented.

Aggarwal (2008) focuses that in India the level of financial inclusion at present is confined to ensuring a bare minimum access to a savings bank account without frills, to all. A current account / savings account on its own, is not regarded as an accurate indicator of financial inclusion. At one extreme, are the 'superincluded' (those who have at their disposal a wide range of financial services and products) At the other extreme, are the *financially excluded*, (those who are denied access to even the most basic of financial product). In between are those, who use the banking services only for deposits and withdrawals of money. But these persons may have only restricted access to the financial system, and may not enjoy the flexibility of access offered to more affluent customers. Secondary research was conducted to study the scenario of financial inclusion in India. For this purpose data for the years 2001-2006 had been taken from Reserve Bank of India, Indian Institute of Banking and Finance and Updated Master Office Files of Office of Registrar General and Census Commissioner, Government of India. To know the flexibility of access offered to customer interviews of the representative of the two NGOs, namely 'Asha' and 'Need" and the SHGs attached to these NGOs were taken. These social organizations were operating in the states of Uttar Pradesh, Bihar, Madhya Pradesh and Uttrakhand. They did qualitative surveys and concluded that to meet the growing credit demand the banks need to mobilize resources from a wider deposit base and extend credit to activities not financed by banks. Thus financial inclusion should strengthen financial deepening and provide resources to the banks to expand credit delivery.

Swamy (2010) suggested some policy choices for successful implementation of the policy of financial inclusion for sustainable growth of Indian economy. The objectives of the study was to know the significance of financial inclusion in terms of inclusive growth for sustainable economic development and to evaluate the extent of financial exclusion in India in terms of spatial distribution of banking services,

number of deposit and credit accounts in scheduled commercial banks, population coverage per office region-wise, ratio of direct agricultural credit to agricultural GDP, total GDP and total credit, coverage of farmer households as per social groups and non-indebted farmer households as per different land holdings. The methodology of this study has two parts: the approach and data collection. The approach include evaluation of the coverage of financial inclusion in terms of the extent of financial inclusion The study is based on the secondary data available from the various sources such as RBI, NABARD, reports of various committees, National Sample Survey Organization (NSSO), National Accounts Statistics of Central Statistical Organization (CSO) and other apex level organizations for the period of 1969 to 2005. They concluded that financial inclusion has, in reality, far reaching positive consequences which can help resource poor people to access the formal financial services in order to pull themselves out of abject poverty. The focus on the common man is particularly imperative in India as he is the more often ignored one in the process of economic development. Indeed, with the process of financial inclusion, the attempt should be to lift the resource poor from poverty through coordinated action amongst the banks, the government and other related institutions in order to facilitate access to bank accounts and other related services.

Pandey et al.(2010) laid stress on the issue that financial institutions should integrate across the entire agriculture value chain for financial inclusion because agriculture is an important component in growth and employment generation in India and new innovative payment solution should be introduced. They studied the key features of Indian agriculture and generalised that the agriculture system had changed from conventional system to more agriculture-value-system(A-V-S). This A-V-S includes three components physical product flow, financial flow and informational flow. ICT-enabled payment technology role was focused. Various technologies show promise for lowering the costs, managing the risks and increasing the efficiency of financial services in the rural areas, including automated teller machines (ATMs), point-of-sale (POS) devices linked to smart cards, cellular phones, GIS mapping systems, and loan officers using personal digital assistants (PDAs). They also did a case study on M-Pesa account launched by Vodafone which enable more easily money transfer through mobile. They concluded that Indian economy should also make their agriculture value system ICT enabled.

Priyadarshee et al. (2010) laid emphasis on Indian post as a means for covering social protection schemes of the government for curbing financial exclusion among the poor. They analysed three Indian states and suggested that financial inclusion

strategies may be inefficient if designed without accounting for the government social protection programmes. An examination of the official data on India Post indicates that the approach of diversifying its financial products to target higher-end clients in largely urban areas may not be appropriate due to its competitive disadvantage. They argue that delivery of financial services through post offices, built around social protection, may contribute to financial inclusion in rural areas while improving revenues of India Post. The data for the study covered three major Indian states of Andhra Pradesh (AP), Uttar Pradesh (UP) and Gujarat, for the period 2001-07. They captured the role of MFI, SHG and the number of post offices, their financial and premium schemes in all those state. They analysed data provided by the secondary sources and came to conclude that the poor people are not able to entirely access their entitled benefits from social protection programmes as such programmes generate their own financial needs, these remain largely unmet. They focused that India Post should be made complementary in achieving financial inclusion as India Post is suitably located to deliver such social protection-linked microfinance services because of its close proximity to the rural population, and its personnel being known to and trusted by the local communities.

Kumar & Misra (2011) attempted to measure and understand financial inclusion across Indian states and Union Territory. This study has used the data from Reserve Bank of India for the year 2002-03. This report presents comprehensive data on deposits and credit of scheduled commercial banks and the information on number of employees of these banks, as on 31st March 2003. The data collected were through the annual statistical surveys, Basic Statistical Returns (BSR)-1 & 2, from the offices of scheduled commercial banks in India including Regional Rural Banks. They classified the population into rural, semi-urban, urban and metropolitan. They had taken two indicators of financial system: first, supply of (banking outreach indicators such as number of deposit and credit accounts, number of bank branches, average deposit and credit amount per account and credit utilized) and second demand for (indicators of household level access such as the proportion of households having saving, credit and insurance facilities) financial services. Separate composite Financial Inclusion Indices (FIIs) were calculated for both the data sets for the year 2002-03 for all the States/Union Territories of India. In both the cases, they observe a lot of variation across states, for rural and urban regions. Even within a state, differences are clearly evident between rural and urban areas for the different indicators considered. The presence of informal sector in providing financial services is significant, especially in rural areas. Thus, they concluded that from a policy perspective, two things are relevant: *One*, is to widen the ambit of policy initiatives under financial inclusion, which will reduce the dependency on informal source of financial services, particularly credit. *Second*, is to provide greater focus on vulnerable states/regions in providing access to financial services on which they are lagging.

3.2 (ii) Area-Specific Study:

These studies relates to a particular area, their experience in financial inclusion. They are as follows:

Natu et al. (2008) focused that financial inclusion apart from access involves usage as well. It presents the prospect of coupling financial inclusion with social security schemes. They hypothesised that social security scheme such as the National Rural Employment Guarantee Programme (NREGP) which provides a regular and steady stream of income to the poor should be associated with financial inclusion drive. They studied a model which was pilot-tested in Karimnagar district in Andhra Pradesh by Financial Information Network & Operations Ltd. (FINO), a technology provider, who tried to facilitate financial inclusion over the channel and reach created by NREGP. They proposed a model for linking financial inclusion with NREGP in a district where NREGP is operational and there exists a microfinance institution (MFI) or an NGO which can work as a Business Correspondent for the local bank. The government can partner with the bank in ensuring that the weekly wages are directly credited to the savings accounts that have been created for the beneficiaries. Post offices (POs) as an existing infrastructure can also play the role of a Business Correspondent for this model. The outcome of this paper was that the financial inclusion drive be jointly implemented. This joint implementation drive will ensures the frequent usage of bank accounts while providing much needed financial products to the poor. Their proposal also emphasised the use of technology such as a smart card to enhance the efficiency and security of the transaction.

Thyagrajan et al. (2008) analysed the importance of cost –benefit and usage of opening a no-frill account. This study aimed to analyze the results of the 100% no frills financial inclusion drive in Cuddalore district of Tamil Nadu in terms of coverage by geographical and other categories; cost involved in account opening and maintenance as also the transactional usage behaviour of such accounts. They calculated the breakeven point after which the banks would earn revenues. The study analyzed the willingness and unwillingness of households to open bank accounts as reported by different banks and geographical category in order to understand the performance of different stakeholders involved in the execution of the project. They

did Coverage study, survey, interview and calculated the total Cost of opening bank account and the breakeven cost which came below total cost. The study presented an overall position of the financial inclusion project in Cuddalore district after one year of its implementation. They found that though the project had a strong social mission of financial inclusion, the mission had not been fully translated into satisfactory action on the ground. There were several gaps on the in its implementation which needed to be corrected.

Chavan & Birajdhar(2009) studied the role of micro finance as means of credit-based poverty alleviation and enhancing financial inclusion. In this study primary data on SHGs, micro finance institutions, access and affordability of micro finance for women borrowers and movement of women borrowers out of SHGs were taken. The primary data was collected from a field level survey conducted in 2006 through interviews of both SHGs and SHG beneficiaries in the district using structured schedules. There were 35 SHGs selected for the survey and three members from each SHG were interviewed making the total sample size of 105 members in the Kancheepuram district of Tamil Nadu. The findings of this study showed that micro finance in India had limited scale and access further women are its main client which again showed limited spread. Not only this they charge relatively high rates of interest on SHG loans, as compared with the rates of informal sector. Due to interest rates and irregular repayments of loans there is caused dropouts of members. Hence, the observation reflects the considerable scope for micro finance to evolve as an effective means of financial inclusion that is accessible and affordable for the excluded groups/regions and that can also help loosen the grip of informal sources of finance and ensure permanent inclusion of the excluded sections in the ambit of formal finance.

Ramaji (2009) conducted study to assess the implementation of the financial inclusion drive and usage of banking services by households in Gulbarga district in Karnataka, one of locations claimed to have achieved 100% financial inclusion. This study relied mainly on quantitative techniques. Surveys, in-depth interviews, and in-situ observation were the primary data collection methods utilized during the study. A structured questionnaire survey was administered to 999 respondents, spread over 50 villages. This survey collected information on logistics and awareness levels regarding the drive, opening and usage of accounts, availability and perceptions of formal and informal finance for households, and the financial habits of respondents. It came from the study that being a poor village this aimed at having 100% financial inclusion because there were NERGP playing a very heavy role in opening household

bank accounts, giving them financial literacy and creating awareness about saving options.

Thus, we can say that the financial inclusion drive in India is very important in order to accelerate economic development. The basic feature of India had a large number of poor populations who do not have access to even \$ 2 a day. Thus this section of population do not have bank account and are thus out of the benefit of financial system of the country. In India the level of financial inclusion is defined by banking branches, ATM, number of employee for and deposit and credit ratio per select population. Every state had its particular features there are some where 100% financial inclusion may be beacuse Indian economy is also characterized by high influence of microfinance institutions (MFI), self-help groups (SHG), nongovernmental organization (NGO) besides banks. There is also one study which depicts the role of Indian Post to include large number of population. On the part of government also various social security schemes are there for poor people. Still there is much need to create awareness, financial literary among the section of excluded segment to know the importance of financial inclusion and to bring them under the ambit of it. On the part of the Government there is also a need to make policy level change and bring the drive of 100% inclusion.

Conclusion

The studies had identified that financial inclusion is a main driving force to bring a section of population into the ambit of financial institution of a country. This paper attempted to study various aspect of financial inclusion on cross country basis and through national study analysis. Financial inclusion as we known is the delivery of financial service to the lower segment of the society who is not a part of a formal financial structure of a country. Some study of cross country analysis and various national level analyses laid an important focus on the relationship between financial inclusion and economic development. These theories suggested that economic development is positively correlated with financial development of a country or state. Those countries who have strong access to formal financial system had more progressive growth opportunity then the country who do not have the access to it. The Indian study show that there is exclusion and that poorer sections of the society have not been able to access adequately financial services from the organized financial system. They suggest that there is an imperative need to modify the credit and financial services delivery system to achieve greater inclusion. These institutions should meet the credit requirements of marginal and sub-marginal farmers in the rural areas in a fuller measure. While banks and other financial institutions can also take some efforts on their own to improve the absorptive capacity of the clients, it is equally important for Government at various levels to initiate actions to enhance the earnings capacity of the poorer sections of the society. With policy level change and with the channelization of MFI, NGO and SHG and more social security protection program there can be the desired change and greater inclusion.

References:

- 1. Aghion, Philippe and Bolton, Patrick. (April 1997). A Theory of Trickle-Down Growth and Development. *The Review of Economic Studies*, Vol. 64 (2) 151-172.
- 2. Asher, M.G. & Shankar S. (2007). Microfinance Bill: Need for Major Re-think. [accessed 4 November 2007] Available at www.karmayog.org/billsinparliament/upload/8457/ CFO_Article-final.doc.
- 3. Asian Development Bank (ADB) (2000). Finance for the Poor: Microfinance Development Strategy.
- 4. Banerjee, Abhijit V. and Newman, Andrew F. (April 1993). Occupational Choice and the Process of Development. *The Journal of Political Economy*. Vol. 101(2) 274-298.
- 5. Beck, Thorsten, Demirguc-Kunt, Asli and Honahan, Patrick. (February 2009). Access to Financial Services: Measurement, Impact, and Policies. *The World Bank Research Observer Advance Access, Oxford University Press.*
- 6. Bhatnagar, S. (2008). Awaiting Microfinance: A Study on the Financial Needs of the Poor in a Tribal Area in Gujarat. Paper presented at the 'Microfinance in India: Evolving strategies to deepen and broaden the outreach conference, 14 May 2008, *Mahatma Gandhi Labour Institute, Ahmedabad, India*
- 7. Bhatt, E. 2006. Interview. *Times of India, Ahmedabad*, 14 October 2006.
- 8. Burgess, Robin and Pande, Rohini. (August 2003). Do Rural Banks Matter? Evidence from the Indian Social Banking Experiment. *London School of Economics and Political Science, London.* Discussion Paper No. DEDPS/40.
- 9. Honohan, Patrick. (March 15-16, 2007). Cross Country Variation in Household Access to Financial Services. Paper prepared for the *World Bank Conference on Access to Finance*.
- 10. Khandker, S.R. (1996). Fighting Poverty with Microcredit: Experience of the Grameen Bank and Other Programmes in Bangladesh. *Washington DC: World Bank*.
- 11. Khandker, S.R. (2003). Microfinance and Poverty. Policy Research Working Paper No. 2945. Washington, DC:World Bank.
- 12. King Robert G. and Levine R. (1993). Finance and Growth: Schumpeter Might Be Right. *The Quarterly Journal of Economics*. Vol. 108(3): 717-738.
- 13. Levine, Ross. (June 1997). Financial Development and Economic Growth: Views and Agenda. Journal of Economic Literature. Vol. XXXV. 688-726.
- 14. Levine R. and Zervous S. (1998). Stock Markets, Banks and Economic Growth. *American Economic Review*. Vol. 88(3), 537-558.
- 15. Mathew, P. M. (July 31, 2006). Financial Inclusion Calls for New Initiatives. *The Hindu*. Monday.
- 16. Mehrotra, Nirupam, Puhazhendhi, V., Nair G Gopakumaran and Sahoo, B.B. (2009). Financial Inclusion-An Overview. *Department of Economic Analysis and Research, National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD)*, Occasional Paper No. 48, Mumbai.
- 17. Menon, R. 2005. Banking for the Poor: Micro Credit Gathers Force. *India Together* [accessed 7 July 2007]. Available at: www.indiatogether.org

- 18. Mohan, Rakesh. (2006). Economic Growth, Financial Deepening and Financial Inclusion, Address by Rakesh Mohan, Deputy Governor, Reserve Bank of India at the Annual Bankers' Conference 2006, November 3, Hyderabad.
- 19. Natu, A., Bansal, A., Kurien, A., Khurana, G. and Bhushan, T. (2008). Linking financial inclusion with social security schemes. *IFMR Working Paper Series*. No. 22. Centre for Microfinance, IFMR.
- 20. Navajas, S., Schreiner, M., Meyer, R.L., Gonzalez Vega, C. & Meza, J. (2000). Microcredit and the Poorest of the Poor: Theory and Evidence from Bolivia. *World Development*, 28(2): 333–346.
- 21. Priyadarshee, A. 2010. Microfinance Product Development for the Poorest: A Theoretical Framework, and Empirical Observations from India. Paper presented at the 'Third International Conference on Microfinance', Pondicherry University, 22–24 January.
- 22. Rajan, R.G. and Zingales, L. (2003). Saving Capitalism from Capitalists. Crown Business New York.
- 23. Rangarajan committee Government of India. (January 2008). *Report of the Committee on Financial Inclusion*. Chairman C. Rangarajan.
- 24. Sarma, Mandira. (June 2008). Index of Financial Inclusion. *Indian Council for Research on International Economic Relations*, Working Paper No. 215.
- 25. Sarma, M. and Pais. J. (2010). Financial Inclusion and Development. *Journal of International Development*.
- 26. Thyagarajan, S. & Venkatesan, J. 2008. Cost-benefit and Usage Behaviour Analysis of No Frills Accounts: A Study Report on Cuddalore District. College of Agricultural Banking and IFMR |accessed 18 December 2012|. Available at http://ifmr.ac.in/cmf/news Thyagarajan_No%20Frills_Cuddalore.pdf
- 27. United Nations (2006). Building Inclusive Financial Sectors for Development. Department of Economic and Social Affairs, United Nations.
- 28. World Bank. (2008). Banking the Poor: Measuring Banking Access in 54 Economies. World Bank, Washington DC.
- 29. World Bank. (2009). Finance for All?: Policies and Pitfalls in Expanding Access. World Bank Policy Research Paper, World Bank.
- 30. Yunus, Muhammad. (1998). Banker to the Poor: Micro-lending and the Battle against World Poverty, Public Affairs, New York

A Study of Gender Differences In Mathematics Achievement at Senior Secondary Level

Gunjan Dubey* & Ms. Ayesha Farheen**

ABSTACT: In today's era girls are outperforming boys in mathematics, indeed they are outperforming in almost every field, the household chores are now broken and the girls of today have emerged as a successful competitor in almost every field. But many studies in the past trace that boys achievement in mathematics is higher than girls, however contradictory studies in present have shown girls increased interest in mathematics and their higher achievement. Triggered with this debate the investigators were ultimately interested in finding the answer of the question whether gender have any effect on mathematics achievement.

The present paper attempts to give comparative study of performance of girls and boys in mathematics in senior secondary schools affiliated to AMU, (govt), Aligarh Muslim University, board and CBSE (pvt) board. Both of these boards follow CBSE pattern.

Education in the largest sense is any act or experience that has a formative effect on the mind, character or physical ability of an individual. In its technical sense, education is the process by which society deliberately transmits its accumulated knowledge, skills and values from one generation to another.

The origin of mathematics is hidden in the evolution of nature. Creation of nature and mathematics is closely related. Mathematics is an exact science and involves high cognitive abilities and powers. National Policy on Education (1986) has considered the importance of mathematics in general education and suggested that, "Mathematics should be visualised as the vehicle to train a child to think, reason, analyse and to articulate logically. It enters every walk of life. Therefore, in schools much impetus is given to the study of mathematics. Academic achievement in mathematics most likely seems to be one of the predictors of people's success in their career in particular.

Mathematics is a very important subject for most vocations and higher

^{*}Associate Professor, Deptt. of Education, Aligarh Muslim University, Aligarh

^{**}Guest Faculty, Deptt. of Home Science, Aligarh Muslim University, Aligarh

specialized courses of learning. In this world of today nobody can live without mathematics for a single day. Mathematics is intimately involved in every moment of a person's life. Right from human existence on this earth it has been a faithful companion to him. When man first wanted to answer the question like, how many? How much? etc., he invented Arithmetic. The knowledge of this subject was born out of felt needs of human. This knowledge is therefore indispensable and as the needs grow, the knowledge is bound to grow. Ignorance of mathematics will be a great handicap in the progress of student's as well as, its study will benefit him to a great extent. Higher secondary education remains incomplete and incomprehensive if mathematics is excluded from it. Therefore, no other subject can be a substitute for mathematics. Educationists have begun to feel that education up to the middle standard is not sufficient for the citizen of today. The period of compulsory education needs extension from middle to the senior secondary level. Naturally, on the extension of the period of compulsory education from 8 to 12 years, mathematics has to be retained as a compulsory subject for the longer duration of compulsory education. It is generally seen in Indian society that girls mostly preferred to opt subjects like biological sciences and social sciences and boys mostly opt for mathematics in the past few decades. But now we see that girls enrolment in mathematics and courses related to mathematics like engineering, BCA, MCA etc has increased. Various studies shows that gender is related to mathematics achievement as Friedman (1989) and Kimball (1989) reported that female students had shown more positive achievement in mathematics in comparison to their male counterparts. Hyde, et al (1990), concluded that, gender differences in mathematics performance are small, however the lower performance of women in problem solving evident in high school require attention. However, a contradictory study by Meece and Parsons(1982), concluded that as compared to men, fewer women elect to take advanced level mathematics courses and enter mathematically oriented careers.

Therefore, several questions aroused in mind of researchers as:

- Is there any psychological difference in girls and boys learning related to a) mathematics?
- Is the attitude of girls towards mathematics bent toward negativism? b)
- Are girls outperforming boys in mathematics in present century? c)
- Does maths scare girls? d)
 - Besides this, there are several other such questions that came into the mind of

the researcher. Therefore, the researcher becomes ultimately interested in finding the answers to such queries by conducting the present study. Because these questions are not answerable unless a real cause of problem is found out, so, the present study comes into existence. Most of the studies conducted so far have attempted to find out the comparison of achievement level among different groups at primary and secondary level. The present study takes into account senior secondary students because at this stage students develop firm view about choice of their subjects.

Objectives of the Problem

The present study has achieved following specific objectives. They are as follows:

- 1) To assess the mathematics achievement of senior secondary boys and girls,
- 2) To find out the difference in mathematics achievement of boys and girls,
- 3) To compare the mathematics achievement of C.B.S.E and A.M.U senior secondary students.

Method of the study

The basic purpose of the study is to compare the mathematics achievement of girls and boys at senior secondary level. Hence, the study was conducted in four schools, out of four schools, two were AMU(govt) schools and remaining two were CBSE(pvt) schools.

Population and sample of the study

The well-specified and identifiable group is known as population. The population selected for the present research work comprises of senior secondary students of AMU schools and CBSE boards of Aligarh district enrolled during the session 2010-2011.

The schools were selected by purposive sampling techniques. The school wise distributions of sample were as follows:

S. No. Name of school No. of students Senior Secondary (boys) A.M.U. 50 1 2 Senior Secondary (girls) A.M.U 50 3 50 Iqra Public School (girls) 4 Aligarh Public School (boys) 50 Total no. of students 200

Table 3.1 Name of school with no. of students

The population selected for the present research work comprises of senior secondary students of AMU and CBSE board. The students were selected by random sampling techniques.

Tools

For measuring the mathematics achievement of senior secondary students, achievement test in maths (ATM) by Nagappa P.Shahapur and K.M Aslam Khan was employed. This tool consists of 100 questions of multiple choice types and the time required for its completion was one and a half hour.

Scoring of the data

Nagappa achievement test in mathematics consists of 100 multiple choice questions. The scoring was done by using the scoring key. For each correct answer one mark was given and zero for each wrong answer. At the end all the marks was summated that gives the achievement result of a particular student. The obtained data was organized and analyzed statistically with the help of SPSS (Statistical Packages of Social Science) software.

Response rate

The investigator herself gave the test to the students after counting and collected them at the same time. The students were supposed to make the entry on the paper so that all the test papers should be collected. After completion of the test, test paper was collected by announcing the names of the students. In this way 100% response rate was achieved. Since the instructions given to students for filling up the achievement test were clear and precise the students responded correctly. So, almost all the test papers were found usable for calculating the achievement of the students.

Analysis of the data

In order to bring clarity in expression, objective wise analysis was done and presented below:

Objective 1) To assess the mathematics achievement of senior secondary boys and girls.

The first objective of the study was concern with the assessment of mathematics achievement of senior secondary boys and girls of AMU and CBSE schools during the academic session 2010-11.

To test the objective, directional hypothesis H.1 was formulated and subjected to empirical verification. The hypothesis stated that-

H.1) The mathematics achievement of boys is expected to be high. To verify the hypothesis H.1, the mean scores of mathematics achievement were compared in table no.1

	Boy	'S	Girls		
Mean Scores	AMU	CBSE	AMU	CBSE	
	46.52	33.94	53.30	33.52	

It is revealed from the above table that mean mathematics scores of AMU girls students are higher than boys in AMU schools. However, the mean mathematics scores of boys and girls of CBSE boards are almost equal . It can be accessed from the above table that the mean score in mathematics achievement of girls students were either higher or equal to that of boys. Therefore, the hypothesis H.1 i.e the mathematics achievement of boys is expected to be high is rejected.

Objective 2) To find out the difference in mathematics achievement of boys and girls

The objective of the study was concern with finding out the statistical difference in mathematics achievement of all girls and boys of AMU and CBSE board. To test the objective, null hypothesis HO.2 was formulated and subjected to empirical verification. The hypothesis stated as:

HO.2) There is no significant difference in academic achievement of mathematics among girls and boys at senior secondary level.

To verify the hypothesis HO.2, the mean scores of mathematics achievement of all boys and girls were compared by t-test. The result of this analysis was presented in table no.2.

Table 2: t-test comparison of mathematics achievement of to	tal boys and
girls of AMU and CBSE board	

Sam ple	No. of students	M ean score	SD	SEM	df	t'value calculated	Level of Significance	Null Hypothesis R/A
Girls	100	43.41	17.97	1.797	198	2.372	0.05	R
B oys	100	10.23	15.46	1.547				

It is revealed from the above table that calculated t value is 2.372 while table value is 1.97 at 0.05 level of significance and degree of freedom 198. Thus, calculated value is more than the table value, this shows that there is significant difference between two mean groups. Therefore, the null hypothesis is rejected. As the mean score of girls is higher than boys, it can be safely interpreted that senior secondary girls have higher achievement in mathematics than senior secondary boys.

Objective 3) To compare the mathematics achievement of A.M.U and C.B.S.E students.

The objective of the study was concern with comparing the mathematics achievement of girls and boys of AMU and CBSE board. To test this objective, several null hypotheses were formulated and subjected to empirical verification. The hypothesis HO.3.1 stated as:

Ho.3.1) There is no significant difference in mathematics achievement among girls enrolled in AMU and CBSE board at senior secondary level.

To verify the hypothesis HO.3.1, the mean scores of mathematics achievement of girls enrolled in AMU and CBSE boards were compared by t-test. The result of this analysis was presented in table no.1.3.

Table 3: t-test comparison of mathematics achievement of girls of AMU and CBSE board

Sample	No. of students	Mean score	SD	SEM	df	t' value calculated	Level of Significance	Null Hypothesis R/A
AMUGirls	50	53.30	15.58	2.2 03	98	7.546	0.05	R
CBSE Girls	50	33.52	14.50	2.051				

It is revealed from the above table that calculated t value is 7.546 while table value is 2.64 at 0.01 level of significance and degree of freedom 98. Thus, calculated value is more than the table value, this shows that there is significant difference between two mean groups. Therefore, the null hypothesis 3.1 was rejected. So it can be interpreted that AMU girls students have higher mathematics achievement than CBSE girls students as their mean score is higher.

Ho.3.2) There is no significant difference in mathematics achievement among boys enrolled in AMU and CBSE board at senior secondary level.

To verify the hypothesis HO.3.2, the mean scores of mathematics achievement of boys enrolled in AMU and CBSE boards were compared by t-test. The result of this analysis was presented in table no.4

Table 4: t-test comparison of mathematics achievement of boys of AMU and CBSE board

Sample	No. of students	Mean score	SD	SEM	df	t' value calculated	Level of Significance	Null Hypothesis R/A
AMU boys	50	46.52	14.816	2.095	98	4.235	0.05	R
CBSE boys	50	33.94	13.531	1.914				

It is revealed from the above table that calculated t value is 4.235 while table

value is 2.64 at 0.01 level of significance and degree of freedom 98. Thus, calculated value is more than the table value, this shows that there is significant difference between two mean groups. Therefore, the null hypothesis 3.2 was rejected, as the mean score of AMU boys is higher than CBSE boys, it can be interpreted that AMU boys are better in mathematics achievement than CBSE boys.

Ho.3.3) There is no significant difference in mathematics achievement of AMU girls and boys at senior secondary level

To verify the hypothesis HO.3.3, the mean scores of mathematics achievement of girls and boys enrolled in AMU board were compared by t-test. The result of this analysis was presented in table no.5.

Table 5: t-test comparison of mathematics achievement of girls and boys of AMU board

Sample	No. of students	Mean score	SD	SEM	đſ	t' value calculated	Level of Significance	Null Hypothesis R/A
AMU girls	50	53.30	15.58	2.203	98	2.925	0.05	R
AMU boys	50	46.52	14.82	2.095				

It is revealed from the above table that calculated t value is 2.925 while table value is 2.64 at 0.01 level of significance and degree of freedom 98. Thus, calculated value is more than the table value, this shows that there is significant difference between two mean groups. Therefore, the null hypothesis 3.3 was rejected at both the levels of significance, as the mean score of AMU girls is higher than AMU boys, it can be interpreted that AMU girls are better in mathematics achievement than AMU boys.

Ho.3.4) There is no significant difference in mathematics achievement of CBSE girls and boys at senior secondary level

To verify the hypothesis HO.3.4, the mean scores of mathematics achievement of girls and boys enrolled in CBSE board were compared by t-test. The result of this analysis was presented in table no.6.

Table 6: t-test comparison of mathematics achievement of girls and boys of CBSE board

Sample	No. of students	Mean score	SD	SEM	đf	t' value calculated	Level of Significance	Null Hypothesis R/A
CBSE girls	50	33.52	14.506	2.051	98	0.360	0.05	A
CBSE boys	50	33.94	13.531	1.914				

It is revealed from the above table that calculated t value is 0.360 while table value is 1.98 at 0.05 level of significance and degree of freedom 98. Thus, calculated value is less than the table value, this shows that there is no significant difference in mathematics achievement of CBSE boys and girls. Therefore, the null hypothesis 3.4 was accepted. It shows that senior secondary girls and boys in CBSE schools are equal in mathematics achievement.

Ho.3.5) There is no significant difference in mathematics achievement of CBSE girls and Λ MU boys at senior secondary level.

To verify the hypothesis HO.3.5, the mean scores of mathematics achievement of girls and boys enrolled in CBSE and AMU boards respectively were compared by t-test. The result of this analysis was presented in table no.7.

Table 7: t-test comparison of mathematics achievement of girls and boys of CBSE and AMU board

Sample	No. of students	Mean score	SD	SEM	df	t' value cakculated	Level of Significance	Null Hypothesis R/A
CBSE girls	50	33.52	14.506	2.051	98	4.352	0.05	R
AMU boys	50	46.52	14.816	2.095				

It is revealed from the above table that calculated t value is 4.352 while table value is 2.64 at 0.01 level of significance and degree of freedom 98. Thus, calculated value is more than the table value, this shows that there is significant difference in mathematics achievement of CBSE girls and AMU boys. Therefore, the null hypothesis 3.5 was rejected. As the mean score of AMU boys is higher than CBSE girls, it can be interpreted that AMU boys are better in mathematics achievement than CBSE girls.

Ho.3.6) There is no significant difference in mathematics achievement of AMU girls and CBSE boys at senior secondary level.

To verify the hypothesis HO.3.6, the mean scores of mathematics achievement of girls and boys enrolled in AMU and CBSE boards respectively were compared by t-test. The result of this analysis was presented in table no.8.

Table 8: t-test comparison of mathematics achievement of boys and girls of CBSE and AMU board respectively

Sample	No. of students	Mean score	SD	SEM	df	t' value calculated	Level of Significance	Null Hypothesis R/A
CBSE boys	50	33.94	13.531	1.914	98	7.182	0.05	R
AMU girls	50	53.30	15.580	2.203				

It is revealed from the above table that calculated t value is 7.182 while table value is 2.64 at 0.01 level of significance and degree of freedom 98. Thus, calculated value is more than the table value, this shows that there is significant difference in mathematics achievement of CBSE boys and AMU girls. Therefore, the null hypothesis 3.6 was rejected. As the mean score of AMU girls is higher than CBSE boys, it can be interpreted that AMU girls are better in mathematics achievement than CBSE boys.

Major Findings:

Major findings of the present study are following:

- The mean mathematics scores of AMU girl's students were higher than boys in AMU schools. However, the mean mathematics scores of boys and girls of CBSE boards are almost equal. It can be accessed from the above finding that mathematics achievements of girl's students were either higher or equal to that of boys.
- 2) As the total mean score of girls is higher than boys, it can be safely interpreted that senior secondary girls have higher achievement in mathematics than senior secondary boys in both the boards.
- 3) AMU girl's students were better in mathematics achievement than CBSE girl's students.
- 4) Mathematics achievements of AMU boys were better than the senior secondary students studying in CBSE board.
- 5) AMU girls were better in mathematics achievement than AMU boys.
- 6) Senior secondary girls and boys in CBSE schools were equal in mathematics achievement as their means were almost equal.
- 7) AMU senior secondary boys were better in mathematics achievement than CBSE girls.
- 8) AMU senior secondary girls were better in mathematics achievement than CBSE boys.

Major Conclusions and their Discussions:

1) Girls perform better than boys on a mathematics achievement test

It has been found that overall girls have higher scores in mathematics test than boys. The main reason for this was the extra efforts put in by female students for scoring higher in mathematics and to remove the myth which is prevailing in the society that boys perform better in mathematics. The result obtained in this study was supported by **Friedman (1989) and Kimball (1989)**. They reported that female students had shown more positive achievement in mathematics in comparison to their male counterparts. **Hyde, et al (1990)** also reported that, gender differences in mathematics performance are small, however the lower performance of women in problem solving evident in high school require attention.

2) Government school (AMU) students perform better than private school (CBSE) students

It has been found that AMU students both boys and girls perform better than

CBSE students. The reason for this trend might be the extra efforts put in by teachers of govt. schools in enhancing the mathematical skills of the students.

Thus, this result shows that the type of institution had a positive influence on the achievement of students towards mathematics. The reason may be that AMU is a Central University and it provides all the necessary facilities. The necessary facilities are also available in private schools but their quality and quantity is not up to the mark. Therefore, this type of atmosphere lowers down the mathematics achievement of private school students. Taylor et al (1996), in his study found that private students perform better in mathematics achievement as compared to government students, however the results obtained in the present study were contradictory as pointed by Taylor.

When the data were analyzed to see the relationship between the Mean Score of female of AMU and CBSE schools, it was observed that there is significant difference in the scores of both. Thus, this result indicates that the female students of AMU perform better than CBSE female students. In every case AMU students performed better than CBSE students.

3) Government (AMU) boys performed better than private (CBSE) girls:

When the data was analyzed to see the difference in mathematics achievement between AMU boys and CBSE girls, it was observed that AMU boys had significantly higher scores in comparison to their female counterpart in CBSE board.

The result obtained in this study was also supported by **Meece and Parsons** (1982) who reported that because of higher scores of boys in mathematics, they chooses this line and fewer females choose mathematically oriented careers.

Therefore, the present study negates the myth that girls are poor in mathematics achievement. But the generalization of the findings of this study is limited. It is an exploratory study and conducted comparatively in small sample of senior secondary schools of AMU and CBSE board. A large and more representative sample of students of different schools from wider region and with more rigorous design is likely to prove quite rewarding in throwing more light on difference in mean achievement of mathematics scores of both sexes.

References

- 1. Best, J.W., (1983): Research in Education, Prentice Hall of India, Pvt. Ltd.. New Delhi.
- 2. Campbell, J.R. (1991), "The roots of gender inequality in technical areas." Journal of research in

- science teaching, Vol.28 (3), PP 251-264.
- 3. Campbell, J.R., and Beandry, S.J (1998), "Gender gap linked to differential socialization for high-achieving senior mathematics students." Journal of educational research, Vol.91 (3), PP 140-147.
- 4. Friedman, L. (1989). "Mathematics and the gender gap: a meta-analysis of recent studies on sex difference in mathematic tasks", review of educational research, Vol.59, No.2, PP. 185-213.
- 5. Good, C.V. (1973), Dictionary of education, McGraw-Hill book company, New York.
- 6. Greene, B.A., DeBacker, T.K., Ravindran, B., and Krows, A.J. (1999), "Goals, values and beliefs as predictors of achievement and effort in high school". Mathematics classes sex role, Vol. 40(5), PP. 421-458.
- 7. Halpern, D.F., and La May, M.L. (2000), "The smarter sex: a critical review of sex differences is intelligence". Educational psychology review, Vol. 12(2), PP. 229-246.
- 8. Hawes, LynneSalp, Hawes, Gene, R. (1982), "The concise dictionary of education, van nostrand reinhold company, New York, Clincinnale, Toranto, London, Melbourne.
- 9. Heller, K.A, and Parsons, J.E. (1981), "Sex difference in teacher's evaluative feedback and student's expectancies for success in mathematics", child development, Vol.52, PP. 1015-1019.
- 10. Helwig, R., Anderson, L., and Tindal, G. (2001), "Influence of elementary student gender on teacher's perceptions of mathematics achievement", Journal of educational research, Vol.95, No.2, PP. 93-102.
- 11. Hilton, T.L. and Berglund, G.W. (1974), "Sex differences in mathematics achievement: a longitudinal study", Journal of educational research, Vol.67. PP. 231-237.
- 12. Hyde, J.S, Fennema, E., Lamon, S.J. (1990). "Gender differences in mathematics performance: a meta-analysis", psychological bulletin, Vol.107, No.2, PP.139-155.
- 13. Jha, J.S. (1992), "Attitude towards mathematics and achievement: a correlative study", educational review, Vol. XCVIII, No. 5 and 6.
- 14. Kevelu, J.M., and Rogers, W.T. (1998), "A multi level analysis of cultural experience and gender influences on causal attributions to perceived performance in mathematics", British journal of educational psychology, Vol.68. PP. 25-37.
- 15. Kimball, M.M. (1989), "A new perspective on women's mathematics achievement", psychological bulletin, Vol.105, No.2, PP. 198-214.
- 16. Mecce, J.L., and Parsons, J.E. (1982), "Sex differences in mathematics achievement: towards a model of academic choice", psychological bulletin, Vol.91, No.2, PP. 324-348.
- 17. Taylor, P.T., Leder, G.C., Pollard, G.H., and Atkin, W.J. (1996), "Gender differences in mathematics: trend in performance", psychological report, Vol. 78, PP. 3-17.
- 18. Government of India report on' National Policy of education' ,1986.

Human Resource Development Through Jan Shikshan Sansthans:

A Study of Seva Mandir Jan Shikshan Sansthan, Anantapur District, Andhra Pradesh

G. Venkata Naidu*

Strength of a society lies in the role played by the education including training, development and allocation of its manpower resources. Education has been conceived as training for better life and better social adjustment in a community or social group. It is one of the social processes which are fostered by society for life in social group. It can be said that education is the complete development of individuality so that one can make original contribution to human life according to one's best ability and capacity.

The education system has greatly benefited the oppressed and downtrodden sections of Indian society and helped individuals from these sections to acquire higher status and esteem in the society to a large extent. Although disparities still exist, efforts are on to equalize educational and consequently social opportunities to each and every citizen of India.¹

Education has played an important role in social transformation in our country and it will continue to do so in future as well. However, a lot more is desired in this direction as social inequalities still persist in our country. We need to provide easy access to education to the weaker sections of society particularly to the Economically poor, Scheduled Castes and Scheduled Tribes, Minorities, Other Backward Communities and women.

The changing concept of adult education:

To begin with, it was limited to one of the main components of literacy that is teaching illiterate adults how to read, write and arithmetic's. With the passage of time it was realized that mere literacy was insufficient to prepare illiterates as effective citizens of the nation.

The concept of adult education was enlarged to include the knowledge of

^{*}Associate Professor, Deptt. of Economics, S.K.University, Anantapur, A.P.

certain useful subjects such as hygiene, civics and the problems of day to day life. A new concept emerged i.e. the concept of 'Social Education'. The tern 'Adult Education' is back in use once again because the tern adult education was better understood by UNESCO and many other organizations throughout the world.

National policy on Education:

The New Education policy of 1986 was amended in 1992 and has emphasized both on formal education particularly primary education, Non-formal education and adult education programmes.

Continuing Education:

The Continuing Education Scheme part of adult education programme provides a learning continuum to the efforts of Total Literacy and post Literacy programmes in the country. Main thrust is on providing further learning opportunities to neo-literates by setting up of Continuing Education Centers (CECs) which provide area-specific, need based opportunities for basic literacy. Upgradation of literacy skills, Pursuit of alternative education programmes, vocational skills and also promote social and occupational development. The scheme also undertakes a number of important programmes such as-Equivalency programme, facilitating the participants to acquire or upgrade their vocational skills and take up income generating activates; Quality of life improvement programme to equip learner and the community with essential knowledge, attitude, values and skills to raise their standards of living; and individual interest promotion programme, providing opportunities for learners to participate and learn about their individually chosen social, health, physical, cultural and artistic interests.²

Jan Shikshan Sansthan:

The Scheme of Jan Shikshan Sansthan (JSS) is a unique scheme designed by the Government of India initially launched as Sramik Vidyapeeth aiming at improving the vocational skills and quality of life among the industrial workers and people migrating from rural to urban settings. JSSs are institutes of people's education focusing on the poor, the illiterates, the neo-literates, the under –privileged and the unreached. The Jan Shikshan Sansthans are unique in that they do not provide just skill development, but link literacy with vocational skills and provide large doses of Life Enrichment Education (LEE) to the people. They do not work in isolation but

aim for convergence with other stake holders in the development of the society. It is that Endeavour to shape their beneficiaries into self reliant and self-assured employees and entrepreneurs.

Jan Sikshan Sansthans are different from other vocational training institutions as they offer qualitative vocational skills and technical knowledge for low cost and also provide need based and illiteracy-linked vocational skills. Reach out to the clientele in their areas unlike other institutions which the clientele has to access whether near or far offer a multi-faceted skill-knowledge-awareness enhancement and outlook formation trainings and inputs and empowerment-oriented interventions in respect of social, economic and health status improvement of women and adolescent girls.³

Statement of the problem:

In the post-Independent period, particularly during planning era various measures have been taken to improve the literacy levels of the target population in particular and adult literacy in general. The centre and state governments have introduce various educational programmes to improve the literacy levels as well as educational standards of the rural messes. However these educational schemes / programmes have not succeeded in yielding the expected results on literacy front. Hence, the present study aims to analyze the impact of continuing education through Jan Shikshan Sansthan on vocational linked literacy levels in general and human resources development in particular in drought prone district of Anantapur.

Need and scope for the study:

It is evident from the above review of literature that the so called adult education programmes especially National Adult Education Programme, National Literacy Mission and Total Literacy Campaign, post-literacy Campaign have succeeded in enrolling a large number of illiterates for adult education. Most of the studies are concerned with the development of adult literacy and their implementation strategies. The studies conducted on the impact of JSS are very limited. These limited studies did not identify the factors that are essential for the development of human resources through Jan Shikshana Sansthans on continues basis in India. Hence, the present study proposes to fill this gap. The main theme of this study is to evaluate the skill oriented programmes implemented by Jan Shikshan Sansthan for enhancement of human recourses and socio-economic status of the beneficiaries.

Objectives of the Study:

Though the main objective of launching the JSS is to create some skills among the unemployed youth, the following are the specific objectives of the study.

- 1. To discuss the various adult education and training programmes in independent India, so as to understand the background of JSS programme.
- 2. To study the Origen and growth of Jan Sikshan Sansthans and their role in improvement of human resources.
- 3. To enlist the socio-economic profiles of the selected beneficiaries of JSS.
- 4. To analyze the role of Seva Mandir JSS in promotion and development of human resources.
- 5. To assess the impact of Seva Mandir JSS on socio economic conditions of the selected beneficiaries.
- 6. To offer suggestions for the effective implementation of continuing education through JSS programme activities.

Methodology:

The methodological aspects of the study such as the area of the study, the universe and the sample, sources of data, analysis of data and the plan of the study have been detailed hereunder.

Area of the study:

The study area Anantapur district is one of the worst drought ridden districts in India. **Sampling Design:**

A multistage and purposive sampling technique is adopted in selecting the sample mandals. In the first stage one mandal from each revenue division is selected. In the second stage one JSS field center was selected from each Mandal. In the third stage 40 beneficiaries (respondents) who have completed vocational course from each JSS training centre. Finally, altogether three Mandals, three JSS centers and one hundred and twenty respondents have been selected as sample for this study.

Analysis of data and use of statistical tools:

The collected data have been processed and analyzed both manually and with the help of a computer. Both primary and secondary data were tabulated to bring out systematic analysis of the impact of continuing education through JSS on skill attainments of the learners at Sevamandir, JSS. Statistical tools like growth rate, averages, and percentages were used for interpretation of data.

Table-1 makes it clear that the number of courses conducted by Sevamandir JSS gradually increased from 11 to 57 during 2004 to 2010. But the number of courses sharply declined to 30 in 2011 and 27 in 2012. The same trend is observed in case of number of batches and number of candidates enrolled. It means that the number of courses have impact on number of batches as well as enrollment.

Table -1 Progress of Sevamandir JSS

S.No.	Year	No. of Courses	No. of Batches	Enrolment	Completed (%)
1	2004	11	11	156	156(100)
2	2005	32	127	1773	1773(100)
3	2006	45	304	4776	4776(100)
4	2007	49	311	3928	3928(100)
5	2008	55	312	5412	5412(100)
6	2009	56	365	6994	6994(100)
7	2010	57	371	7084	7084(100)
8	2011	30	114	2622	2622(100)
9	2012	27	150	3481	3481(100)
	Total	362	2065	36226	36226

Source: Seva Mandir JSS, head quarters office records, Anantapur, (2004-2012)

Social Category Wise Beneficiaries:

The Seva Mandir Jan Shikshan Sansthan offered training activities to all social categories of the learners. Table-2 gives social category wise beneficiaries covered by Seva Mandir Jan Shikshan Sansthan Anantapur.

Table-2
Social Status of the Beneficiaries

Year	SC	ST	OBC	Minority	Others	Total
2003-2004	33	-	48	-	75	156
2004-2005	454	41	508	-	770	1773
2005-2006	1809	393	1722	-	852	4776
2006-2007	746	280	1992	-	910	3928
2007-2008	820	328	3224	-	1040	5412
2008-2009	1500	774	3233	-	1487	6994
2009-2010	1490	692	3025	839	1038	7084
2010-2011	522	118	1145	359	478	2622
2011-2012	1089	265	931	827	369	3481
TOTAL	8463	2891	15828	2025	7019	36226

Source: Sevamandir JSS, Anantapur.

Table -2 reveals that the non-reserved category candidates dominating in enrolment during 2003-2004 and 2004-2005 with 48.08 per cent and 43.43 per cent respectively. In 2005-2006 the Scheduled Caste beneficiaries have slight edge over Backward Caste beneficiaries. in the remaining 5 years Backward Caste beneficiaries are more than other social categories with different proportions. During the last year of the study again Scheduled Caste with 31.28 per cent dominating the scene. The enrolment of minorities is gradually increased during 2009-2010 and 2011-2012.

Gender wise Beneficiaries:

The membership in Jan Shikshan Sansthan is not confined to any particular gender. The table -3 gives clear picture of gender wise beneficiaries during 2003-2004 to 2011-2012.

Table-3
Gender wise coverage of beneficiaries

Year	Male	Female	Total
2003-2004	110	46	156
2004-2005	574	1199	1773
2005-2006	1317	3459	4776
2006-2007	952	2976	3928
2007-2008	1378	4034	5412
2008-2009	1516	5478	6994
2009-2010	1662	5422	7084
2010-2011	336	2286	2622
2011-2012	203	3278	3481
Total	8048	28178	36226

Source: Seva Mandir Jan Shikshan Sansthan, Anantapur.

It is a welcome move to note that the female enrolment is higher than the males in all the years except 2003-2004.in 2011-12 the female trainees reached the mark of 94.17 per cent. On the whole the trainees, who underwent vocational training at Sevamandir JSS is 80.19 per cent. The total numbers of beneficiaries are gradually increased up to 2009-2010. But after that the total number of beneficiaries started to decline.

Table-3 further revealed that majority of the beneficiaries of the Jan Shikshan Sansthan, Anantapur are female constituting 80.19 per cent and remaining 19.91 per cent of the beneficiaries are male. Thus, it can be concluded that the programmes of the Seva Mandir Jan Shikshan Sansthan have benefited more women than men.

Trade/Course offered:

The Sevamandir JSS giving training in a good number of courses every year to increase the skills and capabilities of youth, such as photography, computer Application, Account package Tally, Dress marking and Designing. Herbal pesticides making, Radio & TV Mechanism, pappad making, Hand Embroidery, Cell phone Repair, Agarbathi making etc. The course wise distribution of the sample respondents

is given in the table-4.

It is evident from the table-4, that nearly 21. 67 per cent of the respondents have undergone training in dress making and designing course. About 15 per cent have been trained in computer application. Equal per cent (10.83%) of the respondents were given training on radio and TV mechanism and hand embroidery works by JSS Anantapur. Computer based account package course has been undertaken by 9.17 per cent of the respondents. Around 8.33 per cent have trained on cell phone repair course and 7.5 per cent were trained in pappad making. The remaining have undergone training in herbal pesticides making, agarbathi making etc.

Table -4
Distribution of the Respondents by Course

S.No.	Name of the course	No. of Respondents	Percentage
1	Photography	9	7.50
2	Computer Application	18	15.00
3	Account package TALLY	11	9.17
4	Dress Making Designing	26	21.67
5	Herbal pesticides making	6	5.00
6	Radio & TV Mechanism	13	10.83
7	Pappad Making	9	7.50
8	Hand Embroidery	13	10.83
9	Cell phone Repair	10	8.33
10	Agarbathi Making	3	2.50
11	Others	2	1.67
	Total	120	100.00

Source: Field Data.

Views on skills Acquired by Learners:

Apart from gaining knowledge, through vocational training courses the respondents have also acquire skills in training centers organized by Jana Sikshan Sansthan under study. The learner's views on the skills they have acquired are registered and presented in table-5.

Table -5
Views on Skills Acquired by the learners

S.No.	Responses	No. of Respondents	Percentage
1	Very good	87	72.50
2	Good	32	26.67
3	Poor	1	0.83
	Total	120	100.00

Source: Field Data

A comparison of knowledge gained and skills acquired by sample learners reveal that large number of the respondents have gained more skills than knowledge. The skills acquired by 72.50 per cent of the respondents as per their views are very highly useful for better earnings. Nearly 26.67 per cent of the beneficiaries have expressed that they have acquired good skills while only 0.83 per cent of the respondents reported that they acquired poor skills because they could not properly availed the facilities in JSS.

Utilization of Knowledge and skills:

The knowledge and skills acquired by the learners generally are helpful to start a self- employment or search for wage employment in public or private sector and employment in any other teaching institutions as tutors. On these aspects the opinions of the respondents were registered and presented in the table-6

Table-6
Views of Respondents on utilization of knowledge and skills

S.No.	Responses	No. of Respondents	Percentage
1	For Self Employment	78	65.00
2	For Wage Employment	31	25.83
3	Any other	11	9.17
	Total	120	100.00

Source: Field Data

Table-6 reveals that nearly 65 per cent of the respondents attended JSS vocational courses with a view to establish self-employment. Around 25.83 per cent are hoping for the employment either in private or public sectors. Nearly 9.17 per cent are searching to join as instructors after completion of the JSS vocational course

and searching for new avenues.

Life Enrichment Education:

As per the guidelines of Department of Adult Education, Ministry of Human Resource Development, Government of India, the JSS course shall include Life Enrichment Education to strengthen the mental and moral standards of the learners to lead an independent life. The responses of the learners of life enrichment education are registered during the period of study and the same are presented in the table-7.

Table-7
Views on Impact of Life Enrichment Education

S.No.	Responses	No. of Respondents	Percentage
1	Good	110	91.67
2	Average	8	6.67
3	Poor	2	1.67
	Total	120	100.00

Source: Field Data

It can observe from the above table -7, 91.67 per cent of the learners expressed very positively with good scores on impact of life enrichment education at sevamandir JSS. Nearly 6.77% of respondents expressed average impact, Remaining 1.67% of respondents reveal their opinion poor impact of education received by through JSS.

Impact on personality of the learners:

Sevamandir JSS has guided the learners on decent behavior, gregariousness and development of communication skills. The responses of the learners on the impact of JSS programmes on their personalities are presented in table-8.

Table – 8
Impact of JSS on Personality Development

S.No.	Responses	No. of Respondents	Positive	Negative
1	Decent Behavior	120	118(98.33)	02(1.67)
2	Gregariousness	120	120(100)	-
3	Communication Skill	120	108(90.00)	12(10.00)
	Total	360	346(96.11)	14(3.89)

Source: Field Data

Table-8 reveals that the impact of vocational courses offered by this JSS are I cent percent positive in case of development of gregariousness of the learners. On the development of decent behavior the courses have positive impact on 98.33 per cent of the learners and negative impact in case of only two learners constituting 1.67 per cent. The impact of the courses on the development of communication skills is positive in case of 90 per cent of the learners and only 10 per cent of them have negative opinion. Among the total respondents 96.11 percent reveals positive opinion, remaining 3.89 percent of the respondent's express negative opinion.

Social Awareness Gained by the Learners:

To live in the present day complex society, it is essential to have understanding and awareness of the society in which one is living. The improvement of social awareness of learners is a part of life in environment education. The social awareness of the respondents is presented in table-9.

Table- 9 reveals that the vocational courses have positive impact on the possession of social awareness by the learners. Nearly 95 per cent of the learners' awareness on societal values has been improved after undergoing training in different courses offered by Sevamandir JSS. The remaining 5 per cent of the learners responded negatively. The respect for customs and traditions has been improved in case of 85.83 per cent of the respondents, while no change was reported by 14.17 per cent of the respondents. The concept of Universal brotherhood ness was developed in case of 92.5 per cent of the respondents. Around 7.5 per cent have expressed negatively on improvement of Universal brotherhood ness.

Table – 9
Impact of JSS Courses on Social Awareness

S.No.	Responses	No. of Respondents		Percentage
1	Awareness on societal values	Improved	114	95
		Not Improved	6	5
2	Respect for customs and traditions	Improved	103	85.83
		Not Improved	17	14.17
3	Brotherhood ness	Improved	111	92.5
		Not Improved	9	7.5
	Total		120	100

Source: Field Data

Impact of the course on income:

The vocational training undergone by learners is expected to improve the income levels of the learners either by self-employment or wage employment or other activities. The impact of the JSS vocational training courses on income levels is given in table -10

Table -10
Impact of JSS vocational Training on Income Levels

S.No.	Responses	No. of Respondents	Percentage
1	Good	102	85.00
2	Average	10	8.33
3	Poor	8	6.67
	Total	120	100.00

Source: Field Data

It is evident from the table 10 that the vocational courses of JSS are useful for good improvement of the income levels for 85 per cent of the sample respondents. The remaining 8.33 per cent have expressed average increase, and (6.67%) expressed poor increase their income levels.

Impact on Asset Creation:

The creation of assets is another important aim of the JSS. The views of the sample respondents on the creation of assets are presented in table-11.

Table -11 makes it clear that nearly 64.17 per cent of the respondents reported that asset creation is good after taken training in JSS. It is important to note that more than one-fourth (25.83%) of the respondents reported that their assets are marginally increased. Only 10.00 pre cent of the reported that poor change in their asset creation. One of the reasons observed is that they have no proper idea on assets increases.

Table – 11
Impacts of JSS on Asset Creation

S.No.	Type of Change	No. of Beneficiaries	Percentage of total
1	Good	77	64.17
2	Average	31	25.83
3	Poor	12	10.00
	Total	120	100.00

Source: Field Data

Summary and Conclusion:

The scheme of Jan Shikshan Sansthan (JSS) is a unique scheme crafted by the government of India. JSSs are institutes of People's Education focusing on the poor, the ill-literates, the neo-literates, the under-privileged and the un-reached. The Jan Shikshan Sansthans are unique in the sense that they not only provide just skills but also large doses of Life Enrichment Education. They do not work in isolation but aim for convergence with other stakeholders in society. It is their endeavor to shape the beneficiaries into self reliant and self-assured employees and entrepreneurs. J S S also offers quality vocational skills and technical knowledge at a very low cost and covering the slum and remote rural areas. They are different from other vocational training institutions, which provide need based and literacy-linked vocational trainings.

The anantapur is a drought prone district depending up on monsoons. Large number of people is depending on agriculture which depends up on monsoons and agriculture alone cannot save the ordinary people. So they need to learn other skills required to take up subsidiary occupations. The Sava Mandir JSS is conducting different such types of courses which provide employment.

Findings of the Study:

Out of 120 sample respondents 69.17 per cent were in the age-group of 26-40 years and remaining are above 40 years age group. Nearly 17.40 per cent trainees were illiterates. 37.00 per cent are neo-literates and 45.60 per cent are with primary education.

• Around 44.17 per cent of the sample respondents who were interviewed belong

- to OBC. 30 per cent SC, 12.50 per cent ST. 15 per cent minorities and remaining 13.33 per cent belong to the general caste category.
- About 85 per cent of the respondents reported that their monthly income increased after getting trained at Sevamandir JSS.
- About 65 per cent respondents who were interviewed reported that they applied
 and utilized the skills gained through the JSS vocational courses for selfemployment and remaining 35 per cent for getting employment in different
 firms.
- The curse also developed positive thinking and self-confidence among 93.64 per cent of the beneficiaries.
- The JSS and the ZSS Anantapur have close collaboration and linkage in implementation of JSS training activities.
- The collaboration of JSS with NGO and GOs is satisfactory. It also linked with number of government line departments in the district.

Suggestions:

The success of an organization largely depends on the relationships that it maintains with similar nature of institutions. So good relationship shall be maintained between Parent Body Sevamandir and the JSS and Government and Non-Governmental Organizations.

- As per the JSS norms there should be a maximum of two members in the Board of Management (BOM) from the parent organization. In the Present BOM, Four Persons are from the parent organization i.e. Seva Mandir. It is suggestible that in future, not more than two members may be nominated from the parent organization.
- The efficiency of an institution depends on its coverage of large number of
 activities in the district like Anantapur. As such the extended collaboration
 with more number of NGOs and GOs will be suggested for further enrichment
 of the programme.
- Instead of rented building for JSS accommodation, own building may be constructed with the financial support of some special grants like MP lands. So that the money spent on building rent may be saved and use for further development and equip the JSS.
- JSS Programmes should be extended to all the villages of the District. Particularly remote villages because this study reveals that representation for

- enrolment from remote villages are found in significant.
- The Alumini Association of the trainces may be organized for further strengthening of the JSS.
- Placement and guidance cell may be established in the JSS for the benefit of out goings trainees.
- Linkage is to be established with financial institutions and industrial and business organizations to update the courses as well as to provide employment opportunities to the trainees. So that the people will show more interest to join in JSSs.
- To give wide popularity to JSS vocational programmes an open exhibition cum market centre should be organized. For the strengthening of community participation the vocational training of the JSS can be connected to Self-Help Groups (SHGs) to extend the facility of capacity building for SHGs.
- The teaching methods and learning material should be developed in tune with the target enrolled in JSS. Learning material should be in local dialect. These materials should be based on the needs and interests of the learners.
- The efforts should also be made to understand the educational and skill achievements not in isolation but in the reference to overall changes in the life of people of a district, state as a whole in terms of their development participation and also in relation to the other qualitative changes associated with the vocational programme.
- The management of the JSS Programme and other functionaries should create conducive atmosphere for the volunteers to perform their functions and duties in good environment and retain the volunteers for a longer period and also it will become an attraction to increase the number of volunteers.
- The services and expertise of S.K.University and other technical institutions of the district may be utilized for getting better academic flavor to this JSS.

References:

- 1. Daswani, C.J. and Shah, S.Y. "Adult Education in India". Selected Papers; UNESCO, New Delhi, pp. 85
- 2. Govindappa, K. "Historical Perspective of Adult Education in India", Ithihas, Vol. XXXVIII, Jan-Dec, 2002. pp. 45-46.
- 3. Verma, Savalia Bihari, "Role of Education for Economic Development and Social Trasformation", in Savalia Bihari Verma and Dinesh Kumar Verma (Eds) "Strategy for Promoting Rural Infrastructure", Pointing Publishers, Jaipur 2004. pp. 116-122.
- 4. Rana, Yaswant Singh, "Role of Adult Education and continuing Education in the 21st century", Indian Journal of Adult Education, vol.no.67 No's 1-2, January June 2006, pp.17-24.

Judicial Contributions in Evolving The Liability for Medical Negligence

Subhash Chandra Gupta* & Shikha Dimri**

Negligence has always been a matter of subjective judicial determination, subject to facts. There could never be achieved a generally acceptable and statutory definition of negligence. It was always the judiciary which was trusted with this onerous responsibility of deciding whether an act (or omission) amounts to negligence or not. Towards obtaining some degree of certainty in the law of negligence courts propounded several parameters. These parameters, rationale of judgments and the judgments themselves contributed towards developing the law of negligence.

Due to the particular nature of facts, medical negligence cases are more subjective because a doctor's autonomy to clinically judge the case is also to be preserved. Doctor's diagnostic and action may not always be successful. All such failures are open to the complaint of negligence. Courts have tried to maintain balance of the two conflicting interests. Doctor's autonomy on one hand and patient's right to care on the other. In the process of development of this law, the socio-economic transition has also been a factor. This factor played significant role when medical and healthcare services were brought within the purview of consumer protection law. All such developments have been majorly led by the judiciary. However, role of the Consumer Protection Act, 1986 can never be ignored as providing basis for bringing the medical service providers under liability.

Legal Position and Judicial Responses Prior to the Consumer Protection Act

Prior to the Consumer Protection Act of 1986, the legal position of medical negligence cases was more or less the same as that of general negligence cases. One major difference was that a practitioner without valid degree or license was prima facie thought to have been negligent.

^{*}Professor and Head, School of Law, H.N.B. Garhwal University, Pauri Garhwal, Uttarakhand.

^{**} Assistant Professor, College of Legal Studies, University of Petroleum & Energy Studies, Dehradun; and Research Scholar in Law in Mewar University, Chittorgarh Rajasthan.

In Juggan Khan vs. State of Madhya Pradesh¹, the supreme court was faced with the question whether a particular dose could be expected to be fatal. The case questioned whether the prescription of the poisonous medicine without studying possible effect was a rash and a negligent act within the frame work of Section 304 A of the India Penal Code, 1860. It was held that it was a rash and negligent act to prescribe poisonous medicines without studying their possible effect.² The doctor who performed the autopsy in this case, reported that the cause of death could be ascertained only after the result of chemical analysis is received. He sent to the chemical examiner the stomach with its contents and pieces of liver, spleen and kidney. The chemical examiner, however, reported that no poison could be detected in any of these items. This fact was emphasized by the learned counsel for the appellant and he had urged that it could not be established that death resulted from poisoning. But both the courts below had held against him. He further urged that what was administered was not a fatal dose and he has seriously challenged the calculations made by the learned Sessions Judge of the contents of poison in the leaf alleged to have been given to the deceased. He has also challenged the concurrent finding of the courts below that a dhatura left and 24 drops of mother tincture of stramonium was administered to the deceased. His final contention is that on the facts found it was not a case of murder under section 302 but of an offence under section 304-A of the Indian Penal Code.

The honourable judges at the apex court held that the courts below were right in concluding that death resulted from poisoning. The only question the court pondered about was the nature of the offence committed by the appellant. Should be be convicted under section 302 or under section 304-A of Indian Penal Code? The court held the appellant is liable to be convicted under section 304-A, and not under section 302 of the code³. One interesting observation from this case can be that the expert doctor, who conducted the post-mortem, was of the opinion that the said dose cannot be expected to be fatal and the lower courts accepted had accepted that. However the Supreme Court held contrary to the finding of this doctor; concluding that the said dose could be generally anticipated to be fatal to the life of the woman who consumed it. This was at the very foundation of liability and the doctor was held guilty. One may form an opinion that the Supreme Court can generally conclude contrary to the expert evidence; however it's not safe to conclude like this. There can be much more complicated circumstances in the medical negligence cases, in which the courts cannot comfortably decide merely by common understanding and liability is bound to be based on the expert evidence.

This development in the law of medical negligence was supported by a famous English tort law case that lays down the typical rule for assessing the appropriate standard of reasonable care in negligence cases involving skilled professionals (e.g. doctors): the "Bolam test". Where the defendant has represented him or herself as having more than average skills and abilities, this test expects standards which must be in accordance with a responsible body of opinion, even if others differ in opinion. In other words, Bolam test states that "If a doctor reaches the standard of a responsible set of medical opinion, he is not negligent".⁴

During course of the electro-convulsive therapy, treatment was administered to the plaintiff, a voluntary patient, at the defendants' mental hospital. During treatment the plaintiff sustained bilateral stove-in fractures of the acetabula. E.C.T. included the passing of an electric current through the brain of the patient which, when given unmodified, i.e., without the prior administration of a relaxant drug, resulted in violent muscular contractions and spasms, attended with a known, though slight, risk of bone fracture. In accordance with his normal practice the doctor treating the plaintiff had given the E.C.T. unmodified, and without applying any form of manual restraint other than to support the plaintiff's chin and hold his shoulders, nurses being present on either side of the couch in case the plaintiff fell off. The plaintiff claimed damages, alleging, inter alia, that the defendants were negligent-

- (1) In failing to administer any relaxant drug prior to the passing of the current through his brain;
- (2) since they had not administered such drug, in failing to provide at least some form of manual restraint or control beyond that given; and
- (3) in failing to warn him of the risks involved in the treatment.

Expert witnesses called by either side gave evidence as to the different techniques which they adopted in giving E.C.T. treatment; some used relaxant drugs, some restraining sheets, and some manual control, but all agreed that there was a firm body of medical opinion opposed to the use of relaxant drugs, and also that a number of competent practitioners considered that the less manual restraint there was, the less was the risk of fracture. It was the practice of the defendants' doctors not to warn their patients of the risks of the treatment (which they believed to be small) unless asked; if asked, they said that there was a very slight risk. The witness called for the plaintiff considered that it would not be right not to warn a patient of the risks of the treatment:

(1) That a doctor who had acted in accordance with a practice accepted at the

time as proper by a responsible body of medical opinion skilled in the particular form of treatment in question was not guilty of negligence merely because there was a body of competent professional opinion which might adopt a different technique. This logic was also applied in the British case Hunter Vs Hanley.⁵

That in determining whether or not the plaintiff was entitled to succeed on (2) his allegation of failure to warn, there are two material considerations. First, whether by omission to warn, the defendant doctor had fallen below a standard of practice recognized as proper by a competent body of professional opinion and, if a good medical practice did require warning. Secondly, would the plaintiff have refused to undergo the treatment, if warned of the risk involved? Further that it was for the plaintiff to show to the satisfaction of the court that, had he been warned he would not have taken the treatment.6 It may be contended that a satisfactory visibility that they the medical professional was acting in accordance with a practice of a competent body of professional opinion, then it would be wrong for you to hold that negligence was established.⁷ The true test for establishing liability in diagnosis or treatment on the part of a doctor is whether he has been proved guilty of such failure as no doctor of ordinary skill would be guilty of it if he has acted with ordinary care.8

This case very effectively started the debate on a doctor's liability for as unsuccessful actions. This case is more important for laying down the standard of care and diligence and how to interpret them. It is very important to note that Bolam's case does not incline sympathetically to the favour of untreated patient though it considers the right to due care and caution as paramount to any other conclusion.

In the case of Dr. Laxman Balkrishna Joshi vs. Dr. Trimbark Babu Godbole and Another⁹ and A.S.Mittal v. State of U.P.¹⁰, it was laid down that when a doctor is consulted by a patient, the doctor owes to his patient certain duties which are:

- (a) Duty of care in deciding whether to undertake the case,
- (b) Duty of care in deciding what treatment to give, and
- (c) Duty of care in the administration of that treatment.

Impact of Consumer Protection Act, on the Development of Law of Medical Negligence

The Government understood the need to protect consumers from unscrupulous

suppliers, and the need of law making for this purpose. We already had the Indian Contract Act, the Sale of Goods Act, the Dangerous Drugs Act, the Agricultural Produce (Grading and Marketing) Act, the Indian Standards Institution (Certification Marks) Act, the Prevention of Food Adulteration Act, the Stand-ards of Weights and Measures Act, etc. which to some extent protect consumer interests. However, these laws require the con-sumer to initiate action by way of a civil suit involving lengthy legal process which is generally expensive and time consuming.

The Consumer Protection Act, 1986 was enacted to provide a sim-pler and quicker access to redressal of consumer grievances. The Act for the first time introduced the concept of 'consumer' and expressly conferred additional rights on him. It is interesting to note that the Act doesn't seek to protect every consumer within the literal meaning of the term. The protection is meant for the person who fits in the definition of 'consumer' given by the Act. The Act defines consumer under section 2(d) which reads as^{II}:

Consumer means any person who—

- (i) buys any goods for a consideration which has been paid or promised or partly paid and partly promised, or under any system of deferred payment and includes any user of such goods other than the person who buys such goods for consideration paid or promised or partly paid or partly promised, or under any system of deferred payment when such use is made with the approval of such person, but does not include a person who obtains such goods for resale or for any commercial purpose; or
- (ii) hires or avails of any services for a consideration which has been paid or promised or partly paid and partly prom-ised, or under any system of deferred payment and includes any beneficiary of such services other than the person who 'hires or avails of the services for consideration paid or promised, or partly paid and partly promised, or under any system of deferred payment, when such services are availed of with the approval of the first mentioned person but does not include a person who avails of such services for any commercial purposes;

Explanation— For the purposes of this clause, "commercial purpose" does not include use by a person of goods bought and used by him and services availed by him exclusively for the purposes of earning his livelihood by means of self-employment.

Supreme Court held that in dealing with the cases of medical negligence it is not concerned with goods and is concerned only with rendering of services. ¹² Since the Act gives protection to the consumer in respect of service rendered to him, the expression service in the Act has to be construed keeping in view the definition of consumer in the Act. It is, therefore, necessary to refer to the definition of the expression consumer¹³ insofar as it relates to services and the definition of the expression service¹⁴ as defined in the Consumer Protection Act which reads as:

"service means service of any description which is made avail-able to potential users and includes, but not limited to, the provision of facilities in connection with banking, financing insurance, transport, processing, supply of electrical or other energy, board or lodging or both, housing construction, entertainment, amusement or the purveying of news or other information, but does not include the rendering of any service free of charge or under a contract of personal service".

The definition of service in the Act can be split up into three parts - the main part, the inclusionary part and the exclusionary part. The main part is explanatory in nature and defines service to mean service of any description which is made available to the potential users. The inclusionary part expressly includes the provision of facilities in connection with banking, financing, insurance, transport, processing, supply of electrical or other energy, board or lodging or both housing construction, entertainment, amusement or the purveying of news or other information. The exclusionary part excludes rendering of any service free of charge or under a contract of personal service. The main clause itself is very wide. It applies to any service made available to potential users. The words 'any' and 'potential' are significant. Both are of wide amplitude. The word 'any' dictionarily means; one or some or all. In Black's Law Dictionary it is explained thus-"word 'any' has a diversity of meaning and may be employed to indicate 'all' or 'every' as well as 'some' or 'one' and its meaning in a given statute depends upon the context and the subject-matter of the statute". The use of the word 'any' is to be understood in the context. It has been used in Clause (o), which indicates that it has been used in wider sense extending from one to all. The other word 'potential' is again very wide. In Oxford Dictionary it is defined as 'capable of coming into being, possibility'. In Black's Law Dictionary it is defined "existing in possibility but not in act. Naturally and probably expected to come into existence at some future time, though not now existing; for example, the future product of grain or trees already planted, or the successive future installments or payments on a contract or engagement already made."

In other words service which is not only extended to actual users but also to those who are capable of using it. The clause is thus very wide and extends to any or all actual or potential users. The contention that the entire objective of the Act is to protect the consumer against malpractices in business was rejected with the observations¹⁵:

"The argument proceeded on complete misapprehension of the purpose of Act and even its explicit language. In fact the Act requires provider of service to be more objective and caretaking."

Referring to the inclusive part of the definition it was said16:

"The inclusive clause succeeded in widening its scope but not exhausting the services which could be covered in earlier part. So any service except when it is free of charge or under a constraint of personal service is included in it."

In that case¹⁷ the Court was dealing with the question whether housing construction could be regarded as service under Section 2(1)(0) of the Act. While the matter was pending in this Court, "housing construction" was inserted in the inclusive part of the definition under section 2(1)(0)¹⁸. Holding that housing activity is a service and was covered by the main part of the definition, the Court observed¹⁹:

"...the entire purpose of widening the definition is to include in it not only day to day buying and selling activity undertaken by a common man but even such activities which are otherwise not commercial in nature yet they partake of a character in which some benefit is conferred on the consumer."

In Indian Medical Association Vs. V.P. Shantha²⁰ the Supreme Court held that the inclusive part of the definition of service is not applicable and we are required to deal with the questions falling for consideration in the light of the main part and the exclusionary part of the definition. The exclusionary part will require consideration only if it is found that in the matter of consultation, diagnosis and treatment a medical practitioner or a hospital/nursing home renders a service falling within the main part of the definition contained in Section 2(1)(0) of the Act. We have, therefore, to determine whether medical practitioners and hospitals/nursing homes can be regarded as rendering a service as contemplated in the main part of Section 2(1)(0).

Now, it is proper and expedient to examine this question in relation to medical practitioners. It has been contended that in law there is a distinction between a profession and an occupation and that while a person engaged in an occupation renders service which falls within the ambit of Section 2(1)(o) the service rendered

by a person belonging to a profession does not fall within the ambit of the said provision and, therefore, medical practitioners who belong to the profession are not covered by the provisions of the Act. It has been argued that medical practitioners are governed by the provisions of the Indian Medical Council Act, 1956 and the Code of Medical Ethics made by the Medical Council of India, as approved by the Government of India under Section 3 of the Indian Medical Council Act, 1956 which regulates their conduct as members of the Medical profession and provides for disciplinary action by the Medical Council of India and/or State Medical Councils against a person for professional misconduct.

While expressing his reluctance to propound a comprehensive definition of a profession, Scrutton L.J. has said, "profession, in the present use of language involves the idea of an occupation requiring either purely intellectual skill, or of manual skill controlled, as in painting and sculpture, or surgery, by the intellectual skill of the operator, as distinguished from an occupation which is substantially the production or sale or arrangement for the production or sale of commodities. The line of demarcation may vary from time to time. The word profession used to be confined to the three learned professions, the Church, Medicine and Law. It has now, I think, a wider meaning"²¹

Whether doctors and hospitals are covered under the Consumer Protection Act or not; is dependent upon the understanding of above quoted definitions. The above-mentioned definitions can be interpreted to apply on the doctors and hospitals but at the very outset it was not so interpreted. A very pious and respectable position was conferred on the doctors by virtue of the services rendered by them. But this position of high respect and trust did not continue for long. In 1995, the Supreme Court of India, pronounced an interpretation of the kind that a patient is also a consumer²².

It became one of the most famous and important cases by pronouncing a new interpretation of the definition of consumer; as defined under section 2(d) of Consumer Protection Act, 1986.²³ As a result of this judgment, medical profession has been brought under the Section 2(1) (o) of CPA, 1986 and also, it has included the following categories of doctors/hospitals under this Section:

- a. All medical and dental practitioners doing independent medical / dental practice unless rendering only free service.
- b. Private hospitals charging all patients
- c. All hospitals having free as well as paying patients and all the paying and free

category patients receiving treatment in such hospitals.

d. Medical and dental practitioners and hospitals paid by an insurance firm for the treatment of a client or an employment for that of an employee.

It exempts only those hospitals and the medical practitioners of such hospitals which offer free service to all patients. As a result of this judgment, virtually all private and government hospitals and the doctors employed by them and the independent medical and dental practitioners except primary health centers, birth control measures, anti malaria drive and other such welfare activities; can be held liable under the Consumer Protection Act.

Earlier, in Dr. C.S. Subramanian Vs Kumarasamy and Another²⁴, a Division Bench of the Madras High Court had, however, taken a different view. It has been held that the services rendered to a patient by a medical practitioner or by a hospital by way of diagnosis and treatment, both medicinal and surgical, would not come within the definition of 'service' under Section 2(1)(0) of the Act and a patient who undergoes treatment under a medical practitioner or a hospital by way of diagnosis and treatment, both medicinal and surgical, cannot be considered to be a consumer within the meaning of Section 2(1)(d) of the Act²⁵; but the medical practitioners or hospitals undertaking and providing paramedical services of all kinds and categories cannot claim similar immunity from the provisions of the Act and that they would fall, to the extent of such paramedical services rendered by them, within the definition of service and a person availing of such service would be a consumer within the meaning of the Act.

In the V.P. Shantha case²⁶ also, the National Commission by its judgment and order²⁷ had held that persons who avail themselves of the facility of medical treatment in Government hospitals are not consumers and the said facility offered in the Government hospitals cannot be regarded as service hired for consideration. It has been held that the payment of direct or indirect taxes by the public does not constitute consideration paid for hiring the services rendered in the Government hospitals. It has also been held that contribution made by a Government employee in the Central Government Health Scheme or such other similar Scheme does not make him a consumer within the meaning of the Act.

The National Commission held that the activity of providing medical assistance for payment carried on by hospitals and members of the medical profession falls within the scope of the expression service as defined in Section 2(1)(0) of the Act and that in the event of any deficiency in the performance

of such service, the aggrieved party can invoke the remedies provided under the Act by filing a complaint before the Consumer Forum having jurisdiction. It was also held that the legal representatives of the deceased patients who were undergoing treatment in the hospital are consumers under the Act and are competent to maintain the complaint. The National Commission had held that since the treatment that was given to the complainant's deceased husband in the nursing home belonging to the opposite party was totally free of any charge, it did not constitute service as defined under the Act and the complainant was not entitled to seek any relief under the Act.

In this case, the court relied on a 1985 resolution of the United Nations General Assembly²⁸ named Consumer Protection Resolution. This resolution had adopted the guidelines to provide a framework for Governments, particularly those of developing countries, to use in elaborating and strengthening consumer protection policies and legislation.

Some Other Important Instances of Medical negligence and Liability

In Poonam Verma v. Ashwin Patel and Others²⁹, a doctor registered as medical practitioner and entitled to practice in Homoeopathy only, prescribed an allopathic medicine to the patient. The patient died. The doctor was held to be negligent and liable to compensate the wife of the deceased for the death of her husband on the ground that the doctor who was entitled to practice in homoeopathy only, was under a statutory duty not to enter the field of any other system of medicine and since he trespassed into a prohibited field and prescribed the allopathic medicine to the patient causing death of the patient. The doctor was held liable for medical negligence and was held bound to compensate.

In Achutrao Haribhau Khodwa and Others. vs State of Maharashtra and Others³⁰, the Court noticed that in the very nature of medical profession, skill differs from doctor to doctor and more than one alternative course of treatment are available, all admissible. Negligence cannot be attributed to a doctor so long as he is performing his duties to the best of his ability and with due care and caution. Merely because the doctor chooses one course of action in preference to the other one available, he would not be liable if the course of action chosen by him was acceptable to the medical profession. It was a case where a mop was left inside the lady patient's abdomen during an operation. Peritonitis developed which led to a second surgery being performed on her, but she could not survive. Liability for negligence was fastened on the surgeon because no valid explanation was forthcoming for the mop having been left inside the abdomen of the lady. The doctrine of res ipsa loquitur was

held applicable in this case.

In M/s Spring Meadows Hospital and Another v. Harjol through K.S. Ahluwalia and Another³¹, is again a case of liability for negligence by a medical professional in civil law. It was held that an error of judgment is not necessarily negligence. The Court referred to the decision in Whitehouse & Jorden³², and cited with approval the following statement of law contained in the opinion of Lord Fraser determining when an error of judgment can be termed as negligence. In State of Haryana and Others. Vs. Smt. Santra³³, also Bolam's test has been approved. This case too refers to liability for compensation under civil law for failure of sterilization operation performed by a surgeon.

In Subh lata vs. Christian medical college³⁴, the complainant alleged that her husband died due to the complications arising after kidney biopsy. The State Commission held that the complainant had suppressed the crucial facts in her complaint. Besides serious life threatening diseases, the deceased was already suffering from tuberculosis and staphylococcus aureus septicaemia (a serious infection of the blood by bacteria). These are very serious diseases with a very high mortality rate especially when the heart, lung and brain get infected. Hence, the complainant had not come with clean hands and thus disentitled herself to relief. Consequently the complaint was dismissed.

In Shivaji Gendeo Chavan v. Chief Director, Wanless Hospital & Another³⁵, The complainant's 18-year-old son was suffering from chronic renal failure and was advised renal transplantation. He was admitted in the hospital and dialysis was done for which a veinous catheter was introduced in the right thigh and kept in the same position of the body as he would require frequent dialysis. But due to lack of proper care like frequent dressing and medical attention, this site developed pus formation leading to A.V. Fistula, which resulted in gangrene of the right leg. In order to save the life of the patient, amputation of the leg was necessary. The patient died after 20 days. The case was decided in favour of the complainant on the basis of the affidavits filed by the complainant and another experienced doctor who testified in favour of the complainant. A compensation of Rs. 2,00,000/- with Rs. 1,000/- as costs to be paid by the opposite party within 30 days from the receipt of this letter, failing which the amount shall carry interest at the rate of 18% per annum till realization.

In Lawrence vs. Apollo Hospitals³⁶, the complainant was admitted in a private hospital for pain in the neck on the right shoulder. Investigations revealed that he was a diabetic and had right hydronephrosis with obstruction at right uretrovesical

junction. The complainant underwent surgery by retroperitoneal approach. The affected portion of the ureter was removed and uretric reimplantation was done. During the postoperative period, the complainant developed high fever and further investigations showed that a stapler pin was seen in the gastrointestinal tract. The complainant got discharged against medical advice. The allegation was that the pin was left there during the operation. The surgeon stated that the surgical staplers are V or U shaped and used in clusters in surgeries involving large intestine. The stapler pin seen in the x-ray is not a stapler pin. It resembles the stapler pins used in food packets. Evidently, this stapler pin should have been swallowed. The State Commission held that there is no negligence or deficiency of service on the part of the hospital and dismissed the complaint without costs.

The Anuradha Saha Wrongful Death Case³⁷

In a historic judgment on medical negligence liability was passed by the Supreme Court. The Apex Court held 4 doctors (including three senior "eminent" doctors) and AMRI/Apollo Hospital in Kolkata guilty for causing death of NRI Dr. Kunal Saha's wife Anuradha Saha, an US-based child psychologist. This case involves a compensation of Rs. 77.7 crore (plus interest), highest in Indian medico-legal history. The SC has remanded the case back to the National Consumers Forum (NCDRC) to calculate the quantum of compensation that must be paid by these doctors and hospital. Furthermore, in a rare move, the Apex Court has directly imposed an additional fine of Rs. 5 lakh against the hospital plus Rs. 1 lakh against the main culprit doctor (Dr. Sukumar Mukherjee) as penalty for their misconduct which eventually caused death of Anuradha. There are several important aspects in this judgment by the SC which will have far-reaching consequences on the future practice of medicine in India.

In fact the entire concept of liability for medical negligence has developed by major contributions by the judiciary. However, it cannot primarily be credited as a product of judicial activism. The early cases were decided in the form of tort action. Therefore it was more or less led by judicial interpretation and determination. However, the judiciary must be credited for wisely accepting the change in doctorpatient relationship. Judiciary has also been active under the constitutional jurisdiction. In Dr. Paramanand Katara Vs. Union of India³⁸, the court held that a patient in need of emergency care, specially a victim of accident, has a fundamental right to be attended immediately and in priority to the related processes. This right was held to lie within the fundamental right to life. By this judgment, the judiciary not only established the liability of the state but also did it restore the welfare ideals of part

third; which can be logically read within the spirit of the constitutional law of our country.

References

- Juggan Khan Vs. State of Madhya Pradesh, AIR 1965 SC 831, 1965 Cri LJ 763, MANU/ SC/0078/1964
- 2 Ibid
- 3 Ibid
- 4 Bolam Vs Friern Hospital Management Committee, (1957) 1 WLR 583
- 5 The dictum of Lord President Clyde, in Hunter Vs. Hanley, (1955) S.L.T. 213,217
- 6 The other British cases worth reference on the point are Hatcher Vs. Black and Marshall Vs. Lindsey
- 7 Lord Clyde, in the famous Scottish case of Hunter Vs. Hanley, (1955) S.L.T. 213,217. This logic was cited and accepted also in Bolam Vs friern Hospital Management Committee, (1957) 1 WLR 583
- 8 Ibid
- 9 AIR 1969 SC 128
- 10 AIR 1989 SC 1570
- 11 Section 2(1) (d), Consumer Protection Act, 1986
- 12 In Lucknow Development Authority Vs. M.K. Gupta AIR1994 SC 787
- 13 Infra note 12
- 14 Section 2(1)(o) of Consumer protection Act, 1986
- 15 Infra note 13
- 16 Supra note 13
- 17 Supra note 13
- 18 Inserted by ordinance no. 24 of 1993
- 19 Supra note 13
- 20 Indian Medical Association Vs. V.P. Shantha, AIR 1996 SC 550
- 21 Commissioners of Inland Revenue Vs. Maxse. 1919 1 K.B. 647
- 22 Indian Medical Association Vs V.P. Shantha (3) CPR 412; AIR 1996 SC 550
- 23 Ibid
- 24 C.S. Subraminian Vs. Kumarasamy and Another, (1992) MLJ 438
- 25 Consumer Protection Act, 1986
- 26 Infra footnote 14
- 27 Dated 15th December, 1989 in First appeal No. 2 of 1989
- 28 Consumer Protection Resolution, UNGA Resolution No. 39/248, Dated 9th April, 1985
- 29 Poonam Verma Vs Ashwin Patel, (1996) 4 SCC 332
- 30 Achyutrao Haribhau Khodwa and Others Vs State of Maharashtra and Others (1996) 2 SCC 634

- 31 M/S Spring Meadows Hospital and Another Vs. Harjot Through K.S. Ahluwalia and Another, (1998) 4 SCC 39
- 32 Whitehouse Vs. Jorden, (1981) 1 ALL ER 267
- 33 State of Haryana and Others Vs. Smt Santra (2000) 5 SCC 182
- 34 Subhlata Vs Christian Medical College, Punjab SCDRC O.C. No. 14 of 1994, decided on 15.6.1994; 1994 (2) CPR 691; 1995 (1) CPJ 365; 1995 CCJ 512
- 35 Shivaji Rao Gendeo rao Chavan Vs Chief Director, Wanless Hospital and Another, Maharashtra SCDRC Complaint No. 451 of1993 3.12.1994 (3) CPJ 43
- 36 Lawrence V. Apollo Hospitals (Tamilnadu SCDRC O.P. No. 8/94 Decided on 05.08.1998
- 37 Malay Kumar Ganguly Vs Dr. Sukumar Mukerji and Others, (2009) 9 SCC 221
- 38 Pt. Paramanand Katara Vs. Union of India, (1989) SCR 3 997

Environmental Conservation and Role of the Judiciary in India

Ashish Verma*

Remarkably, India enacted significant environmental laws decades ago, and the Supreme Court of India has developed a rich body of law that guarantees a fundamental right to live in a clean and healthy environment. Through the development of Public Interest Litigation, the Supreme Court of India has greatly broadened the procedural right of Indian citizens to present environment-related challenges against the government and its agencies². Beyond the letter of the law, the judiciary has addressed an array of environmental issues related to its accelerated economic growth; for example, the right to live in a clean and healthy environment, interpreted within article 21.

India and Environmental concerns

India's environmental concerns are manifold. Religiously and culturally interwoven lifestyle and practices, poverty, illiteracy and dependence over the conventional patterns of energy consumption are all contributory reasons for the deteriorating trend of the environment in India. apart from the ever increasing industrialization. Some of such factors can be consolidated as following.

(a) Ecosystems and livelihoods

A large section of the Indian population depends on natural resources to meet basic needs such as food, fiber, medicine, fodder, fuel-wood, and timber. An estimated 58% of the total work force is engaged in agriculture, and 4% in household industries based on biomass. About 20 million households depend on forests, and another 6 million households on freshwater and marine fisheries. Animal husbandry is the primary occupation of pastoralist communities, and a secondary occupation of agriculturists in most parts of the country. The dependence on natural resources is higher for poorer communities. Of the 260 million people that live below the poverty

^{*} Assistant Professor in College of Legal Studies, University of Petroleum & Energy Studies, Dehradun

line, more than 100 million are partially or wholly dependent on forests for survival. Yet the relationship of people and nature is not merely extractive. Numerous communities across the country are known to possess knowledge of ethno-biology, of ecological processes, and of ecosystem functions. Such indigenous knowledge, often founded in tradition, is applied to practices that conserve natural resources, for current use, for future use, for coping with environmental uncertainty, as well as for their cultural, religious, and spiritual value. Due to its sheer size, and its range of topography, altitude, and climate, India exhibits a variety of ecosystems. Classified by habitat, these include forests, grasslands, deserts, wetlands, mangroves, and coral reefs. Each ecosystem is characterized by varying patterns of human intervention that impact land, water, and biological resources.

Extensive deforestation, for instance, has reduced forest cover to about a fifth of the geographical area. While the magnitude is now relatively stable, the quality of forest cover is far from satisfactory. Despite the fact that grasslands are poorly studied, it is more than evident that they are in a state of degradation. Changes in land use affect desert ecosystems adversely. A host of pressures operate on wetlands and mangroves, and threaten the rich biodiversity that they support. Coral reefs are considered the most productive of marine ecosystems, but are extremely fragile and sensitive to environmental stress. Thus, in many parts of the county there are serious threats to ecosystem health, and consequently, to human livelihoods as well.

(b) Expansion of agriculture

When India became independent in 1947, the socio-economic situation was dominated by a small class of large land-owners, and a vast mass of impoverished cultivators. In subsequent years, land reforms were enacted, surplus private land was acquired by the state.³ Planning Commission was of the view that contribution of the poverty factor in environmental degradation could be minimized and for this, developmental projects could serve a lot and also the need of major irrigation projects was also high on the development agenda. Public policy was founded on the thesis that farming would lift people out of poverty. This tended to give a certain degree of legitimacy to encroachment on public as well as community land, even though this often favoured the relatively rich, over the relatively poor.

This expansion of agriculture, promoted by the state, and furthered by individuals, came mostly at the expense of forests, but also took its toll on grasslands, wetlands, and coastal belts. The approach paper to the Tenth Five Year Plan (2002-07) states that every effort must be made to bring uncultivated land into productive

use, whether by way of agriculture or forestry. However, it accepts that there is now little scope to expand the cultivated area, and hence shifts the emphasis to increasing productivity.

(c) Unsustainable farming practices

In the vast landscape across the subcontinent and the seascape along the coastline, the use of land, water, and biological resources by individuals goes virtually unregulated. The preoccupation with maximizing short-term gain often reduces productivity in the long run, and has unforeseen off-site impact as well. In many parts of the country, the practice of agriculture, horticulture, farm forestry, aquaculture, and fishing use scarce land, water, and biological resources intensively or wastefully, and deteriorate their quality. As of today, the diffusion of environmentally friendly farm technology is limited. Nutrient overloading due to over-application of nitrogenous fertilizer continues unchecked. The persistent use of harmful pesticides introduces pollutants that are a serious risk to human health and to biodiversity.

(d) Rapid urbanization

As a result of rapid urbanization over the past five decades, 28% of India's population lived in cities by 2001.⁴ This figure is projected to reach 40% by the year 2030.⁵ The advancement of urban frontiers pushes back natural habitats, and disrupts hydrological systems. The environmental impacts of unplanned and poorly planned urbanization are obvious across the world. India has already experienced some of these. Their magnitude is certain to grow, both spatially as well as exponentially. A number of programs have been launched to address issues such as water conservation, waste management, and sanitation. Substantial financial investment is committed for urban renewal across the country. However, in the absence of stringent laws and comprehensive policy support, this could well hasten the process of environmental degradation not just around cities, but also further afield.

(e) Industrial growth

Economic liberalization has increased the pace of industrialization over the past two decades. During the period 2002-07, industrial growth accelerated to about 10% per annum. This is likely to have adverse implications for the environment. A number of manufacturing industries are known to present a substantial risk to air and water quality. These include iron and steel, thermal power plants, copper, zinc, aluminum smelters, cement, oil refineries, petrochemicals, pesticide, and fertilizer. In addition, hazardous wastes are generated by petrochemical, pharmaceutical,

pesticide, dyes, fertilizer, paint, petroleum, asbestos, tannery, and chlor-alkali units. India has comprehensive laws dealing with air and water pollution and hazardous waste; fairly stringent ambient standards; norms for location of industries; and regulations to protect sensitive areas. It is interesting to note that plans for industrial development are completely silent on the subject of environmental protection. It is therefore left to environmental regulators to impose standards and norms, to monitor environmental performance, and to ensure compliance. In the absence of any internal initiative to adopt environment-friendly goals, industry is thus likely to continue to pose a major risk to ecosystems and ecosystem services, probably at a level much higher than before. It is unlikely that the current levels of industrial and economic growth can be sustained in India unless the challenges of environmental degradation are seriously addressed by both the private and public sectors.

Environmental conservation in India:

(a) Legislative Background

Over the last forty years the Indian Parliament has taken measures to enact significant environmental regulations. In 1974, the government passed the Water Prevention and Control of Pollution Act (Water Act);⁷ its purpose is to "provide for the prevention and control of water pollution and the maintaining and restoring of wholesomeness of water." The Water Act established Central and State Pollution Control Boards to oversee the "prevention, abatement, and control of water pollution." The Boards are responsible for conducting site inspections and acquiring information regarding non-compliance with any aspect of the Water Act. In Similarly, in 1981 the government enacted the Air Prevention and Control of Pollution Act (Air Act) to provide for the prevention, control, and abatement of air pollution. Like the Water Act, the Air Act provides for Central and State Control Boards to handle all matters associated with the improvement of air quality. 12

Subsequent to the Water and Air Acts, the Indian legislature promulgated the Environment Protection Act (Environment Act) in 1986 to cure deficiencies left in India's core body of environmental law. The Environment Act provides the central government with the broad power to take all measures necessary 'for the purpose of protecting and improving the quality of the environment and preventing, controlling, and abating environmental pollution." Together, these pieces of environmental legislation provide a framework for the Indian people, as well as the judiciary, to enforce environmental protections.

Finally, according to the Energy Information Administration, emissions resulting from India's fossil fuel consumption account for fourteen percent of total global carbon dioxide emissions, and is projected to increase to eighteen percent by 2025. Thus, as India continues to demand access to energy and relevant technologies, it must address the environmental consequences of such rapid economic growth.

India has failed to set fuel economy regulations, "Indian small diesel cars are more than 20 per cent less fuel efficient and 50 per cent more polluting than their counterparts in Europe." ¹⁶ This occurs at a time when governments around the world are imposing higher levies on larger automobiles to minimize their environmental impacts. ¹⁷

(b) Limitations of state conservation

The premise that all human activity is inherently damaging, originally prompted the state to assume full responsibility for conservation. Thus protected areas, forest reserves, and other state-controlled territories were created to keep people out, often abrogating traditional community rights in an arbitrary manner. Nevertheless, it has been difficult to enforce human exclusion, and some degree of local use continues through both 'legitimate' and 'illegitimate' means in most areas. Conservation literature in India cites the prevalence of over-cultivation, overextraction of medicinal plants, over-hunting, over-grazing, over-fishing, and destructive harvesting practices in habitats controlled by the state. In the absence of local support, authorities find it difficult to eliminate organized poaching of endangered species and to arrest illegal wildlife trade. At the same time, humanwildlife conflict is being witnessed at a number of locations, causing serious damage to life, crops, and property. This is often an outcome of displacement of people, of wildlife, or of both. Clearly, this model of conservation is ridden with confrontation, often of violent dimensions. However, exclusion is giving way to accommodation, as public policy increasingly attempts to include local communities in the conservation agenda. A bill that recognizes traditional rights among a select section of forest dwellers, and assigns them specific responsibility for conservation currently awaits enactment. Rights to non-timber forest products have been entrusted to village councils in tribal areas. The concept of joint forest management has been put into practice on a large scale. Eco-development programs are attempting to change the relationship between protected area managers and local communities. These relatively new initiatives seek to provide usufruct rights to local communities, as well as to involve them in resource management. However, institutional measures that create a long-term stake for community participation are as yet limited. Community participation can certainly make for more sustainable provisioning and cultural services of ecosystems. However, this alone will not safeguard regulating and supporting services. Hence, it is vital to combine community concerns with scientific conservation principles that are grounded in sound empirical research. Unfortunately, empirical studies of the impact of human activity on ecosystems and ecosystem services are generally lacking.

Constitutional Dimensions of Environmental Protection in India:

India's most powerful statement on the environment is a constitutional amendment; Amendment 42 to add Article 48A, which includes a provision for environmental protection and states that a clean and healthy environment is now a directive to the state policy. Article 48A of the Indian Constitution states, "the State shall endeavour to protect and improve the environment." The key fundamental rights provision of the Indian Constitution, Article 21, guarantees that "no person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law." Under this provision, the Court has expanded the "right to life" to include protection from harmful environmental elements. In a seminal decision, Rural Litigation and Entitlement Kendra v. State of Uttar Pradesh, 18 the Supreme Court of India resolved issues related to environmental and ecological balance as a result of a quarrying operation that mined limestone. In its ruling, the Supreme Court ordered the permanent closure of the quarries. The Court recognized that its judgment would have great financial consequences for the business, but noted that it is a price that has to be paid for protecting and safe-guarding the right of the people to live in a healthy environment with minimal disturbance of ecological balance and without avoidable hazard to them and to their cattle, homes and agricultural land and undue affectation of air, water and environment. While the Supreme Court did not explicitly refer to Article 48-A; nor Article 21 of the Indian Constitution, its judgment was in accordance with these fundamental environmental rights.

In a separate decision by the High Court of Andhra Pradesh, T. Ramakrishna Rao v. Hyderabad Urban Development,¹⁹ the court expressly invoked Article 21 and noted that the right to a clean environment is a fundamental right when it stated, "the slow poisoning of the atmosphere caused by the environmental pollution and spoliation should be regarded as amounting to a violation of Article 21 of the Constitution." The court further asserted that it is "the legitimate duty of the Courts as the enforcing organs of the constitutional objectives to forbid all actions of the

State and the citizens from upsetting the ecological and environmental balance." Thus, the Supreme Court of India and other lower courts have expanded fundamental rights within the penumbra of the Indian Constitution to include environmental protections and have judiciously supported a right to a clean and healthy environment. The Indian Constitution is one of the earliest constitutions in the world that contain specific provisions on the environment. The Directive Principles of State Policy and the Fundamental Duties chapters explicitly enunciate the national commitment to protect and improve the environment.

Three constitutional provisions bear directly on environmental matters.

First and foremost, Article 21 states: "No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law." The courts have recognized several liberties that are implied by Article 21, including the right to a healthy environment. The clearest enunciation of this right occurred in a 1995 decision²⁰ in which the Supreme Court held: "Article 21 protects the right to life as a fundamental right. Enjoyment of life and its attainment including the right to live with human dignity encompasses within its ambit, the protection and preservation of environment, ecological balance, free from pollution of air and water sanitation without which life cannot be enjoyed. Any contrary acts or actions would cause environmental pollution. Environmental, ecological, air, water pollution etc. should be regarded as amounting to violation of Article 21." The high courts have followed the Supreme Court's lead, and virtually all now recognize an environmental dimension to Article 21.

Secondly Article 48A requires that "the State shall endeavour to protect and improve the environment and to safeguard the forests and wild life of the country."

Thirdly, Article 51-A establishes that "it shall be the duty of every citizen of India to protect and improve the natural environment including forests, lakes, rivers, and wild life and to have compassion for living creatures." Though these latter two provisions have traditionally been incapable of enforcement through the exercise of writ jurisdiction, courts have increasingly relied upon them for support in resolving environmental controversies.

Activist Role of the judiciary

The Supreme Court of India has reacted to perceived bureaucratic failures by taking an activist stance toward the enforcement of environmental regulations. The Court, however, hands down decisions and recommendations that are often too

difficult to implement, thus leading to greater confusion in the area of environmental enforcement. Furthermore, the Court ignores the logistical difficulties associated with implementation of their ideas of environment protection. Most striking is the Court's failure to establish a standard for acceptable pollution; therefore, any level of pollution may constitute a violation.21 Moreover, the Court continues to turn a blind eye to current environmental laws, instead creating its own committees and reporting systems. Rather than this activist position, the Court should take steps to support both current environmental regulations and government actors in their enforcement. The results of such activist actions are clear: if the Court begins to create legislation, it bypasses the democratic means. By creating its own committees, the Court is signaling to the public that legislatively-created committees are inefficient and lack credibility. Furthermore, the Court's criticism of the government and its agencies' actions undermines confidence in administrative proceedings. S.P. Sathe, the director of the Institute of Advanced Legal Studies in Pune, India, summarized that judicial activism is excessivism when a court undertakes responsibilities normally discharged by other co-ordinate organs of the government. Such activism also creates confusion for the individual who no longer knows which agency or committee to turn to for assistance. There are several facets of the Court's activism that lead to confusion. When the Court chooses to create its own set of rules, the result is two sets of rules for an individual: judge-made and legislative. It remains unclear, however, which set of rules should prevail. This issue is further complicated by the Court's power to review executive and legislative acts. Through these powers, the Court issues decisions without remanding cases to the administrative agency responsible for enforcement. However, the activist approach of the courts has certainly filled many gaps due to inaction of the administrative agencies. Also, despite criticism of the Supreme Court's activist approach, its undoubted that the Court's dedication to environmental issues has increased public and governmental awareness.

Public Interest Litigation

The Supreme Court of India's vehicle for enforcing environmental protection has been Public Interest Litigation. Public Interest Litigation is purely a matter of constitutional law in which the writ jurisdiction of the Supreme Court or any one of the provincial High Courts is invoked to enforce fundamental rights. This allows any Indian citizen to file a writ petition directly with the Supreme Court concerning the protection of a fundamental right. To facilitate judicial access, the Court has declared that a person "may move the Court even by just writing a letter." This

relaxation of the locus standi requirements allows public interest lawyers to present cases before the Court when a fundamental right is at stake.

As a result, Public Interest Litigation is the module for major environmental protection advancement through the Indian court system. Through Public Interest Litigation, the Supreme Court has taken steps to recognize that good health is a fundamental right, and so are conditions that promote good health, such as clean air and water. Ultimately, through a series of cases, the Court determined that there is an obligation to protect the environment that is derived from the protection of fundamental rights. Judiciary has shown its contribution by dealing the cases with regard to decide the legality of Environmental clearance granted to the developmental projects and hence supported in resolving environmental controversies. Judiciary is the Forum, where fairness of the Authority in granting Environmental clearance to a project and its impact on Public Interest can be adjudged. It is also to balance the sustainable development.

Some of the cases are as follow:

Society for Protection of Silent Valley v Union of India²²

In the late 1970s, the silent valley project stirred up a hornet's nest in India's first major 'environment versus development' controversy. The proposed project, later abandoned, was to dam the Kuntipuzha River in Kerala's Palghat district. As it flows through the valley, the Kuntipuzha drops 857 meters, making the valley an attractive site for generation of electricity. Environmentalists, on the other hand, asserted that as home to one of the few remaining rain forest in the Western Ghats, the valley ought to remain pristine. They further contended that with over 900 species of flowering plants and ferns and several endangered species of animals and birds, Silent Valley was one of the world's richest biological and genetic heritages. The project was abandoned due to pressure exerted on the government within the country and from international groups and governments.

Tehri Bandh Virodhi Sangharsh Samiti vs. State of UP and others²³

The writ petition was filed praying directions restraining the Union of India, State of UP and the Tehri Hydro Development Corporation from constructing and implementing the Tehri Hydro Power project. The main contention against the construction of the dam was on the basis that the plan for the Tehri project had not considered the safety aspect of the dam and serious threat existed due to this construction, as north India is prone to earthquakes. The design of the dam was on a

site which was prone to seismic activity hence posing grave danger to the people residing in that area.

Based on the fact and circumstances of the case, the Court came to the conclusion that the Union of India had considered the question of safety of the project in various details more than once and that it had taken into account the reports of experts on various aspects. In the circumstances, the court held that it was not possible to hold that the Union of India had not applied its mind or had not considered the relevant aspects of safety of the dam. The Court lacked expertise in deciding such technical and scientific details, but would always judge to the fact whether or not the Government had taken all relevant consideration, while clearing the project or not.

Goa Foundation Vs. Konkan Railways Corporation²⁴

A writ petition was filed in the Bombay High Court by a Society asking the Court to compel the Railway Corporation to procure environmental clearance from the Ministry of Environment and Forest under the EPA, 1986 for the part of alignment passing through Goa. The petitioner claimed that the proposed alignment is wholly destructive of the environment and the ecosystem and violates Article 21 of the Constitution, apart from other things. The grievance of the petitioners was that the proposed alignment was planned and undertaken without an adequate Environment Impact Assessment and Environment Management Plan. The petitioner also claimed that the Corporation had violated the Coastal Regulation Zone Notification.

The Court after review of the argument and the facts presented before it, refused to exercise its writ jurisdiction over a matter of national importance and significance. The extent of damage is negligible and public project of this kind will fulfill the long standing aspirations of the people on the west coast. The project is an important development for the economic and social structure of the western people.

Narmada Bachao Andolan v. Union of India & Others²⁵

In 1987 ministry of Environment and Forest accorded environmental clearance to build dam subject to certain conditions. A PIL was filed against the decision of making the Dam. The issue was whether environment clearance granted in 1987 without proper application of mind and whether forcible displacement of tribals from their land violative of their fundamental rights under constitution of India Art 21.

To the issue court held that when such projects are undertaken and hundreds

of crores of public money is spent, individual or organizations, in the garb of a public interest petition, cannot be permitted to challenge the policy decision taken after a lapse of time. It is against national interest and contrary to the established principles of law that decisions to undertake development projects are permitted to be challenged after a number of years during which period public money has been spent in the execution of the project. Decision to build the dam was taken in 1987 and ministry of Environment and Forest accorded environmental clearance to build dam subject to certain conditions. Whether environment clearance granted in 1987 was based on proper application of mind, was the question impugned in the case. The other questions considered by the court included whether the petitioner, agitating against dam since 1986, was guilty of laches in approaching the court in 1994 and whether in cases of petitions termed as PIL ordinary principles applicable to litigation will not apply.

The petitioner was an anti-dam organization in existence since 1986 but had chosen to challenge the clearance given in 1987 by filling a writ petition in 1994. The petitioner which had been agitating against the dam since 1986 is guilty of laches in not approaching the court at an earlier point of time.

The court justified, having entertained this petition with a view to satisfy itself that there has been proper implementation of the relief and rehabilitation measures at least to the extent they have been ordered by the tribunal's award. In short it was only the concern of this court for the protection of the fundamental rights of the oustees under Article 21 of the Constitution of India, which led to the entertaining of this petition.

The court held that it is satisfied, as more than adequate steps are being taken by the State of Gujarat not only to implement the award of the tribunal to the extent it grants relief to the oustees but the effort is to substantially improve thereon and, therefore, continued monitoring by this court may not be necessary. The rehabilitation package contained in the award of the tribunal as improved further by the State of Gujarat and the other states prima facie shows that the land required to be allotted to the tribes is likely to be equal, if not better, than what they had owned. The allegation that the said project was not in the national or public interest is not correct seeing the need of water for a burgeoning population which is most critical and important. Keeping in view the need to augment water supply, it is necessary that water storage capacities have to be increased adequately in order to ward off the difficulties in the event of monsoon failure as well as to meet the demand during dry season.

The court, in the exercise of their jurisdiction, held will not transgress into the field of policy decision. The court, no doubt, has a duty to see that in the undertaking of a decision, no law is violated and people's fundamental rights are not transgressed upon except to the extent permissible under the Constitution. Even then any challenge to such a policy decision must be before the execution of the project is undertaken. Any delay in the execution of the project means over run in costs and the decision to undertake a project, if challenged after the execution has commenced, should be thrown out at the very threshold on the ground of laches if the petitioner had the knowledge of such a decision and could have approached the court at that time. Just because a petition is termed as a PIL does not mean that ordinary principles applicable to litigation will not apply. Laches is one of them.

While issuing directions and disposing of this case, two conditions have to be kept in mind, (i) the completion of project at the earliest and (ii) ensuring compliance with conditions on which clearance of the project was given including completion of relief and rehabilitation work and taking of ameliorative and compensatory measures for environmental protection in compliance with the scheme framed by the Government thereby protecting the rights under Article 21 of the Constitution. Keeping these principles in view, the court issued the following directions.

- (1) Construction of the dam will continue as per the award of the tribunal
- (2) As the relief and rehabilitation sub-group has cleared the construction up to 90 meters, the same can be undertaken immediately. Further increasing of the height will be only pari-passu with the implementation of the relief and rehabilitation and on the clearance by the Relief and Rehabilitation Sub-group after consulting the three Grievances redressal Authorities.
- (3) The Environment Sub-group will consider and give, at each stage of the construction of the dam, environmental clearance before further construction beyond 90 meters can be undertaken.
- (4) The permission to raise the dam height beyond 90 meters will be given by the Narmada Control Authority, from time to time, after it obtains the above-mentioned clearances from the Relief and Rehabilitation Sub-group and the Environment Sub-group.
- (5) The States of Madhya Pradesh. Maharashtra and Gujarat are directed to implement the award and give relief and rehabilitation to the oustees in terms

- of the packages and these States shall comply with any direction in this regard which is given either by the Narmada Construction Authority(NCA) or the Review Committee or the Grievances Redressal Authorities.
- (6) Even though there has been substantial compliance with the conditions imposed under the environmental clearance the NCA and the Environment Sub-group will continue to monitor and ensure that all steps are taken not only to protect but to restore and improve the environment.
- (7) The NCA will within four weeks draw up an action plan in relation to further construction and the relief and rehabilitation work to be undertaken. Such an action plan will fix a time frame so as to ensure relief and rehabilitation pari pasu with the increase in the height of the dam.
- (8) The Review Committee shall meet whenever required to do so in the event of there being any un-resolved dispute on an issue which is before the NCA. In any event the Review Committee shall meet at least once in three months so as to oversee the progress of construction of the dam and implementation of the Relief and Rehabilitation programs.
 - If for any reason serious differences in implementation of the award arise and the same cannot be resolved in the Review Committee, the Committee may refer the same to the Prime Minister whose decision, in respect thereof, shall be final and binding on all concerned.
- (9) The Grievances Redressal Authorities will be at liberty, in case the needs arises, to issue appropriate directions to the respective states for due implementation of the redressal and rehabilitation programs and in case of non-implementation of its directions, the GRAs will be at liberty to approach the Review Committee for appropriate orders.
- (9) Every endeavour shall be made to see that the project is completed as expeditiously as possible.

The court held, when such projects are undertaken and hundreds of crores of public money is spent, individual or organizations in the garb of PIL cannot be permitted to challenge the policy decision taken after a lapse of time. It is against national interest and contrary to the established principles of law that decisions to undertake development projects are permitted to be challenged after a number of years during which period public money has been spent in the execution of the project.

Vellore Citizens Welfare Forum v. Union of India and Ors²⁶

The Supreme Court, in Vellore Citizens Welfare Forum v. Union of India and Others, has observed that the development and environment protection must go together. There should be balance between development and environment protection. It is, therefore, necessary that before the proposed Complex of the DDA is brought into execution, it should have environment clearance from the authorities concerned. The whole of the area has to be surveyed from the point of view of environment protection. In other words, the environmental impact assessment of the area has to be done by the experts. The court was of the view that the authority contemplated by Section 3(3) of the Environment (Protection) Act, 1986 can be the only appropriate Authority to look into the environment protection side of the present project or any other project which the DDA or any other Authority may initiate in future. Needless to say that the City of Delhi is already highly congested and has been rated by the World Health Organization as the 4th most polluted city so far as the air pollution is concerned. It is, therefore, necessary that the development in the city should have environmental clearance.

T.N. Godavarman Thirumulpad Vs. Union of India (UOI) and Ors²⁷

In T.N. Godavarman Thirumulpad Vs. Union of India (UOI) and Others, the Delhi Development Authority (DDA) proposed the development of International Hotel Complex on 315 hectares of land situated in the Vasant Kunj area after the same area was identified in the Master Plan for Delhi 2001 for urban use area under the earlier Master Plan 1962 was identified as green area but there was a change of user to urban area under the latter Master Plan. Supreme Court by an order dated 19.8.1997 held that 92 hectares of land out of 315 hectares was a constraint area and only in respect of the balance 223 hectares of land, the constructions have to abide by the conditions of clearance. The applicant contended that 92 hectares of land were a part of the ridge and that report of Environmental Pollution (Prevention and Control) Authority stated that environmental factors were not in favour of urban development use of land and the entire parcel of land should be developed as green and not for industrial use. Respondent contended that 92 hectares was constraint area and was not an integral part of Delhi Ridge, and that only 19 hectares were sought to be utilized for the purpose of construction. A bare reading of the order dated 19.8.1997 apparently made a proposition that the Court had treated the land as constraint area and Environmental Pollution Control Authority (EPCA)'s report nowhere indicated that the land was a part of the ridge. It would be inappropriate to

reopen the whole issue as to whether the land in question was a constraint area or ridge land. Even if the land is held to be constraint area the constructions thereon were to be made only after having the requisite clearance.

Academy for Mountain Environics v. State of Orissa and Others²⁸

Vedanta Alumina Limited, a subsidiary of M/s Strerlite Industries (India) Ltd had proposed a one million ton per annum capacity alumina refinery project together with a 75 MW coal based captive power plant. Interestingly, the Alumina refinery was granted environmental clearance without linking the project with the Mining of Bauxite. M/s Sterlite (the parent company of M/s Vedanta) applied for environmental clearance on 19.03.2003 to the Ministry of Environment and Forest. In the application, Vedanta stated that no forestland is involved and that within the radius of 10 kms there is no reserve forest. M/s Vedanta thereafter on 16.08.2004 applied for use of 58.943 ha forestland consisting of 28.943 ha village forest and 30 ha reserve forest. However, the application for environmental clearance was not modified and the same was processed on the premise that no forestland is involved.

Further, though mining at Lanjigarh was integral part of the Alumina refinery project, Vedanta could not have started the work on the Alumina refinery without getting the clearance for mining also. As per the guidelines - "for projects requiring clearance from forest as well as environment angles, separate communications of sanction will be issued, and the project would be deemed to be cleared only after clearance from both angles."

M/s Vedanta requested the ministry to grant environmental clearance for the Alumina Refinery Plant stating that it would take three years to construct the refinery plant whereas mines can be opened up in one year. In its application for seeking environmental clearance for the project dated 19.3.2003 it is stated that no forestland was required for the alumina refinery and that within a radius of 10 km of the project site there is no reserve forest, which was contrary to the facts on record. Subsequently, on 16.8.2004 a proposal for allowing the use of 58.943 ha forestland, consisting of 28.943 acre of "Gramya Jungle Jogya" land and 30 ha of reserve forest, was moved under the Forest Conservation Act through the State Government to the Ministry of Environment and Forest. Out of the above, 26.123 ha forestland was required for the refinery, 25.82 ha for the mine access road and the balance 7.0 ha was required for the construction of the conveyor belt for the transportation of the mineral from the mine site to the plant.

The union ministry gave environmental clearance for Alumina Refinery Project by delinking it with mining project. In the environmental clearance it is stated that no forestland is involved, even though the application under the Forest Conservation Act was still pending. As per Para 4.4 of the guidelines laid down by the Ministry of Environment and Forest "Some projects involve use of forest land as well as nonforest land. State Governments or Project Authorities sometimes start work on nonforest lands in anticipation of the approval of the Central Government for release of the forest lands required for the projects. Though the provisions of the Act might not have technically been violated by starting of work on non-forest lands, expenditure incurred on works on non-forest lands may prove to be infructuous if diversion of forest land involved is not approved. It was, therefore, decided that if a project involved forest as well as non-forest land, work should not be started on non-forest land till approval of the Central Government for release of forest land under the Act has been given" But Vedanta had started the work on Alumina Refinery in blatant violation of this provision.

Accordingly the applicant had filed an Application before the Central Empowered Committee on the 21st of September 2005 and the Central Empowered Committee (CEC) gave its recommendations to the Hon'ble Supreme Court of India. Accordingly the CEC was of the opinion that that the Court should consider revoking the environmental clearance dated 29/09/04 granted by the MoEF for setting up of the Alumina Refinery Plant by M/s Vedanta and directing them to stop further work on the project.

To the uninformed observer, India's current emphasis on economic development seems to eclipse its environmental protection efforts. But the combination of strong legislative mandates, an activist judiciary, aggressive public interest litigators, and a proliferation of highly committed environmental NGOs means that India is no longer the heaven it once was for industries indifferent to environmental values. Thus, one may hope that the history of environmental degradation that had characterized investment in India's power and industrial sectors has begun to reduce. Foreign investment in these traditional areas, and in the newer area of pollution control technology, is marked by increasing environmental awareness and regulation. With the work of concerned citizens and international and domestic NGOs supplementing judicial and legislative efforts, India's balance between environment and development is beginning to appear more evenly weighted. As sustainable development becomes the prevailing norm worldwide, India may serve as a paradigm

of a modernizing economy moving towards the objective.

References:

- Subhash V. State of Bihar, AIR 1991, SC 420; M. C. Mehta V. Kamal Nath, AIR 2000, SC1997; R. L. & E. Kendra V. State of U. P., Ratlam Municipality V. Vardhi Chand and others.
- 2 Rosencranz Armin and Jackson Michael, "The Delhi Pollution Case: The Supreme Court of India and the Limits of Judicial Power", 23 Columbia Journal of Environmental Law (2003), 23-30 (quoting Bandhua Mukti Morcha v. Union of India, A.I.R. 1984 S.C. 802).
- Ministry of Environment and Forests 2002. "Empowering People for Sustainable Development" (2001) Approach Paper to the Tenth Five Year Plan (2002-07).
- 4 Murarka, "changing trends and the impact on environment: Indian perspective" (2006)
- 5 ibid
- 6 The Air Act, No. 14 of 1981; India Code (1993) (establishing purpose of Air Act)
- 7 The Water Act, No. 6 of 1974, Environment Protection Act, 1986; and a series of environmental legislations have been enacted in India
- 8 The Water Act, No. 6 of 1974, India Code (1993) (aspiring to cure ills of water pollution and establishing an early framework).
- 9 The Water Act, No. 6 of 1974, (establishing purpose of Water Act).
- 10 The Water Act, No. 6 of 1974, chapter 4 (defining powers and functions of environmental control boards under Water Act).
- Responsibilities of Boards under The Water Act, No. 6 of 1974,
- 12 The Air Act, No. 14 of 1981; India Code (1993) (establishing purpose of Air Act).
- 13 The Air Act, No. 14 of 1981, Regarding the role of environmental pollution control boards.
- 14 The Environment Protection Act, No. 29 of 1986, India Code (1993) (providing examples of possible measures to expand environmental protection).
- Rosencranz Armin and Jackson Michael, "The Delhi Pollution Case: The Supreme Court of India and the Limits of Judicial Power", 23 Columbia Journal of Environmental Law (2003), 23-30 (quoting Bandhua Mukti Morcha v. Union of India, A.I.R. 1984 S.C. 802), Statement of David Pumphrey, Deputy Assistant Secretary for International Energy Cooperation, Department of Energy) (explaining India's current and projected levels of energy consumption). If India's current civilian nuclear energy program stays on target, it is expected to reach 20,000 megawatts electric by 2020, up from a current capacity of 3,850 (MWe).
- Ministry of Environment and Forests 2002. "Empowering People for Sustainable Development" (2001) Approach Paper to the Tenth Five Year Plan (2002-07) (Proposing that efforts are stepped up to phase out vehicles that only comply with Euro I and II levels). To quote-"trucks on the highways continue to stagnate at Euro I and Euro II levels."

Through a series of European Union directives, European emissions standards define the acceptable limits for exhaust emissions, European I, II, III and IV levels are standards for heavy duty vehicles. European I and II standards took effect in 1993 and 1996 respectively. European III and IV standards took effect in 2000 and 2005 respectively. Also refer to Europa Summaries of Legislation, Motor Vehicles with Trailers: Polluting Emissions, http://europa.eu/scadplus/leg/en/lvb/121047.htm (last visited Nov. 12, 2008).

- Asian Development Bank (1998), statistical analysis of the nexus between environment and development, page 43.
- AIR, 1987 SC, p 1142 18
- 19 AIR, 1990, APHC p-998
- 20 Subhash Kumar V. State of Bihar, AIR 1995, SC 657
- 21 Roseneranz Armin and Jackson Michael, "The Delhi Pollution Case: The Supreme Court of India and the Limits of Judicial Power", 23 Columbia Journal of Environmental Law (2003), p-23-30 (quoting Bandhua Mukti Morcha v. Union of India, A.I.R. 1984 S.C. 802).
- AIR (1979), Kerala High Court, 2949 22
- 23 1990 (2) SCALE, 1003
- 24 AIR 1992 Bom, 471
- 25 AIR 1994 SC 319
- 26 (1996) 5 SCC 647
- 27 (2006)10SCC490
- 28 (2006)10. SCC 1475

Art and Architecture of Siva Temples in Tiruvarur Region with Special Reference to Tamil Nadu

K. Kumaran*

Tiruvarur is close to Nakapattinam. It is the prime subject for the present study. Lying amidst a scenic place of beauty, studded with lush green coconut groves and paddy fields, Tiruvarur enjoys the blessing of sylvan atmosphere. The temple for Tyagarajasvami is the pride of the city. This place lie in the Kaviri bed and are nearer to the coastal Nakapattinam.

Tiruvarur:

The antiquity of Tiruvarur gets back to the 7th century. The Tevaram-trio have extolled the praise of the city in their hymns. Stray images of *Sapta Matrka* images found near the garbhagrha push the antiquity of the temple to the Pallava period. Here the *sthala*, *murti*, *tirtha* and *vrska* are famous. The vast temple, its terse and teppakkulam are famous. An old saying is:

Koyil aiveli kulam aiveli

'The temple five veli (of land) and tank five veli

The *ter* (temple car) at Tiruvarur is one of the biggest in India. The Tevaram extols the importance of the *ter* as follows:

'Alitter vittaknai nan kantatu arure

'Lord of the World Chariot, I saw him at Arur'.

Another proverb is:

Tiruvarur ter alaku Tiruvitaimarutar teruvalaku

'The chariot at Tiruvarur is beautiful, the car street at

Tiruvitaimarutur is beautiful'.

^{*}Assistant Professor, Department of History, Annamalai University, Annamalainagar, Tamil Nadu.

These attest the fact that the temple chariot at Tiruvarur is deeply interwoven with the cultural matrix of the region.

. This is to attest the fact that both the temple and tank occupy the same space and that both are held in high esteem of equal value.

Tiruvarur has a rich collection of hymns by the Tevaram-trio. The trio is Nanacampantar, Navukkaracar and Cuntarar. Nanacampantar has contributed three *tirumurais* (1-3) under the Tevaram. Navukkaracar's contribution are 4-6 *tirumurais*. Cuntarar is author of the 7th tirumurai. There are more than 8,000 hymns of which Tiruvarur takes a lion's share.

The above table presents the data that the Tevaram-trio have contributed 35 patikams on Tiruvarur that amounts to 254 hymns. Of the three, Navukkaracar tops the list with 223 hymns, followed by Cuntarar 77 hymns with Nanacampantar 54 hymns.

Archaeological evidences since the Gupta period show how temples had a strong foundation at the commencement of the 4th century AD. Earlier evidences of Buddhist and Jain rockcut temples have been reported since atleast the 3rd century BC as attested by the Ajivika caves at Barabar in Gaya district. Though images of the Kusana period (e.g. the Mathura museum collections) have been reported, no existing temple of the age has come to light. Temple No. 17 atop the Sanchi hill, near Udayagiri (Vidisa district in Madhya Pradesh), is the earliest Hindu temple. It is very simple with a garbhagrha and mukhamandapa. The rock-cut caves, bas-reliefs and monolithic temples were popular since the Gupta time as maybe found in Udayagiri itself. Later the Calukyas and Rastrakutas, followed by their fellow partons in the Far South, the Pallavas and Pandyas reared temple architecture to such an extent that some of mega structural temples were erected in (Kanchipuran Kailasanatha and Vaikuntha Perumal temples) and Mamallapuram (e.g. shore temple). These were the beginnings. Temple architecture reached its acme under the Vijayanagara-Nayakas as one may in the Srirangam, Thiruvannamalai and Madurai. The early temples had garbhagrha, mukhamandapa and prakara. Under the Pallavas, mini-gopuras and Mandapas came to be added. These reach their apogee under the Vijayanagara – Nayaka with subshrines for *Devis*, avaranamurtis, several mandapas with pillars ranging from 4 to 1000, sevaral *gopuras*, including *rayagopuras*, *vahanas* and terse. It is this final phase that we find in the six temples, survyed for the present study. Though most of inscription are of the Cola time, archaelgogical evidences and architectural styles pinpoint their patronage by the Vijayanagara-Nayakas rulers. The temple had their origins around the 7th century AD reached their maturity under the Colas and found their pinnacle of development under the Vijayanagara-Nayakas.

Architecture

The Dravidian Hindu temple, called *dravida-vimana*, is also called *satanga-vimana* "temple of six parts". The six parts from the base to finial are *upapitha*, *adhisthana*, *pada* or *bhitti*, *prastara*, *griva* and *sikhara*. This the structure of the *vimana* in its vertical order. In the horizontal order the *garbhagraha* is subjoined by the *antarala*, *mukha-mandapa* and *maha-mandapa*. These constitute the core of the temple in the first *prakara*. The additional *prakaras* accommodate spaces for *parivaradevatas*, subshirines for *Devi* and various *mandapas* (e.g. *vasantha-mandapa*, *kalyana-mandapa*, 1000-pillared *mandapa*) as noted in the previous section. Each *prakara* as its cardinal points provides for *gopuras*. The inner *prakaras* accommodate smaller *gopuras* as in Tiruvarur while *rayagopuras* appear are the outermost *prakara*. As a rule, not all temples provide for *gopuras* in all directions. The *vahanas* are usually preserved in a room, called *vahana mandapa*, within the temple. The terse are kept on the eastern side of the road that goes around the temple, e.g. Tiruvarur. This road is usually called *terviti*.

A common programme discernible in all temples is that the core part of the temple provides for two or more adjoining *garbhagrhas*. These two are usually reserved for the mulavar (e.g. *Aksayalinga* or *Kayarogana*) and *Tyagarajasvami*. A separate shrine for *Devi* exists on the north if the temple faces the east. The temples are in three or two prakaras. The rayagopuras falls on the east of the outer most *prakara*.

All the *vimanas* are in the *satanga* pattern. The *Devi* shrine in the Tiruvarur temple is dvitala and has a globular *sikhara*. Two shrines in the Tiruvaymur temple are *alpha* and *ekatala-vimanas*. The Kilvelur temple has a peculiar *vimana* which two tiers of the *bhitti* as in the Brhadisvara temple at Tancavur. This an *ekatala vimana*. Another subshrine is an *alphavimana*. The main *vimana* in the Cikkal temple is *dvitala* while there are three other *alphavimanas*. All the *vimanas* are fitted with *karnakudus* and *mahanasikas*. The *mahanasikas* are decorated with sculptural illustration.

The *mandapas* differ in pattern and alignment. These are fitted various types of pillars from simple to compound. Yali pillars and sculptural are common. The *teppakkulum* of the Tiruvarur temple accommodates a *nirali-mandapa*, fitted with a

tritala *gopura*. Another important addition to the Tirvarur temple is a stone *rathamandapa* (chariot shaped pavilion), added with an *ekatala - vimana*. This *mandapa* is associated with the *Manunitichola* episode. Another attraction of the temple is its 1000-pillared hall red hail that is present in big temple establishments as at Madurai, Srirangam, Tiruvannamalai and Chidambaram. The pillars in the Karonam are in multiple designs.

The gopuras in all temples vary in volume and proportion. The temple is fitted with four rayagopurus and several other small gopuras at the cardinal points of each prakara. The eastern rayagopuru is catustrala with a tall stone plinth and decorated with a number of stucco image in each tala. Several mahanasikas and karnakudus decorate the talas while the sikhara in barrel-shaped. The gopuru of the Tirukkuvalai temple is simple. It is dvitala and accommodates stucco images on the sides of the Tiruvaymur temple is of the same pattern as the Tirukkuvalai temple. The Karonam has a catustala gopura with numerous stucco images. The Kilvelur gopura is of the same pattern as the Karonam. Two gopuras in the Cikkal temple are in pancatala and dvitala. Each tala and the griva are with dvaras in front and back. Dvarapalakas uniformly guard the fitted with dvaras in front and back. Dvarapalakas uniformly guard the dvaras.

Architecturally all the six temples fit in the expetutions of a *dravida-satanga-vimana*. All are uniformly endowed with various types of *mandapas*, pillars and *gopuras*. The biggest establishment is the Tiruvarur temple.

Largely most of the epigraphical records are of the Colas. Few throw light on the date of the construction of the temple. Most pertain to the gift of *nontavilakkus* 'perpetual lamps' for which *atu* 'sheep'; 'money'; pon 'gold' or *nilam* 'land'. Large tracts of lands were donated by private patrons, landlords, feudatories, kings and their queens for the construction, repairs, holding daily services, periodically festivals, ornaments in gold, silver and precious gems like diamond, feeding *Brahmanas* and *sadus*, establishment and maintenance of *mathas* 'monasteries' and so on. The portrait sculptures and few inscription of Nayaka-Maratha times prove the fact the temples were growing entities down to the 18th century AD. None of the temple has any ruin relating to the pillages of the Musilms during and after the 14th century. Nor do we have any literary or epigraphical clue towards this end. That means the Tiruvarur area was beyond the reach of the Muhammandan invaders.

Architecturally all the temples are of the *dravida-satanga-vimana* type. These provide for six basic members in the vertical order for the *garbhagraha*. The core is

the *Brahmasthana* that falls within a walled enclosure, tirumatil. Horizontally, different subshrines, *mandapas, tirukkulams, gopuras* and *vahanas* are set in places reserved for them. Big temples such as Tiruvarur have *gopuras* standing at the cardinal points in each *prakara*. A small structure of the Pallava period (e.g. Mukunda Narayana temple at Mamallapuram) reached it apogee at Srirangam whose replica the Tiruvarur temple is. Most temple provides for two major *garbhagrahas*, one reserved for Tyagaraja. That means provide for two major *garbhagrhas*, one reserved for Tyagaraja. That means Tyagaraja has gone deep in the cultural matrix of the temple in the Tiruvarur region. The Tiruvarur temple is the apex of evolution that include a wide variety of subshrines and numerous *Lingas* (e.g. *Rg, Yajur. Sama* and *Atharvana veda Lingas*) that appear in small chambers. Huge *manadapas* (e.g. 1000-pillared, *vasantha- yagasala, somaskanda-nalukal*, and *urcava* besides the usual *antarala, mukha mandapa, maha-mandapa* and *nandi-mandapa* are present in most temples. *Rayagopuras* are a common feature. Thus, by about the Maratha period the Hindu temple in the Tiruvarur region was at the apex fo evolutionary process.

The most striking feature of the temple art is its iconography. Various iconographical forms of *Siva*, *Devi*, *Visnu*, *Brahma*, *Ganapati*, *Murukan*, minor deities, religious perceptors, donor and so on make their presence felt. The most important object worshipped in *Siva* temples is the aniconic *Linga*. Several types of *Lingas* are installed in the temples of the Tiruvarur. They are named after *Gautama*, *Agastya*, *Laksmi*, *Vasistha*, *Jyestha*, *Varuna*, *Devadeva*, *Rudra* and so on.

The iconographical forms of Siva are Lingodbhavanurti, Umamahesvara. Vrsabhavahanamurti, Daksinamurti, Arthanarsivara, Bhiksatana, Nataraja, Bhairava, Virabhadra and so on. Several puranic events are painted. Visnu is mostly sthanaka. The forms are Devi are Gajalakshmi, Mhisasuramardini, Sapta Matrkas and so on. Seated, standing and dancing Ganapatis are present. Murugan mostly appears with Valli and Devasena. A rare image of Mottaianti adds to the catalogue.

The minor deities are many such as the *dikpalakas Navagrahas*, *Surya*, *Candra*, a rare image of *Sanisvara*, *Nandi*, *Dvarapalakas Agastya*, the *Nalvar*, 63 *Nayanmar*, *Manuniticola*, episode, portrait sculptures, erotic sculptures, vahanas like ter and so on.

Thiruvarur lies in the eastern coastal belt of the Tamil country. It is in the rich Kaviri delta. The area is noted for its lush green fields and fertility of the soil. It has not witnessed any vandalism as it happened in ease of Citamparam Srirangam and Madurai. In view of the peace that prevailed and fertility of the land, the region

enjoyed the patronage of kings and the people who patronized temple building activity since at least the early Cola period in the 10^{th} century, though literary tradition pushes the antiquity of temple culture to the 7^{th} century. The architecture and iconography of the temples in the region are a register of marvels and shine and shine like starts in the palimpsest of Indian art.

References:

- 1. Rajarajan, R.K.K., Art of the Vijayanagara-Nayakas: Architecture and Iconography, New Delhi: 1991.
- 2. Ali, Daud, Thanjavur, Capital of the Delta, Marg:1999.
- 3. Aravamuthan, T.G., Portrait sculptures in South India, London: 1931.
- 4. Appa, Durai Arjun, Kings, Sects and Temples in South India, IESHR, 1977.
- 5. Balasubramanian, S.R., Early Chola Temples. Delhi: 1971.
- 6. Balasubramanian, S.R., Later Chola Temples, Madras: 1979.
- 7. Lakshmi, R.Champaka, Vaishava Iconography in the Tamil Country, New Delhi:1981.



An Interdisciplinary Journal of Humanities & Social Sciences

Subscription Form

Editor, *Mānavikī* Maharana Pratap P.G. College Jungle Dhusar, Gorakhpur-273014

Dear Editor

Dear Editor,	
l/we would like to subscribe to the $Mar{a}navikar{\imath}$, an interdisplinary journal of	Humanities and
Social Sciences, published by you. Subscription amount Rs./USSi	is being enclosed
herewith by cheque*/demand draft nodrawn on	Kindly
enrol my/our - Annual/ Five Year/Life subscription** and arrange to send	the issues of the
journal on the following address :	

Name of Individual/Institution:

City:	Pin/Zip
State:	Country:

Subscription Rates

	Individual		Institutional	
Annual	Rs. 300	US \$ 30	Rs. 500	US \$ 50
Five Years	Rs. 1250	US \$ 80	Rs. 2000	US \$ 125
Life (15 Years)	Rs 2500	US \$ 150	Rs. 4000	US \$ 200

- * All cheques/demand drafts should be drawn in favour of Mānavikī payable at Gorakhpur. In case of outstation cheques please add Rs. 30/USS 2 for clearing expenses.
- ** Please tick the desired subscription period.

Maharana Pratap P.G. College

Jungle Dhusan, Gorakhpur

Mob.: 9794299451, 9452735221 • E-mail: manvikijournal@gmail.com

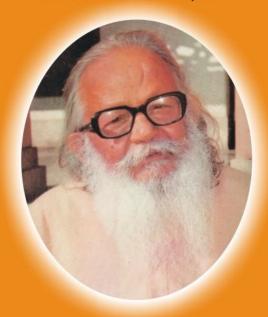
GUIDELINES FOR CONTRIBUTORS

- Contribution should be submitted in duplicate, the first two impressions of the typescript. It should be typed in font Walkman-Chanakya (Hindi) and in Times New Roman (English) on a quarter or foolscap sized paper, in double-space and with at least one and a half inch margin on the right. Two copies of a computer printout along with a CD are preferred. They should subscribe strictly to the Journal format and style requirements.
- 2. The cover page of the typescript should contain: (i) title of the article, (ii) name (s) of author(s), (iii) professional affiliation, (iv) an abstract of the paper in less than 150 words, and (v) acknowledgements, if any. The first page of the article must also provide the title, but not the rest of the item of cover page.
- 3. Though there is no standard length for articles, a limit of 5000 words including tables, appendices, graphs, etc., would be appreciated.
- 4. Tables should preferably be of such size that they can be composed within one page area of the Journal containing about 45 lines, each of about 85 characters (letter/digits). The source(s) should be given below each table containing data from secondary source(s) or results from previous studies.
- Figures and charts, if any, should be professionally drawn using such materials (like black ink on transparent papers) which allow reproduction by photographic process. Considering the prohibitive costs of such process, figures and charts should be used only when they are most essential.
- 6. Indication of notes should be serially numbered in the text of the articles with a raised numeral and the corresponding notes should be given at the end of the paper.
- 7. A reference list should appear after the list of notes. It should contain all the articles, books, reports, etc., referred in the text and they should be arranged alphabetically by the names of authors or institutions associated with those works.
 - (a) Reference to books should present the following details in the same order: author's surname and name (or initials), year of publication (within brackets), title of the book (underlined/italic), place of publication. For example:
 - Chakrabarti, D.K. (1997), Colonial Indology: Socio-politics of the Ancient Indian Past, pp. 224-25, New Delhi
 - (b) Reference to institutional publications where no specific author(s) is (are) mentioned should present the following details in the same order. institution's name, year of publication (within brackets), title of the publication (underlined/italic), place of publication. For example:
 - Ministry of Human Affairs (2001), Primary Census Abstract, New Delhi, pp. xxxviii.
 - (c) Reference to articles in periodicals should present the following details in the same on: the author's surname and name (or initials), year of publication (in brackets), title of the article (in double quotation marks), title of periodical (underlined/italic), number of the volume and issue (both using Arabic numerals); and page numbers. For example:
 - Siddiqui, F.A. and Naseer, Y. (2004), "Educational Development and Structure of Works participation in western Uttar Pradesh", *Population Geography*, Vol. 26, Nos. 1 & 2, pp. 25-26.
 - (d) Reference in the text or in the notes should simply give the name of the author or institution and the year of publication, the latter within brackets; e.g. Roy (1982). Page numbers too may be given wherever necessary, e.g. (Roy 1982: pp. 8-15).



मानविकी एवं समाज-विज्ञान की अन्तः अनुशासनात्मक शोध पत्रिका

In the Pious Memory of



ब्रह्मलीन पूज्य महंत अवेद्यनाथ जी महाराज

(18.5.1919 - 12.9.2014)

कल्याण सभी जन का मन से है किया कि सभी अभय होवें, होकर अवेद्य भी वेद्य धरा पर संत प्रवर की जय होवे।

Published by Maharana Pratap Post Graduate College, Jungle Dhusan, Gorakhpur (U.P.) E-mail : manvikijournal@gmail.com, omjee25@gmail.com

Printed at Moti Paper Convertors, Betia Raj House, Betiahata, Gorakhpur Ph.: 0551-2334184

